प्रवचन माला भाग ६

ईश्वर की सृष्टि के अद्‌भुत व्याख्याता पूज्यपाद गुरूदेव श्रृंगी मुनि कृष्णदत जी महाराज द्वारा विशेष योग समाधि मे,देवयान की आत्माओ को सम्बोधित प्रवचनो का संकलन

प्रकाशक :
वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)
अन्तरजाल सम्पादक : श्री सुकेश त्यागी – अवैतनिक
अन्तरजाल विशेष सहयोग : डा0सतीश शर्मा (अमेरिका) – अवैतनिक
अन्तरजाल पुस्तक संस्करण : प्रथम प्रेषण
सृष्टि सम्वत् : 1,96,08,53,112
विक्रम सम्वत् : ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वितीया, 2068
ईस्वी सम्वत् : 19 मई, 2011
नक्षत्र : ज्येष्ठा
पर्व : देवर्षि नारद जयन्ती

गुरुदेव का जीवन

14 सितम्बर 1942,उतर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद मे एक बालक का जन्म हुआ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा मे, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित 45 मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता। बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ मे आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वैसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे। पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा, इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था। प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा, इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ। कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो मे श्रृंगी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल मे आदि ब्रह्म के शाप के कारण इस युग मे जन्म का कारण बनी। गुरुदेव इस जन्म मे भले ही अपठित रहे, लेकिन शवासन की मुद्रा मे आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान, उदबुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष–स्थ आत्माओ का दिव्य उद्‌बोधन, प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहॉ होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती। इन पंवचनो मे ईश्वरीय की सृष्टि का अद्‌भुत रहस्य समाया हुआ है, ब्रह्माण्ड की विशालता, सृष्टि का उद्देश्य, विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो मे ये किसी भी मनुष्य का, समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थय रखते है।

20 वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके, पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया। जिसके अर्न्तगत सन् 1962 से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित 50 वर्ष के जीवन को भोगकर सन् 1992 मे महाप्रयाण किया।

इस अन्तराल इनके बहुत से प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये। जिनको धीरे–धीरे प्रकाशित किया जा रहा है।वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है। उसके सम्वर्धन, संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है। जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस मे प्रसारित हो सके।

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

क्रसं	विषय	पृष्ठ संख्या

१. त्रेतवाद की महत्ता ११ अप्रैल १९७२

जीते रहो !

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि जितना भी जगत हमें दृष्टिपात आता है, वह एक विज्ञानमय जगत दृष्टिपात आ रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे यह जगत् उस परमपिता परमात्मा का एक विज्ञानमय स्वरूप हो, क्योंकि परमात्मा को विज्ञानमय माना गया है। जब हम ज्ञान और विज्ञान की उस आभा में दृष्टिपात करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि **हमारे मुखारबिन्द से जो भी उद्गार उत्पंन्न होता है अथवा उसमें जितने परमाणु जाते हैं उस परमाणु में भी एक प्रकार का मानवीय चित्रण होता रहता है।** जब हम विज्ञान की उस आभा पर अपने मानवीय जीवन को ले जाते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम उस परमात्मा के विज्ञान भवन में ही विराजमान हों। जो महान् विज्ञानवेत्ता है जिसकी वैज्ञानिकता बेटा ! अनन्तता में परिणित की गई है।

मानव का चित्रण

आज मैं उस विज्ञान के सम्बन्ध में अपना अधिक विचार देना नहीं चाहूँगा। क्योंकि हमारे यहाँ वेद का जो विचार है, वेद की जो आभा है, वह किसी और ही मार्ग पर ले जाने के लिए बाध्य कर रही है। तो बेटा ! विचार क्या कि हमें विचारना है कि विज्ञान कितना महान् है। जब हम इस आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान दोनों की संतुलना करने लगते हैं और हम योग के मार्ग में प्रवेश होते हैं तो उस समय हमें अपने मानवीय जीवन के चित्रण को अच्छी प्रकार जानना होगा। जैसे हमारे यहाँ वैदिक सूत्रों में कहा है, यौगिक सूत्रों में भी ऐसा ही माना गया है। वैज्ञानिक सूत्रों में भी इसी प्रकार का आचार्यों ने उन सूत्रों की विचारधारा को लेते हुए कुछ ऐसा कहा है कि मानव जिस स्थान पर विराजमान होता है उसके चले जाने के पश्चात् भी उस मानव का लगभग आधा चित्रण उस स्थान पर स्वतः विराजमान रहता है। शब्द से भी मानव का चित्रण सम्भव हो सकता है। परन्तु रहा यह कि मानव के शब्द के साथ में मानव का चित्रण होना। यह बेटा ! वैज्ञानिक आध्यात्मिक विज्ञान में जब प्रवेश होते हैं तो यह मानव सर्वत्र इसके समीप आने लगता है। तो मुनिवरो ! मैं यौगिक, अयौगिक उद्देश्यों पर नहीं जाना चाहता हूँ। विचार क्या कि आज का हमारा वेद–पाठ क्या कह रहा है ? वेद की आभाएं हमें किस मार्ग के लिए पुकार रही हैं। जब हम वेद की आभा को विचारने लगते हैं तो **तीन प्रकार के प्रश्न** हमारे समीप आने लगते हैं। हम यह विचारते हैं कि वेद क्या है ? वेद के साथ–साथ यह भी विचार आता है कि वेद में किस की आभा है? यह भी विचार आता है कि आभा किसके लिए मानी जाती है और किसका व्यापक स्वरूप हमारे समीप आना चाहिए ? ऐसे नाना प्रश्न हमारे समीप आते रहते हैं। तो ऋषि–मुनियों का वह विचार आज मुझे पुनः से स्मरण आ रहा है।

महर्षि–भारद्वाज

महर्षि भारद्वाज, महर्षि रेवकमुनि महाराज का एक समय महा समाज हुआ और उनके विचार विनिमय होते हुए (एक महर्षि ऋग्वेद प्रातिशाख्य तथा अन्य अनेक वैदिक रचनाओं के प्रणेता।) महर्षि शौनक जी ने एक वाक्य कहा था कि तुम्हारा विवाद है क्या ? उस समय **महर्षि भारद्वाज मुनि बेटा ! भौतिक विज्ञानवेत्ता और आध्यात्मिकवेत्ता महर्षि थे।** आध्यात्मिक विज्ञान के ऊपर भी उनका महान् अध्ययन था। उनका क्रियात्मक अध्ययन रहता था। वह समय जब स्मरण आने लगता है, तो हमारा हृदय यह पुकारता है कि आज हम उन्हीं सूत्रों पर अपना विचार विनिमय करते चले जाएं। हमारे यहाँ तीन प्रकार की वस्तुओं को विचारणीय माना गया है। सबसे प्रथम प्रकृति के तत्त्वों को विचारने का विषय है। इसके पश्चात् क्योंकि प्रकृति में पंच–महाभूत हैं, नाना प्रकार की तरंगें और आभाएं उत्पन्न होती हैं। उनको विचारने का नाम ही **भौतिकवाद कहा गया है।** अथवा हमारे विज्ञानवेत्ताओं ने तो यह कहा है आध्यात्मिकवादी पुरुषों को भी इस मार्ग से जाने का अवसर प्राप्त होता है। क्योंकि जब तक पंच–महाभूतों को अच्छी प्रकार नहीं जान पाओगे तब तक आत्मा के विज्ञान में प्रवेश नहीं कर सकते। ऐसा हमारे यहाँ माना गया है। हमें इस प्रकृति के विज्ञान को अच्छी प्रकार जान लेना चाहिए। अग्नि में कितनी तरंगें होती हैं ? वायु में कितनी तरंगें होती हैं ? अथवा पृथ्वी में कितनी तरंगे होती हैं ? इन सर्वत्र तरंगों

को जानना उनके ऊपर विचार–विनिमय अथवा अध्ययन करना यह मानव का एक कर्त्तव्य माना गया है। परन्तु जब किसी मार्ग में हमारा जीवन प्रारम्भिक होता है अथवा प्रवेश करता है तो उस को हमें जानना बहुत अनिवार्य होता है। इसीलिए महर्षि भारद्वाज मुनि ने महर्षि रेवक मुनि से एक ही वाक्य कहा। महाराज ! मैंने इसमें प्रवेश तो कर लिया है। मैं इन तरंगों को जानने के लिये सदैव इच्छुक रहता हूँ। ये कितनी तरंगें हैं ? उन तरंगों का क्या कार्य है ? इस संसार में यह तो मैंने अच्छी प्रकार जान लिया। क्योंकि इसी के आधार पर मैं नाना प्रकार के इस भौतिकवाद में प्रवेश करता रहता हूँ। उनको जानने की मेरी उत्कृष्ट इच्छा होती रहती है।

ब्रह्म इस आत्मा में ओत–प्रोत है

जब मैं आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता हूँ तो उस समय आत्मिक–विज्ञान मेरे समीप आने लगता है। यह आत्मा का इस प्रकृति से कितना सम्बन्ध है ? कितना मिलान है ? इन दोनों की कितनी सन्निधानता माननी चाहिए ! ऐसा जब मैं विचारने लगता हूँ तब आत्मा इस आध्यात्मिकवाद में प्रवेश होती है। अपने स्वरूप में जब यह आत्मा प्रवेश होती है तो प्रकृतिवाद एक वाद रह जाता है। एक 'प्रत्यय' (साधारण) और नृत्य रह जाता है। नृत्य करने वाली जब तक आत्मा का प्रकृति से अच्छी प्रकार का मिलान रहता है तो मुनिवरो ! देखो, प्राणी नृत्य करता रहता है। जब यह आत्मा इस प्रकृति से उपराम हो जाता है, अथवा यह अपने स्वरूप में चला जाता है, अपने स्वरूप में जाने के पश्चात् वह जो पर ब्रह्म परमात्मा है जिसके सन्निधान मात्र से यह सर्वत्र जगत् क्रियाशील हो रहा है। प्रकृति अपने–अपने आसन पर नृत्य कर रही है यह उसके उस प्रकाश में रमण करने के लिए तत्पर हो जाता है जिसमें मुनिवरो ! क्योंकि ब्रह्म इस आत्मा में ओत–प्रोत है। आत्मा इस प्रकृति के अंगों–अंगों को जानने वाला है। अंगों–उपांगों को जानने के पश्चात् यह आत्मा उस पर–ब्रह्म परमात्मा में ओत–प्रोत रहता है। उसी में रमण करता है। जिस प्रकार माता का प्रिय पुत्र माता का शिशु माता की लोरियों में आनन्द को प्राप्त करता रहता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने ऐसा माना है।

प्रकृति, आत्मा (जीवात्मा) और ब्रह्म

संसार में यह आत्मा परमात्मा का दोनों का विवाद है। यह एक विवाद नहीं, यह एक विचार है और कैसा विचार है ? हमारे यहाँ ऋत् और सत् का विचार आता है। ऋषि मुनियों ने बेटा ! इसके ऊपर बहुत ही अनुसंधान किया। मुझे महर्षि भारद्वाज मुनि की भी चर्चाएं ही नहीं और भी नाना जो ऊर्ध्वगति को ऋषि–मुनि प्राप्त हुए, जैसे वायु मुनि महाराज हुए अन्य भी आचार्य हुए, उनका भी विचार जब हमारे समीप आने लगता है तो बेटा मेरा हृदय गद्गद होने लगता है। उन्होंने ऐसा कहा है कि **संसार में मानव के लिये तीन वस्तुएं विचारने की हैं।** ''सबसे प्रथम प्रकृति है, द्वितीय आत्मा है और तृतीय ब्रह्म को माना है। परन्तु तीनों वस्तुओं को विचारने के पश्चात् श्रेष्ठवाद को लेकर के संसार में अपनी मानवीयता को विचारता है वह अपनी मानवीयता में सफलता को प्राप्त होता रहता है।'' तो इसलिए मुनिवरो ! हमारे यहाँ व्याप्य और व्यापकता का बड़ा एक विषय भी गम्भीर माना गया है। जिसके ऊपर बहुत समय पूर्व यह विचारा गया। परन्तु इसके ऊपर नाना प्रकार की साधनाएं भी कीं। उस साधना के पश्चात्, उस साधना में जो भी कुछ प्राप्त हुआ, वाणी उसके उच्चारण करने में असफल हो जाती है। क्योंकि उसमें मानव की वाणी अपना कार्य नहीं कर पाती। तो इसीलिए मैं तो यह कहा करता हूँ कि संसार में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति ये तीन पदार्थ हैं। तीनों पदार्थों को आज हमें भिन्न–भिन्न स्वीकार करना और उन्हें विचारना है। ये **तीनों के स्वरूपों को जानना हमारी महत्ता मानी गई है।** क्योंकि जड़ चेतना दोनों ही संसार में पदार्थ माने जाते हैं।

प्रकृति जड़ है, विज्ञान का मौलिक स्रोत ब्रह्म ही है

वास्तव में आत्मा और परमात्मा दोनों चेतन माने गए हैं। परन्तु दोनों की विशेषता भिन्न–भिन्न है। इस संसार में मेरे प्यारे ऋषिवर, जब हम इस मन के ऊपर जाते हैं, मन की तरंगों के ऊपर जाते हैं तो यह प्रकृति का एक विषय आ जाता है। जो देखो आत्मा के सन्निधानमात्र से ही अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है। इसका जो कार्य है वह इतना विचित्र बन जाता है कि मानव इसके विषय में लेखिनीबद्ध करता रहता है। लेखनियां आरम्भ रहती हैं। परन्तु देखो, अन्त में लेखनी समाप्त हो जाती है। विचार क्या है ? मौलिक रूपों से हमें उसे गम्भीरता से विचारना है कि हम उस परब्रह्म जो परमात्मा है, जो विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है। आज जितना भी विज्ञान है अथवा जितना भी भौतिकवाद में दृष्टिपात आता है, आध्यात्मिकवाद में दृष्टिपात आता है, उस विज्ञान की जो आभाएं हैं, तरंगे हैं, उनका जो मौलिक स्रोत माना गया है वह परब्रह्म परमात्मा ही माना गया है। तो

आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम उस अपने मनोहर देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, उस महान् परब्रह्म परमात्मा को विचारते हुए, जो शून्यता को क्रिया में लाने वाला प्रभु है उसको हम सदैव अपने हृदय में ध्यानावस्थित करते रहें। जिससे हमें आध्यात्मिकवाद, मानवीयता, मुनिवरो ! देखो, उसका दिग्दर्शन करके हम इस संसार–सागर से पार होते हुए अपने जीवन को महान् बनाते चले जाएं।

जीवात्मा परमात्मा से पृथक है

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज का विचार क्या है ? हमें यह विचारना है कि हम महर्षि भारद्वाज मुनि, महर्षि रेवक मुनि महाराज वाले सूत्रों पर आना चाहते हैं। दोनों का विचार क्या ? उन्होंने कहा कि आत्मा को कैसे स्वीकार करें ? उन्होंने कहा कि आत्मा को इसलिए स्वीकार किया जा सकता है कि जिसके न रहने पर यह मानव का शरीर शव बन जाता है। मानव जड़ता को प्राप्त हो जाता है। अपने प्रकृति के स्वरूप में चला जाता है। तो **जो चली गई उस चेतना का नाम आत्मा स्वीकार किया जाता है।** परन्तु महर्षि रेवक मुनि ने कहा कि उस को हम ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब क्यों न स्वीकार करें ? उन्होंने कहा कि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि ब्रह्म एक व्यापक है और यदि हम ब्रह्म का ही उसको एक प्रतिबिम्ब स्वीकार कर लें तो ब्रह्म में एक **"अकृतम् ब्रह्म व्यापः,"** उसमें अकृत दोष हो जाते हैं। इसलिए उस को हमें स्वीकार नहीं करना चाहिए। ऐसा जब उन्होंने कहा तो उस समय भारद्वाज मुनि के विचारों में यह आया कि भगवन् मेरे विचार में तो ऐसा ही आ रहा है।

ब्रह्म की चेतना से ही प्रकृति चेतनित है

वह आत्मा है तो उन्होंने कहा कि हम ब्रह्म किसको स्वीकार करें ? क्योंकि ब्रह्म की अपनी सत्ता क्या रह जाती है ? इससे तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस आत्मा के चले जाने पर अपने–अपने गुण अपनों में प्रविष्ट हो जाते हैं। अपनों में ही रमण करते रहते हैं। तो इससे यह विचार आता है कि हम ब्रह्म किसको स्वीकार करें ? ब्रह्म की अपनी वास्तविकता क्या रह जाती है ? उस समय उन्होंने कहा कि जैसे आत्मा इस मानव शरीर को चेतनित बनाए रहती है उसी प्रकार इस ब्रह्म के सन्निधानमात्र से ही यह जो प्रकृत है, पंच–महाभूत हैं, यह अपनी–अपनी जो रचना में संलग्न रहते हैं, उसका ही (ब्रह्म का ही) प्रतिबिम्ब उसका आभास प्रकृति में स्वीकार करो। इसमें जो चेतना है उस चेतना को ब्रह्म की ही चेतना स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि ब्रह्म की चेतना से ही यह प्रकृति अपना चेतनित कार्य कर रही है।

प्रलय–काल में प्रकृति परमात्मा में लीन हो जाती है

उस समय महर्षि रेवक मुनि महाराज बोले कि महाराज जब प्रलय–काल आता है, प्रलय–काल में यह प्रकृति का क्या स्वरूप बन जाता है ? उन्होंने कहा यह प्रकृति का सूक्ष्म स्वरूप बन जाता है। अहः ! जब सूक्ष्मतम रूप बन जाता है तो यह प्रकृति जो एक जड़ पदार्थ है तो यह जड़ किसमें प्रविष्ट हो जाती है। उन्होंने कहा यह ब्रह्म का एक स्वरूप माना गया है। **ब्रह्म में ही ओत–प्रोत रहती है।** जिस प्रकार माता के गर्भ से माता के पुत्र उत्पन्न होने से पूर्व माता के गर्भस्थल में शिशु रहता था। परन्तु आत्मा भिन्न है और बालक भिन्न है। इसी प्रकार यह प्रकृति उस ब्रह्म के ही स्वरूप में रमण करती रहती है, उसी में यह आनन्दित (वर्द्धित) होती रहती है। मुनिवरो ! देखो, इन दोनों के मध्य में रहने वाला पवित्र आत्मा है जो मानव के शरीर को चेतनित बनाता रहता है। ये दोनों अपने दोनों के विवाद को ग्रहण और दृष्टिपात करते रहते हैं। क्योंकि दोनों का ही विवाद होना दोनों का ही संगठित होना, यह आत्मा के लिए वास्तव में किया जाता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज जब हम यह विचारते हैं कि **आत्मा के लिए संसार रचा जाता है, रचने वाला प्रभु है और रची जाने वाली प्रकृति है** और इसमें विश्राम करने वाला, इसमें अपना कार्यवाहक होने वाला एक चेतन्य आत्मा माना गया है ! मुनिवरो, ! देखो यह प्रकृति का स्वरूप हमारे यहाँ रचना और प्रलय रूप इस प्रकार स्वीकार करते हैं।

प्रलय–काल में जीवात्मा भी ब्रह्म में निवास करते हैं

परन्तु विचार यह आता है कि यह आत्मा का जो स्वरूप है वह वायुमण्डल में अथवा प्रलय–काल में कहाँ रहता है जब यह प्रकृति का स्वरूप तो ब्रह्म के आँगन में रहता है। उन्होंने कहा कि वह भी ब्रह्म रूप में ही परणित रहता है। उसी के आँगन में रमण करता रहता है। रमण करने मात्र से ही मुनिवरो ! देखो, उसका आभास हमें दृष्टिपात आता है। परन्तु जिस समय रचना होती है, रचना होते ही महत्तत्व से सन्निधान प्रकृति का होता है। प्रकृति अपने–अपने स्वरूप में नृत्य करने लगती है, नृत्य करती हुई उसी महत्तत्त्व की अनुपम चेतना के

आधार पर अपनी–अपनी चेतना में चेतनित रहती है। अपना–अपना कार्यवाहक इसके समीप आता रहता है। परन्तु देखो आत्मा इनके मध्य में ऐसे अपनी विकृतता (विशेष स्वरूपों) को प्राप्त हो जाती है। अपने–अपने स्वरूप में यह संसार रमण करने लगता। तो मुनिवरो ! देखो, आत्मा को शरीर की यहाँ आवश्यकता है। परन्तु यह अपने–अपने शरीरों को धारण करने वाला होता है। मैंने बहुत पूर्वकाल में अपना विचार देते हुए कहा था, ऋषि–मुनियों का विचार भी कुछ इसी प्रकार का है। जैसा मैंने बहुत पूर्वकाल में अपना विचार दिया। **जो मोक्ष के तुल्य (मोक्ष प्राप्ति के समीप पहुँची हुई) आत्मा होती हैं, वे अपने शरीरों को धारण कर लेती हैं।** क्योंकि प्रकृति से परमाणुओं से, परमाणुओं के द्वारा उन परमाणुओं को एकत्रित करने की उनमें क्षमता होती है, उनमें एक शक्ति होती है। उसी शक्ति के आधार पर वह अपने शरीरों को धारण करने लगती हैं। वह धारण करती हुई इस संसार में मुनिवरो ! देखो, **सृष्टि का कर्म प्रारम्भ हो जाता है।** ऐसा हमारे यहाँ आचार्यों ने स्वीकार किया है। यह मेरा कोई विशेष विचार नहीं है। यहाँ ऋषि–मुनियों का भी कुछ इसी प्रकार का विचार माना गया है।

ऋषियों में परस्पर विवाद नहीं होता

मेरे प्यारे ऋषिवर ! रहा यह वाक्य कि आज मैं इसको और भी गम्भीरता में ले जाऊँ। इसको अमारवती को प्राप्त करता जाऊँ। तो यह वास्तव में मुझे शोभनीय नहीं है। आज मैं इसको ऐसा ऋत् विवेक कृतम् मानव हेतु विषय नहीं बनाना चाहता। जिससे हमारी मानवीयता में किसी प्रकार की अभद्रता आती चली जाए। यह आज हम उन विचारों को ले करके महर्षि भारद्वाज और महर्षि रेवक मुनि महाराज वाले विवाद को लेकर के चलें। उन दोनों का एक विवाद था। विवाद क्या उनका एक विचार था। क्योंकि ऋषि–मुनियों का विवाद नहीं होता। उनका एक विचार होता। विवाद उनका होता है जिनमें अधूरापन होता है, जिनमें संकीर्णता होती है, उनमें तो विवाद होता है। परन्तु **जो ऋषि–मुनि होते हैं, तपे हुए पुरुष होते हैं, उनका एक विचार होता है।** विचारों में पूर्वकाल में भी भिन्नता होती रही तो आज भी मैं नहीं जानता उनके विषय को तो परन्तु पूर्वकाल में नाना प्रकार के विचारों में भिन्नता रही है। क्योंकि जितना मानव का तपा हुआ विचार होता है विचार के साथ में आत्मिक विचार होता है, उतना ही उसका विचार प्रभावशाली होता है और जितना विचार प्रभावशाली होता है उतना उसका यौगिकता का प्रदर्शन होने लगता है, उसकी प्रतिभा उसका समीप आने लगती है।

'विश्वभान–मन' सारी प्रकृति में ओत–प्रोत है

मेरे प्यारे ! तो विचार क्या कि आज हम परब्रह्म परमात्मा के संसार में त्रैतवाद को लेकर के चलते हैं। परन्तु अन्त में जब मानव का जिसको हम मोक्ष कहते हैं, मोक्ष की जो दशा है, उसकी जो गति है उसकी जो विचार–कृति है, वह एक और भी अनुपम मानी जाती है। हमारे ऋषि–मुनियों ने ऐसा माना है कि मोक्ष उसको कहते हैं कि जैसे यह बिना मोक्ष के प्रकृति के आँगन में यह आत्मा रमण करता रहता है। क्योंकि संस्कारों के जगत् में यह रमण करता रहता है और **संस्कार जो हैं ये मन की आभा हैं।** यह मन की आभा में रमण करता रहा है और यह मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व माना गया है। क्योंकि **प्रकृति का यदि कोई सूक्ष्म तत्त्व है तो वह मन है।** क्योंकि मन ही संसार में मानव शरीर में भी है। **"विश्वभान–मन"** भी कहा जाता है जो प्रकृति के, पृथ्वी के गर्भ में भी है। मन चन्द्रमा के गर्भ में भी है, सूर्य के गर्भ में भी है, नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों में मन अपना कार्य कर रहा है। वह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व माना गया है। तो बेटा ! **ऋषियों ने कहा कि मन जितना पवित्र होगा, मन जितना शोधित किया हुआ होगा, मानव की उतनी मानवीयता का यौगिक दर्शन होता है।** वह महत्ता को प्राप्त होता रहता है। यहाँ आचार्यों ने कहा है, ऋषि–मुनियों ने कहा है कि आज हमें इस मनुष्यत्व को जानने की आवश्यकता है। विचार क्या ? मैं अपने विचारों को बिखेरना नहीं चाहता हूँ। विचार यह कि यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व है और जो **प्राण की अनुपम चेतना है यही उस ब्रह्म की महत्तत्त्व की चेतना है।** जिस चेतना के आधार पर प्रकृति का विभाजन होता रहता है। तत्वों के विभाजित हो जाने के पश्चात उसकी विभाजनता 'अप्रेत' रहती है। विचार क्या कि आत्मा जब मन के आँगन में प्रकृति के आँगन में जब तक रहता है मुनिवरो ! देखो, मनुष्यत्व जब तक रहता है तब तक वहाँ इस आत्मा के साथ में संस्कारों का जगत् रहता है। **संस्कारों का यदि जगत् है तो वह प्रकृति का जगत् माना गया है।** हमारे ऋषि–मुनियों ने ऐसा माना है।

प्रकृति से बना जगत् १३६ प्रकार का है

परन्तु योग सिद्ध आत्माओं से ऐसा भी प्रतीत हुआ है कि प्रकृति के इस आत्मा के जानने के लिए मुनिवरो ! देखो, **१३६** जगत माने गये हैं। **१३६** जगत् हैं। ऐसा देखो स्थूल शरीर है, इस **स्थूल शरीर के लगभग ४० जगत्**

माने गए हैं और सूक्ष्म शरीर के भी लगभग ६० जगत् माने गये हैं। और उसके पश्चात् मोक्ष के भी जगत् कुछ अप्रेत माने गये हैं। परन्तु मैं उनकी गणना अच्छी प्रकार नही कर सकता। क्योंकि बहुत समय हुआ जब इनका अध्ययन किया था। विचार क्या मुनिवरो ! देखो, १३६ जगत् इस संसार में हैं। यह जीव जगत् में प्रकृति के आँगन में रमण करता रहता है। आत्मा तो इतने जगतों में प्रवेश होता हुआ उसके पश्चात् इसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। वहाँ जगत् केवल एक जगत रह जाता है। जिसको **आनन्दमय–लोक** कहा जाता है। जिसका ब्रह्म में प्रवेश हो जाता है। ब्रह्म की आभा में रमण करने लगता है। जैसे प्रकृति के गर्भ में यह आत्मा रहता है और यह मन के ही आँगन में रमण करता रहता है। मन को अपना **सहमन्त्री** स्वीकार करता रहता है। तो बेटा! यह अपने इस प्रकृति के क्षेत्रों में संस्कारों के क्षेत्र में रमण करता है।

संस्कारों के नष्ट होने पर ही आत्मा मोक्ष को पाता है

जब मोक्ष होता है तो बेटा संस्कार नहीं रहते **"संस्कारों के न रहने का नाम ही मोक्ष कहा जाता है।"** उस समय केवल एक प्रकाशमयी स्वरूप आत्मा अपने उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि होती है, समिधा में अग्नि होती है परन्तु यज्ञशाला में जब अग्नि प्रविष्ट हो जाती है तो उस अग्नि में जो प्रकाश, जो तरंगें उत्पन्न होती हैं उस की ऊर्ध्व गति होती है। क्यों होती है उसकी ऊर्ध्वगति ? उस की जो धारा है उसकी गति ही ऊर्ध्व मानी जाती है। इसी प्रकार यह जो आत्मा है इस शरीर में रहता हुआ भी वह संसार से उदासीन होना चाहता है। किसी काल में स्वर्ग की प्राप्ति में चला जाता है। तो किसी काल में यह मोक्ष की कल्पना करने लगता है। यह जो संसार है इससे यह ऊब जाता है। क्यों ऊब जाता है ? क्योंकि इसकी गति ही ऊर्ध्व होनी चाहिये। मेरे प्यारे ऋषिवर ! इसमें जो तरंगे होती हैं, इसका जो सखा है आत्मा का वह ऊर्ध्व है। अग्नि की तरंगों पर विराजमान हो करके शब्द व्यापक बना करता है। यह जो आत्मा है यह परब्रह्म परमात्मा की आभा को जानने के पश्चात् संसार की आभा में आभासित हो जाता है। उसी में यह रमण करने लगता है। इसीलिए यह परमात्मा उसका सखा है। वह अपने सखा को जब प्राप्त हो जाता है तो उसी के आँगन में आनन्दित रहता है। मुनिवरो ! जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा लगने के पश्चात् लोरियों में प्राप्त हो जाता है ! लोरियों को प्राप्त करने के पश्चात इसे एक आनन्द प्राप्त हो जाता है। क्योंकि **वह परमात्मा इस आत्मा का सखा है** इसीलिए मोक्ष की विचारधारा इसमें स्वाभाविक आती रहती हैं। उसी में यह रमण करता रहता है।

त्रैतवाद ही सिद्ध होता है

आज हम इसीलिए त्रैतवाद को स्वीकार करते हैं। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही क्योंकि ऋषि–मुनियों में विवाद होता रहा है। क्योंकि ऐकेश्वरवाद और मुनिवरो देखो, त्रैतवाद की विवेचना परम्परागतों से ऋषि–मुनियों के मस्तिष्क में भी आती रही है। परन्तु अधिकतर जो मत माना गया है ऋषि–मुनियों का वह त्रैतवाद ही सिद्ध होता है। क्योंकि बिना त्रैतवाद के सिद्ध किए हुए यौगिकता सिद्ध नहीं होती और जब यौगिकता सिद्ध नहीं होती, तो मानव कर्म से विहीन हो जाता है और जब कर्म से विहीन हो जाता है तो समाज जो प्रकृति का एक कार्य है वह भ्रष्ट हो जाता है। उसमें मानवीय कर्म की आश्रयिता समाप्त हो जाती है। इसीलिए आचार्यों ने ऐसा कहा है कि हम त्रैतवाद को लेकर के चलें क्योंकि एक–दूसरे पर छाया हआ जगत् प्रतीत होता है।

प्रकृति–जगत् और जीवात्मा ब्रह्म में ही स्थिर हैं

यह प्रकृति ब्रह्म में ठहरी हुई दृष्टिपात आती है। वह जो परब्रह्म परमात्मा है वह आत्मा में ठहरा हुआ दृष्टिपात आता है। यह आत्मा और प्रकृति दोनों ब्रह्म में ठहरी हुई दृष्टिपात आती हैं। एक–दूसरे की सहकारिता से ही यह जगत् अपने–अपने आँगन में अपने–अपने आसन पर ही नृत्य कर रहा है। जिस अन्तरिक्ष में लोक–लोकान्तर अपने–अपने आँगन में नृत्य कर रहे हैं। ध्रुव–मंडल अपने आंगन में नृत्य कर रहा है ! पृथ्वी अपने आंगन में नृत्य कर रही है ! अपने–अपने आसन पर नृत्य करने मात्र से यह जगत् मुनिवरो ! देखो, अपने ही आँगन में ठहरा हुआ है। एक चेतना में ठहरा हुआ यह संसार दृष्टिपात आता रहता है।

मानवीयता को ऊर्ध्व बनाओ

तो इसीलिए बेटा ! आज मैं अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूँगा। क्योंकि विचार क्या कि आज हम परमात्मा के क्षेत्र में जाने का प्रयन्त करें। क्योंकि महान् परमात्मा में यह जगत् ठहरा हुआ है और आत्मा एक–दूसरे जो त्रैतवाद है अपने–अपने आँगन में एक–दूसरे की सहकारिता से ही यह संसार दृष्टिपात आ रहा है। बेटा ! जब

मैं यह विचारता रहता हूँ, संसार की उस महान् ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ने लगता हूँ। क्या हमें इस उड़ान में उड़ना है। आत्मा की जो उड़ान है, विज्ञान की जो उड़ान है, इसमें प्रत्येक मानव को उड़ना है। मानव के मस्तिष्क में यह कल्पना आ जाती है। इसी कल्पना के साथ अपनी मानवीयता का ऊर्ध्व बनाना, यौगिक क्षेत्र में ले जाना है। मुनिवरो ! देखो जो **आत्मवेत्ता पुरुष होते हैं, जो आत्मा को जान लेते हैं उनके सम्पर्क में जाने से मानव हृदय का परिपक्व होता है।**

त्रैतवाद से मानव महान् बनता है

जो योगसिद्ध आत्माएं होती हैं, उन आत्माओं की यह जान–कारी है। जब उनकी पृथ्वी से ले करके और भी ध्रुव मण्डल क्या उनके लिए नाना प्रकार के लोक–लोकोन्तरों तक उनकी उड़ान होती है। जो योगसिद्ध आत्माएं होती हैं उनकी बहुत ऊँची उड़ान होती है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञानवेत्ता केवल श्वांस के द्वारा ही उसका चित्रण कर लेता है उसको यन्त्रों में भरण कर देता है, इसी प्रकार जो योगसिद्ध आत्माएं होती हैं वे त्रैतवाद को ले करके और प्रकृति से लेकर के ब्रह्म तक उनकी उड़ान होती है। उनकी उड़ान इतनी विशाल होती है कि वह उस महान् आँगन में चले जाते हैं। चले जाने के पश्चात् मानवीय क्षेत्र में एक मानवता का दिग्दर्शन होता रहता है और वह इस प्रकृति के उस महान् आँगन को नहीं छूना चाहते जिसमें विडम्बना (छलना) हो, जिसमें दाह हो, वे उस ब्रह्म की दाह को अपने में ग्रहण कर लेते हैं। जिससे मुनिवरो ! देखो, पिपासा शान्त हो जाती है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। शेष विचार तो मैं कल ही दे सकूँगा। आज का विचार तो संक्षिप्त परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि जैसा मुझे आज के वेद–मन्त्रों से कुछ आभास हुआ, वायुमण्डल में से कुछ ऐसे परमाणुओं का अभास हुआ, उसके आभास पर मुनिवरो ! मैंने अपना कुछ संक्षिप्त परिचय देना प्रारम्भ किया। और वह परिचय क्या ? हम त्रैतवाद को लेकर के चलें और त्रैतवाद का जो योग है, वह सिद्ध होता है। वह महत्ता में ले जाता है। मुनिवरो ! जो एकेश्वरवाद (द्वैतवाद) या अद्वैतवाद को जो ब्रह्म को लेकर के चलता है, एक ही ब्रह्म है, मुनिवरो ! देखो, जब एक ही ब्रह्म को लेकर के चलते हैं तो उसमें नाना प्रकार के अरोपण हो जाते हैं। इन आरोपों से सृष्टि का जो क्रम है, मानवीय कर्म हैं, उनमें भिन्नता आ जाती है। उनमें एक अकृतता आ जाती है। सृष्टि का क्रम अच्छी प्रकार हम वर्णन नहीं कर सकते। उसमें नाना प्रकार के दोषारोपण ही दृष्टिपात आने लगते हैं।

योग सिद्ध आत्मा

तो बेटा! मैं आज अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि इस विषय में मैं कल अपना विचार प्रकट करूंगा। क्योंकि आज का विषय तो केवल इतना ही परिचय दिलाना चाहता हूँ। संसार में त्रैतवाद को लेकर के चलना चाहिए। कल मैं ये चर्चाएं करूंगा कि योगसिद्ध आत्माएं किस प्रकार अपनी विवेचना (निर्णय) में परणित होती रहती हैं और किस प्रकार वायुमण्डल में अपने शरीरों को धारण करती हैं। कल मैं इस विषय के ऊपर अपना प्रकाश दे सकूँगा। जितना मुनिवरो देखो, मैंने जाना है उसके आधार पर अपनी विवेचना (निर्णय) प्रकट करूँगा।

आज का विचार क्या कि हमें परमपिता–परमात्मा को अपना आधार बना करके **अपने को समर्पित करते हुए चलना है** क्योंकि संसार में जब तक हम किसी को समर्पित नहीं करेंगे तब तक हमारा जीवन कदापि ऊंचा नहीं बनेगा। क्योंकि सबसे प्रथम हमारा प्रारम्भिक जीवन हो तो हम किसी को अपने को समर्पित कर दें **और समर्पित करने के पश्चात् मुनिवरो ! उसमें नम्रता, यौगिकता, एक महत्ता का दिग्दर्शन उसके समीप आने लगता है।** तो इसीलिए आज अपने को समर्पित करने की भावना हम में हो। योग में प्रविष्ट हों। हमारी उड़ान इतनी ऊंची होनी चाहिए इस पृथ्वी मंडल से लेकर के और गन्धर्व लोकों तक हमारी उड़ान होनी चाहिए।यह है। बेटा आज का वाक्। आज मैंने कुछ संक्षिप्त परिचय दिया है। मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेद मन्त्रों का पाठ होगा। पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा। पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः। **दिनांक : ११ अप्रैल १९७२ स्थान : योग–निकेतन, ऋषिकेश।**

२. ईश्वर, जीव और प्रकृति १२ अप्रैल १९९२

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों को गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे

यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी में उस परमपिता–परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि यह जो सर्वत्र जगत् आज हमें दृष्टिपात आ रहा है यह एक मनोहर विज्ञानशाला–सी दृष्टिपात आती है। जैसे प्रत्येक मानव इस संसार में अनुसन्धान के लिए ही उत्पन्न हुआ हो क्योंकि प्रत्येक वस्तु में विज्ञान की धाराएं दृष्टिपात आने लगती हैं। क्योंकि जब प्रत्येक वस्तु में विज्ञान–ही–विज्ञान दृष्टिपात आता है तो इससे यह प्रतीत होता है कि परमपिता–परमात्मा विज्ञानमय विज्ञानस्वरूप माना गया है क्योंकि उसकी विज्ञानमयी महत्ता दृष्टिपात आने लगती है।

देवर्षि नारद और महात्मा ध्रुव

इससे पूर्व शब्दों में हम यह उच्चारण कर रहे थे कि भौतिक विज्ञानवेत्ता की उड़ान कितनी विशाल है ? भौतिक विज्ञानवेत्ता इस पृथ्वीमण्डल से अपनी उड़ान उड़ता है, वह ध्रुव मण्डल तक चला जाता है। उसकी गति इतनी महान् और बलवती होती है वह उस महान् उड़ान को इस परमाणुवाद में अपने को इतना घनिष्ठता में ले जाता है कि उसकी उड़ान बेटा ! ध्रुवमंडल तक प्रायः होने लगती है। मुझे वह समय भली–भाँती प्रायः स्मरण–सा ही रहता है जब महात्मा ध्रुव और देवर्षि नारद मुनि दोनों की विज्ञानशाला और प्रायः भौतिकवाद में उनकी इतनी ऊँची उड़ान थी। वह इस पृथ्वी से उड़ान उड़ते और ध्रुव मण्डल तक उनकी उड़ान होती रहती थी। परन्तु यह एक विचार का विषय है कि हम भौतिकवाद में चले जाएँ। **भौतिकवाद में जाने से पूर्व हम अपने को यह विचार कर लें कि हमारा मानवीय जीवन कितना महत्वदायक है। हम आत्मवेत्ता बनने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।**

भौतिकवाद एवम् आध्यात्मिकवाद

हमारे आचार्यों ने ऐसा कहा है कि **जहाँ भौतिकवाद समाप्त होता है वहाँ अध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ होता है।** क्योंकि आध्यात्मिकवाद वहीं प्रारम्भ होता है जहाँ यह परमाणुवाद अपने आसन पर नृत्य करने लगता है। उस समय मानव को पिपासा होती है कि मैं आध्यात्मिक आनन्द को प्राप्त करना चाहता हूँ। क्योंकि जब तक वह भौतिक विज्ञान से ऊब नहीं जाता, भौतिकवाद से जब तक वह अक्रत (विमुख) नहीं होता तब तक उसकी मनोभावना अथवा उसका जो मनोबल है वह उस आत्मा के लिए प्रेरित नहीं होता। परन्तु शनैः–शनैः उसमें गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता तो प्रायः रहती है। गम्भीर अध्ययन मानव को प्रायः करना ही चाहिए क्योंकि तभी उस महान् विज्ञानशाला की हमें वैज्ञानिकता दृष्टिपात होने लगेगी। क्योंकि यह जगत् एक विज्ञानशाला के रूप में दृष्टिपात आता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! वह समय भी मनोहर होता है जब आत्मबल के प्रभाव से एक मृगराज भी चरणों में ओत–प्रोत होता है। वह भी तो एक आध्यात्मिक विचार है। वह भी तो मन की एक प्रतिभा (विशेषता) है। **आत्मा के प्रकाश में मन अपने प्रकाश से प्रकाशित होता रहता है।** आज मैं अधिक विवेचना इस सम्बन्ध में नहीं देना चाहता हूँ क्योंकि अंहिसा का विषय नही लेना चाहता हूँ। विचार यह है कि आज हम ऋषि–मुनियों की कुछ विचारधाराएं प्रकट करना चाहते हैं।

त्रैतवाद

परम्परागतों से एक विवाद चला आता है। आज कोई नवीन विवाद मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा से अथवा अपनी विवेचना से प्रकट नहीं करा रहे हैं। यह तो परम्परा का एक विचार है। मानव के द्वारा एक ईश्वरवाद की विवेचना होती है। कहीं त्रैतवाद की विवेचना होती रहती है। जहाँ हम त्रैतवाद में आते हैं वहाँ नाना ऋषियों का जो विचार है उसके ऊपर हमें अनिवार्यरूप से विचार–विनिमय करना है। संसार के उस महान् क्षेत्र में भी जाना है, जिस क्षेत्र में जाने से यह सिद्ध हो जाए कि हम वास्तव में इस वाद को लेकर के चलें। यह वाद महान् है, अधिक महान् है। परमपिता–परमात्मा की सृष्टि का अध्ययन हमें क्या कह रहा है ? आज हम ऋषि–मुनियों के कुछ विचार तुम्हारे समीप उपस्थित करने आ पहुँचे हैं। हमारे यहाँ जड़ और चेतना का बड़ा एक विवाद है। महर्षि पिप्पलाद मुनि के द्वारा जब नाना जिज्ञासु जाते उनकी विवेचना प्रारम्भ होती तो वे ऋत् और सत् दोनों की विवेचना करते रहते थे। परन्तु जब आदि ब्रह्मा से ले करके महर्षि अंगिराचार्य आदि का जो मत है, वह विचार कुछ और ही कह रहा है। महर्षि अंगिरा जी और वायु मुनि दोनों ने अपने जो विचार प्रकट किये वे केवल एक त्रैतवाद को लेकर के चले। परन्तु त्रैतवाद की जो प्रतिभा है, वह एक ऐसी प्रतिभा है जिसके ऊपर गहन अध्ययन की आवश्यकता रहती है।

आत्मा परमात्मा भिन्न–भिन्न हैं

परमपिता–परमात्मा के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचना हैं। आज हम परमात्मा को यह स्वीकार कर लेते हैं कि परमात्मा का प्रतिबिम्ब प्रत्येक चित्तों पर आता है तो उसकी एक कृति प्रतीत होने लगती है। आज हम जब

यह स्वीकार करते हैं कि नाना प्रकार के जो चित्र संसार में प्रकृति की एक मूल धारा है, उस धारा पर प्रभु की एक चेतना उसकी प्रतिभा अथवा प्रतिबिम्ब उसमें प्रायः आता रहता है। उससे वह नृत्य अथवा गति करने लगते हैं तो वह गति परमात्मा के प्रकाश से है।

यदि हम परमात्मा को आत्मा के स्वरूप में स्वीकार कर लेते हैं आत्मा और परमात्मा जो एक–एक शब्द बन जाते हैं परन्तु यह शब्द केवल शब्द मात्र ही है। इन शब्दों का स्रोत क्या है ? यदि हम स्रोत को केवल अज्ञान की प्रतिभा से स्वीकार करेंगे, अज्ञान का मूल स्वीकार करेंगे तो यहाँ अज्ञान पृथक् अस्तित्व नहीं माना गया है। आचार्यों ने तो ऐसा माना है कि आत्मा भिन्न रहने वाला है, परमात्मा भिन्न रहता है ऐसा हमारे अंगिरा जी ने और महर्षि वायु ने माना है। क्योंकि संसार में तीन ही वस्तुएं (पदार्थ) होते हैं। (१) रचने वाला (२) एक उसमें प्रवेश करने वाला (३) एक जिससे वह रची जाती है। वास्तव में ये तीन वस्तुएं मानी जाती हैं।

महर्षि अंगिरा, वायु, पिप्लाद, याज्ञवल्क्य तथा जैमिनि आदि महर्षिगण मोक्ष में भी जीवात्मा को परब्रह्म में प्रति मानते हैं

हमारे यहाँ महर्षि अंगिरा जी ने नाना प्रकार की विवेचना प्रकट कीं। इन विवेचनाओं के साथ–साथ उन्होंने यह माना यदि हम एक ईश्वर को ही, परमात्मा को ही स्वीकार कर लेते हैं, एक ब्रह्म को ही स्वीकार कर लेते हैं तो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब चित्तों में प्रवेश होता है। चित्तों में उस ब्रह्म की छाया रहती है। जितना भी मानवीय शरीर में अज्ञान आता रहता है उतनी ही उनकी संज्ञा बनती रहती है। कहीं जीव की संज्ञा है तो कहीं आत्मा की संज्ञा है कहीं उसको ब्रह्म की संज्ञा स्वीकार कर लेते हैं। तभी तो महर्षि अंगिरा जी ने इसमें नाना प्रकार की वार्ता प्रकट करते हुए ऐसा कहा कि यह वाक्य वास्तव में हमें सुन्दर प्रतीत नहीं होता। रहा यह वाक्य कि आत्मा हमें कहाँ स्थित करना है। कहाँ प्रकृति को हमें स्थित करना है ? तो **सार्वभौम सिद्धान्त** यह माना गया है कि सूक्ष्म वस्तु स्थूल वस्तु में समाहित हो जाती है उसका रूपान्तर होता है। मुनिवरो ! देखो, यह पृथ्वी है यह जल में प्रवेश हो जाती है। जल में जब यह प्रतिष्ठित हो जाती है और जल अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाता है। अग्नि वायु में प्रतिष्ठित हो जाती है। वायु इस अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाती है। एक–दूसरे की प्रतिष्ठा इस प्रकार हम स्वीकार करते रहते हैं। प्रायः ऋषि–मुनियों का यह विचार है। आज तो बेटा ! केवल यह हमारा ही विचार नहीं मैं तो केवल आदि ऋषियों के विचारों को प्रकट कर रहा हूँ। उन्होंने कहा है कि संसार में इस प्रकार की जो प्रतिभा एक–दूसरे की प्रतिष्ठा है तो ऐसे ही आत्मा की प्रतिष्ठा उस ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाती है जिसको हम मोक्ष कहते हैं। हम यह स्वीकार करते हैं। परम्परागतों से इसको हमारे यहाँ महर्षि पिप्पलाद ने भी माना है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है और भी आदि ऋषियों ने ऐसा स्वीकार किया है। इन नाना प्रकार के वादों में महर्षि जैमिनि जी ने भी कुछ ऐसा ही स्वीकार किया है।

परमात्मा का प्रतिबिम्ब या उसका अंश जीवात्मा को मान लेने पर परमात्मा पर अनेक दोषों का आरोप कर देते हैं

परन्तु आगे चल करके उनका विचार भिन्नता में परणित होता रहता है। महर्षि वायु मुनि महाराज और अंगिरा जी दोनों का विचार–विनिमय होता रहता था और दोनों के विचारों में एक ऐसा संघर्ष उपलब्ध हो जाता उनमें ऐसा विवाद उत्पन्न हो जाता था कि उस विवाद का निपटारा कुछ नहीं हो पाता था। तो इसका विचार केवल यह है कि हमारे यहाँ मोक्ष किसे कहते हैं ? मोक्ष की जो प्रतिभा है, जो एक भाषा है, अकृतता है उसको हम ऐसा ही स्वीकार करते हैं। मोक्ष की निर्धारित सीमा मानी है। जैसे ब्रह्म के सौ वर्षों से ही ब्रह्म की शतायु[1] होती है, उसी प्रकार हम मुक्ति का काल स्वीकार करते रहते हैं। उन्होंने ऐसा माना है। वह एक ऐसा वाद है जिसके ऊपर और भी अध्ययन किया जा सकता है और भी पूर्वगतों (पूर्व ऋर्षियों) का अध्ययन ऐसा रहा है। उन्होंने ऐसा स्वीकार किया कि हम यह कदापि स्वीकार नहीं करते कि ब्रह्म और आत्मा एक वस्तु हम स्वीकार कर लें। एक जड़ और चेतन्य दोनों ही वस्तु आज जब हम स्वीकार करते हैं। निराकार और साकार ब्रह्म का जब वर्णन आता है। तो यह हमें दृष्टिपात आता है। ब्रह्म की चेतना से यह प्रकृति जब अपने में चेतन्य हो जाती है, नृत्य करने लगती है तो उस समय ब्रह्म का ही यह साकार रूप बन करके सर्वत्र ब्रह्माण्ड नृत्य करने लगता है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड में एक गति आ जाती है क्योंकि प्रकृति का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। रहा यह वाक्य कि चित्त में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब आता है और चित्त के न रहने पर वही मुक्त हो जाता है। ऐसा भी नवीन आचार्यों ने स्वीकार किया। आज बेटा ! मैं अपना मत वर्णन करने नहीं जा रहा हूँ। यहाँ तो ऋषि मुनियों का मत वर्णन कर

रहा हूँ। जैसा ऋषियों ने कहा है मैं उनके विचारों को आज तुम्हें प्रकट करना चाहता हूँ ऋषि–मुनि क्या स्वीकार करते हैं। उन्होंने कुछ ऐसा माना है कि यदि हम यह स्वीकार कर लें तो ब्रह्म में नाना प्रकार के दोषारोपण आ सकते हैं क्योंकि ब्रह्म को उन्होंने स्थूल रूप धारण कराया यदि संसार में ब्रह्म की ही चेतना और प्रकृति की ही हम जड़ता को स्वीकार करते हैं। आत्मा का कोई अपना अस्तित्व स्वीकार नहीं करते।

एक सृष्टि की पूर्ण आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की होती है। एक सृष्टि के पश्चात् प्रलयकाल भी चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष के काल का होता है। एक सृष्टि तथा एक प्रलय के काल का योग आठ अरब चौसठ करोड़ वर्षों का होता है। इतना काल ब्रह्म का एक दिवस और एक रात्रि माना जाता है। इसके मास, मास के वर्ष, तथा पूर्ण शतायु को ब्रह्मा की आयु मानते हैं। अर्थात् 30a1 a100=36,000 छत्तीस हजार बार सृष्टि के रचना तथा प्रलयकाल तक अर्थात् महाकल्प पर्यन्त जीवात्मा मोक्ष अवस्था में परमात्मा में प्रतिष्ठित रहता है। जीवात्मा नाश नहीं होता। इसके पश्चात् जीवात्मा पुनः जन्म धारण करता है मोक्ष से जीवात्मा लौटता है।

ब्रह्म जड़ प्रकृति से निर्मित चित्त में अपना प्रतिबिम्ब डालकर जन्म–मरण के चक्र में क्यों फंसे ?

इससे यह प्रतीत होता है कि संसार में यह जो रचना है इस रचना का मूल कारण क्या है ? क्योंकि रचना का कोई तो मूल कारण है। रचना क्यों होती है ? इसका कारण क्या है ? यदि इस रचना को स्वीकार नहीं करोगे तो यह रचना है ही क्या ? क्योंकि यदि हम प्रकृति की रचना को स्वीकार करते हैं तो इस प्रकृति का तो रूपान्तर होने वाला है। प्रकृति उसी को कहा जाता है जो प्रकृति विकृत में आने वाली हो। इसका रूपान्तर होता है तो इसकी रचना की उस ब्रह्म को आवश्यकता क्या है ? जब उसी प्रकृति के चित्त बनते हैं। उन्हीं चित्तों में प्रभु का प्रतिबिम्ब आता है और उसी प्रतिबिम्ब के कारण प्रत्येक मानव का शरीर बनता है। अपने–अपने कारणों में अपनी–अपनी अवस्था के साथ–साथ उसी से प्रकृति के आवेशों से संस्कार बनते हैं, वही संस्कार अपने–अपने आसन पर नृत्य करने लगते हैं। उसी में भोगवाद बनता है उसी से सृष्टि का चक्र चलता है तो इस ब्रह्म को यह आवश्यकता क्या है ? यदि हम इस तर्क के आधार पर जाते हैं तो यहाँ यह विचार आता है। अंगिरा जी ने जब वायु मुनि जी से ऐसा कहा तो मुनिवरो ! वायु मुनि महाराज इसमें कुछ मौन से हुए परन्तु वे समाधिस्थ हो करके और नेत्र शान्त करके उन्होंने लगभग इस विषय को विचारने के लिए बहुत समय तप किया और तप करने के पश्चात् उन्होंने एक ही वाक्य कहा कि ऐसी तो यह प्रभु की एक नृत्यता प्रतीत होती है। जैसे नृत्य हो रहा है। प्रभु एक अपने में ही क्योंकि बहुधा ''ब्रह्म व्यापक प्रवे'' ऐसा कहते हैं क्योंकि ''वही ब्रह्म एक अनेक रूपों में परिणित होता रहता है'' ऐसा भी स्वीकार करते हैं। परन्तु जब ऐसा कहा तो अंगिरा जी ने कहा कि यह सिद्ध नहीं होता। क्योंकि यह वाक्य एक ऐसा वाक्य है जिसमें विवाद बना ही रहता है और विवाद बनाने के लिए आज हम प्रायः इस पर अनुसंधान कर सकते हैं। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! यह हमारे यहाँ अंगिरा जी का और आयु मुनि महाराज का संवाद प्रायः चलता रहता था।

भृंगी ऋषि का मत

मुनिवरो ! मुझे एक वाक्य और स्मरण आ गया है। इस सम्बन्ध में एक समय महर्षि भृंगी जी ऋत् और सत् के ऊपर अध्ययन कर रहे थे। परन्तु उनको लगभग 100 वर्ष हो गये ऋत् और सत् के ऊपर अध्ययन करते हुए। उन्होंने जब हिंसा को अपने आधीन कर लिया ''अहिंसा परमो धर्मः'' वाले बन गये तो उन्होंने अपनी लेखनी–बद्ध करते हुए अपने विचारों में ऐसा कहा है कि संसार में ''अहिंसा परमो धर्मः'' बनता ही उस काल में है जब आत्मा का प्रकाश आत्मा को प्रकाशित करता रहता है। ऐसा उन्होंने कहा है। जैसे हिंसक प्राणी है वह हिंसक प्राणी आज मानव का भक्षण कर जाता है। परन्तु आत्मा में तप के कारण इतना बल उत्पन्न कर लिया जाता है उस प्रकृति के आवरण को त्यागने के पश्चात् अपनी साधना के द्वारा, तप के द्वारा इतना बलिष्ठ अपने को बना लिया जाता है कि वह जो हिंसक प्राणी हैं, उसके श्वांस, उसके शरीर की सुगन्ध को भी जानने लगता है। क्योंकि हिंसक प्राणियों का जो घ्राण (इन्द्रिय) होती है वह बड़ी बलवती होती है। उनके द्वारा एक विशेष सत्ता होती है और वह उस सुगन्ध के द्वारा उसकी सुगन्ध को हिंसक प्राणी अच्छी प्रकार अध्ययनशील बना लेते हैं और अहिंसा की भी सुगन्ध को वह जान लेते हैं। उसी सुगन्ध के आधार पर नेत्रों की ज्योति के आधार पर, उनकी तरंगों के आधार पर उनको वह अपने स्वभाव को उसी स्वभाव के अनुकूल बना लेते हैं। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! ऐसा हमारे

यहाँ महर्षि भृंगी जी ने अपनी लेखनीबद्ध करते हुए कहा है। संसार में इससे यह प्रतीत होता है कि यदि इन सब वस्तुओं को मानव अध्ययन कर लेता है तो आत्मा का भान आत्मा को ही भासने लगता है। परन्तु ऐसा भी उन्होंने कहा है कि यह मन की ही तरंगें हैं, क्योंकि जितना भी यह भय उत्पन्न होता है, ईर्ष्या है यह जितना भी संसार का कृत्य है यह सब प्रकृति से उत्पन्न होता है। तो प्रकृति के स्वभाव को हमें परिवर्तन करना है। उस प्रकृति के स्वभाव को परिवर्तित करने वाला जो प्राणी है, मन की आभा के द्वारा, मन की तरंगों के द्वारा ही मन को मन से प्रभावित किया जाता है। ऐसा कहीं–कहीं स्वीकार करते हैं। परन्तु यहाँ यह प्रकृति की विच्छिन्नता मानी जाती है। हमारे यहाँ ऋषि–मुनियों ने ऐसा माना है।

जीवात्मा का अपने को परमात्मा को समर्पित कर देने से ही अज्ञान दूर हो सकता है

बेटा ! मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव का विचार भी स्मरण आता रहता है। किन्ही–किन्ही आचार्यों ने इस वाक्य को इसलिए स्पष्ट नहीं किया कि देखो, समाज में किसी प्रकार की भ्रान्ति न उत्पन्न हो जाये। क्योंकि जो अज्ञानता होती है वह अज्ञानता तो मानव के हृदय में होती है और वह नाना व्याख्या करने से भी अज्ञानता समाप्त नहीं होती। अज्ञानता समाप्त उस काल में होती है जब कि वह प्रभु को अथवा अपने को समर्पित कर देता है। अपने को जब तक समर्पित नहीं करता तब तक उस मानव का अज्ञान किसी काल में समाप्त नहीं होता। मेरे प्यारे ऋषिवर ! जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा उपस्थित होते तो उनके आश्रम में मृगराज भी रहते। हम भी एक स्थान पर विराजमान हो जाते थे। जब वे अध्यापन प्रारम्भ करते ऋत् और सत् के ऊपर विचार–विनिमय होता। तो मुझे वह समय भली–भांति स्मरण रहता है। जब वह अपना विचार देते तो मार्ग में जो वृक्ष थे उन पर पक्षीगण रहते वे भी अपने वाक् को शांत कर देते थे, मृगराज तो क्या वे पक्षी भी उसको शांत कर देते थे क्योंकि विचार इतना तपा हुआ इतना महान् होना चाहिये।

ब्रह्म की विवेचना क्यों नहीं होती ?

तो मैंने एक समय अपने पूज्यपाद–गुरुदेव से एक वाक्य कहा कि भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ–जड़ और चेतना का आप क्या विश्लेषण करेंगे, आत्मा परमात्मा का क्या विश्लेषण करेंगे ? इससे तो यह प्रतीत होता है कि जैसे प्रकृति का एक मन है वह मन कहीं ''विश्वभान'' बना हुआ है, कहीं विशेष बना हुआ है। प्रकृति के पदार्थों में भी जब हम वसुन्धरा के गर्भ में जाते हैं, पृथ्वी के गर्भ में जाते हैं तो वहाँ भी मन की एक धारा प्रतीत होने लगती है। जितना भी परमाणुवाद है वहाँ भी एक मन की सत्ता प्रतीत होती है। क्योंकि परमाणुओं का और रसों का जो विभाजन है वह केवल इस मन के द्वारा ही होता है। और प्राण क्योंकि उनमें संचार रूप से रहता है, उनका विभाजन प्रायः होता रहता है। इसी प्रकार जैसी आपकी प्रवृत्तियाँ हैं आपका जो तपा हुआ विचार है यह जैसे हिंसक प्राणियों को प्रभावित कर रहा है। क्योंकि मन इनके द्वारा भी है, आप के द्वारा भी है। जैसे मन एकता में रहने वाला है, इसी प्रकार भगवन् ! क्या यह जो चेतना शरीर में चेतनित हो रही है, जिस चेतना में यह मन अपना कार्य कर रहा है क्या आप इस चेतना को एकता में परिणित नहीं स्वीकार करते हैं?

तो उस समय मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ने बहुत पूर्व काल में एक वाक् कहा कि यह तो वाक् बहुत ही सुन्दर है तुम्हारा। परन्तु मैं इसको इस रूप में स्वीकार प्रायः करता रहता हूँ। क्योंकि संसार में यह जो परमपिता जिसको हम ब्रह्म कहते हैं। बह्म को हम इस रूपों से स्वीकार नहीं करते जिस रूप से साधारण प्राणी स्वीकार करता है क्योंकि संसार में प्रायः मानव यह कह देता है कि ''मैं ब्रह्म हूँ'' ''मैं ही ब्रह्म हूँ''। वह ब्रह्म उस काल में कहता है जब तक वह प्रकृति के आवेश से रहता है। क्योंकि मैं का जो प्रतिपादन है वह प्रकृति का ही शब्द है। जहाँ ब्रह्म की एकता का प्रश्न आता है, वहाँ ''मैं'' का अस्तित्व नहीं रहता। इसलिए जब ''मैं'' नहीं रहता, है वत्स! हम इस शब्दों को इस प्रकार नहीं उच्चारण करना चाहते। क्योंकि वास्तव में जैसा है वैसा तो है ही। परन्तु रहा यह वाक्य जैसे हम प्रकृति की धारा में मन को स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार प्राण की चेतना को हम ब्रह्म की धारा स्वीकार करते हैं। और इस धारा को स्वीकार करते हुए हम यह भी स्वीकार करते हैं कि एक ही ब्रह्म है। ब्रह्म की चेतना प्रकृति को प्रभावित करती रहती है। उसी का जो एक प्रकाश है, उसी की जो चेतना है, वह संसार को चेतनित बनाती है। ''अज्ञानता ब्रह्म व्यापः''। रहा यह वाक्य कि ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप रहा है। ऐसा प्रायः मानव स्वीकार करता है।

परन्तु रहा यह कि मानवीय जाति में मानवीयता में एक मानव साधना कर रहा है। परन्तु वह साधना में मन और प्राण को और इस आत्मा को, परब्रह्म परमात्मा को दो रूपों में स्वीकार करने वाला है। वह दो रूपों में स्वीकार करता रहता है। आत्मा का जितना विशाल ज्ञान है जितना विशाल धृत है। क्योंकि संसार में जितने भी व्याख्याता होते हैं, विचारक होते हैं वह दो प्रकार की विवेचना करते हैं। प्रकृति की विवेचना आती है अथवा आत्मा की विवेचना आती है। अहा! ब्रह्म की विवेचना का अपने में कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि न उसकी प्रायः विवेचना आती ही है। तो रहा यह कि ब्रह्म की विवेचना क्यों नहीं आती? क्योंकि चेतना की विवेचना तो आती है और वह चेतना केवल शरीर में चेतना स्वीकार कर लो जैसे महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने राजा जनक को कहा है। उन्होंने कहा है कि संसार में आत्मा के न रहने पर यह शरीर शव बन जाता है, जड़ बन जाता है इसी प्रकार चेतना के न रहने पर यह प्रकृति एक जड़ रूप बन जाती है। शून्यता में परिणित हो जाती है। इसके एक रूप में नाना प्रकार की व्यापकता की तरंगे उत्पन्न हो जाती हैं। इसी प्रकार जब हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति शून्यवत् को प्राप्त हो गई यह जो मानवीय शरीर है यह प्रकृति का ही एक रूप है। इसमें जो चेतना है वह चेतना अपना कार्य कर रही थी वह चेतना चली गई। चेतना के न रहने पर मानव का शरीर शव बन गया। जिसको मृतक भी कहते हैं। वास्तव में आचार्यों ने ऐसा माना है कि इस शरीर का रूपान्तर भी हो जाता है। वास्तव में रूपान्तर ही होता है। ऐसा तो प्रायः स्वीकार करते ही हैं।

परब्रह्म की प्रतिभा को किस रूप में स्वीकार करें ?

रहा यह वाक्य कि हम उस परमबह्म परमात्मा की प्रतिभा को किस रूप में स्वीकार करें ? ऐसा हमारे यहाँ आचार्यों में भी नाना प्रकार का विवाद चला आया। परन्तु यहाँ मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ने ऐसा कहा है कि संसार में एक ही चेतना है और चेतना के भिन्न–भिन्न प्रकार के रूप हैं। इन रूपों में संसार का रूपान्तर होता रहता है। उसी की एक विज्ञानमयी ज्योति बनती रहती है। जिस प्रकार प्रकृति बनने वाली है। प्रकृति का रूपान्तर होने वाला हे। जैसे मानव के विचारों का रूपान्तर होता है। क्योंकि विचार एक धारा में रमण करने वाले है और वे विचार धाराओं में रमण करते हुए उन धाराओं का रूपान्तर हो जाते हैं। क्योंकि चेतना से जिस प्रकार की धाराओं का जन्म होता है इस प्रकार की धाराएं वास्तव में अन्त में उस धारा का रूप उस प्रकार का नहीं रह पाता। जिस प्रकार की धारा का उद्‌गार का स्रोत आदि में चला उस प्रकार का वह अन्त में नहीं रह पाता क्योंकि वह धारा तो चेतना की थी। परन्तु वह जब प्रकृति के आवेशों में आई तो उसका रूपान्तर होता रहा। जिस प्रकार का रज, तम, सत् बनता रहा उसी प्रकार उसकी धाराओं में प्रायः रूपान्तर होता रहा। तो ऐसा मुझे बेटा ! आभास होता रहता है और रहा यह वाक्य कि अब संसार में जैसा पूज्यपाद–गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया मैं वैसा ही उच्चारण कर देता हूँ। परन्तु पूज्यपाद–गुरुदेव का अन्तिम विचार क्या था ? इस सम्बन्ध में तो उन्होंने अपना तो अन्तिम विचार यही प्रकट किया जो आचार्यों का, ऋषि–मुनियों का परम्परागतों से था। ब्रह्मवेत्ताओं का जो प्रश्न है, उनकी जो धाराएं हैं, उनका जो मार्ग है उसी का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि **मानव को उस मार्ग को अपना लेना चाहिए, जिस मार्ग से महापुरुष प्रायः विचरण करते चले आए हों। वही मार्ग हमारे लिए श्रेष्ठ है।** तपस्वी पुरुषों ने जिस मार्ग को अपनाया है। मुनिवरों ! देखो महर्षि भृंगी जी और भी नाना आचार्यों ने ऐसा माना है।

जड़ मन का आत्मा के समक्ष अपना कोई अस्तित्व नहीं

मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव एक समय विराजमान थे तो उनके चरणों को छूते हुए जब हम अपने आसन पर विराजमान हो गए, तो मुनिवरो ! मृगराज भी आ गए वे भी उनके चरणों को स्पर्श करने लगे। तो उसी समय यह प्रश्न हुआ। मस्तिष्क में यह विचारधारा प्रारम्भ होने लगी। हे प्रभु ! क्या जब यह हिंसक प्राणी जिनका भोजन ही मानवीय शरीर है, प्राणी मात्र को जो भक्षण कर जाते हैं और आपके चरणों को छूते हैं इसका मूल कारण क्या है ? इसकी धाराएं क्या हैं ? इसको मैं जानना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि यह मन की पवित्रता है। हमने कहा कि मन का अपना कोई अस्तित्व है ? उत्तर मिला कि मन का अपना कोई अस्तित्व नहीं। जब प्रभु ! मन का अपना कोई अस्तित्व नहीं तो विचार आता है कि आत्मा, आत्मा से प्रभावित होता है। जिससे यह प्रतीत होता है कि आत्मा का उस ब्रह्म की चेतना है प्रभु की जो एक महान् धारा है उस स्रोत का जो एक प्रतिभास है वही उन्हें आभासित कर रहा है। वही उस मार्ग के लिए पुकार रहा है। क्योंकि आभा में वह जो चेतना है। उनमें ज्ञान

तो स्वाभाविक रहता है, ज्ञान स्वाभाविक रहने से उनका स्वभाव प्रायः बना ही रहता है। तो मुनिवरो ! ऐसा जब उन्होंने प्रकट किया तो उससे यह प्रतीत हो गया कि संसार में नाना प्रकार के मानवीय प्रतिभा से कृत्य उत्पन्न होते रहते हैं स्वगत विचार उत्पन्न होते रहते हैं, मन में भ्रान्तिएं उत्पन्न होती रहती हैं। उन भ्रान्तियों में ही चित्त की आभासता उस चित्त में ब्रह्म की एक महान् अकृत (अव्यक्त) चेतना का भास होता है। उसी भास से आभासित होता रहता है यह जगत्। तो ऐसा मुझे जब पूज्यपाद–गुरुदेव ने प्रकट कराया तो मुनिवरो ! हृदय में एक शान्ति की उत्पत्ति हुई।

''अहम् ब्रह्मास्मि'' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ मानव को यह कहने का अधिकार नहीं

तब हमने अपने पूज्यपाद–गुरुदेव से कहा कि भगवन् ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि जैसे मानव साधारण अवस्था में उच्चारण करता है कि ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' तो इसका क्या अभिप्राय है ? उन्होंने कहा ''इसका अधिकार मानव को नहीं होता''। मानव को इसका अधिकार इसलिए नहीं होता क्योंकि वह प्रकृति का भास है और प्रकृति आभास जो है वह मानव को ध्रुवगति (नीचगति) में ले जाने वाला है, ऊर्ध्व (उन्नति) को पहुँचाने वाला नही उसको हमें स्वीकार नही करना चाहिए। ऐसा मुझे मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ने प्रकट कराया।

महर्षि शाण्डिल्य, महर्षि शोकृति, महात्मा दधीचि आदि का सिद्वान्त

परन्तु रहा यह वाक्य कि महापुरुषों का जो मार्ग है, उन्होंने ऐसा क्यों नहीं प्रकट किया ? जैसा कि अंगिरा जी ने नहीं प्रकट किया। तब पूज्यपाद–गुरुदेव ने कहा कि उन्होंने इसलिए प्रकट नहीं किया। क्योंकि उनके विचारों में भिन्नता रहती है क्योंकि भिन्नता प्रायः मानवीय मस्तिष्कों में परम्परागतों से रहती है। क्यों ? जहाँ मानवीयता का प्रश्न आता है वह केवल एक विचारधारा की ही मानवीयता बनी रहती है। **मानवीयता का तो स्रोत ही उस काल में चला करता है जब भिन्नता रहती है।** यदि भिन्नता नहीं है तो मानवीयता का भी संसार में प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। ऐसा मुझे मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ने प्रायः प्रकट कराया। तो मुनिवरो ! उसी आसन पर विराजमान हो करके तब यह निश्चय किया गया कि वास्तव में ब्रह्म की ही चेतना है। जड़ और चेतना दोनों ही एकता में रमण करने वाले हैं। जड़ प्रभ अभ्रे चितम्हा भासम् प्रवे अस्तम्। यहाँ नाना प्रकार के शब्द हमें वैदिक साहित्य में प्रायः प्राप्त होते रहते हैं। रहा यह वाक्य कि आज हम इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचना करने वाले बनें। जैसा हमें आचार्यों ने और भी नाना महापरुषों ने वर्णन किया है। महर्षि शाष्डिल्य जी ने और महर्षि शोकृति जी ने ऐसा ही प्रकट किया। महात्मा दधीचि ने तो अश्वनी कुमारों को ब्रह्म उपदेश देते हुए ऐसा कहा है कि संसार में देखो, ब्रह्म को ही स्वीकार करना चाहिए। उसको स्वीकार करते हुए अपने चित्त में उसकी एकता का तारतम्य हमारे हृदयों में होना चाहिए। हृदय में ही सर्वत्र जगत् प्रतिष्ठत हो जाता है।

संसार मानव के हृदय में प्रतिष्ठित है, हृदय प्रभु में प्रतिष्ठित है

जिस समय चाक्राणि ने मुनिवरो ! ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से यह प्रश्न किया कि महाराज यह संसार की प्रतिष्ठा क्या है ? उन्होंने एक–दूसरे की प्रतिष्ठा से संसार का मिलान कराते हुए, अन्त में यह कहा कि मानव के हृदय में यह सर्व जगत् प्रतिष्ठित रहता है। जहाँ हृदय में संसार की प्रतिष्ठा स्वीकार की वहाँ उस समय संकल्प भी, प्रतिभा भी, श्रद्धा भी, यह जगत् की रचना भी, यज्ञ इत्यादि भी, सर्व की प्रतिष्ठा मानव के हृदय को स्वीकार किया। और फिर हृदय का मिलान, हृदय की एकता ब्रह्म में स्वीकार की तो उस समय यह प्रतीत हो गया कि ब्रह्म ही एक ऐसा है जिसकी चेतना से यह सर्व संसार चेतनित प्रतीत होने लगता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आचार्यों ने सुन्दर रूपों से इसकी रूपरेखा का चित्रण किया है। आज उन रूप रेखाओं को, उन आदेशों को पुनः से मैं प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह देना है कि हम उस ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करें। ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसी की कृतियों में, नाना रूपों में संसार को दृष्टिपात करते रहते हैं। केवल प्रकृति के आवेशों के कारण ही संसार के अनेक रूपों में स्वीकार करते हैं।

आत्मा, जीव तथा ब्रह्म नाम की संज्ञाएं (नाम) हैं

रहा यह वाक्य कि हम ब्रह्म और आत्मा की एकता को किस रूप में स्वीकार करें, यह मानव के द्वारा प्रायः प्रश्न रहता है। हमारे मस्तिष्कों में भी रहता है और भी नाना आचार्यों के मस्तिष्कों में रहता है परन्तु देखो, 1–आत्मा की 2–जीव की और 3–ब्रह्म की यह तीन संज्ञा बनती है। जिस समय यह साधारण अवस्था में होता है उस समय यही मानवीय शरीरों में जो आत्मा अथवा जीव रहता है वह जीव संज्ञा में रहता है। ''जीवः प्रवे'' जब

इसको अधिक तृष्णा होती है, 'कामाभ्रवे' होती है, यहाँ देवासुर–संग्राम अधिक होने लगता है जिस समय यह देवासुर–संग्राम समाप्त हो जाता है, असुर–संग्राम समाप्त हो जाने के पश्चात् मुनिवरो! आत्मा की प्रतिभा स्वीकार करते हैं। जब आत्मा का ''चित् ब्रह्म व्यापः'' नाना प्रकार के आवेश समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रकृति के मूल कारण पर चले जाते हैं तो यह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की अवस्था में जब परिणित हो जाते हैं, उस समय उसकी कृतियों में उसी को भासने लगते हैं और भासते हुए चित्त में उस प्रकाश की प्रतीति होने लगती है और मुनिवरो! देखो, ''चित्त ब्रह्मः'' जब चित् की संज्ञा भी समाप्त हो जाती है तो उसको हमारे यहाँ मुक्ति की अवस्था कहा जाता है। ऐसा हमारे यहाँ मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव स्वीकार करते हैं।

परमात्मा निरवयव, अनादि और स्वयम् ब्रह्म माना गया है

परन्तु इससे और भी नाना प्रकार की टिप्पणियां की जा सकती है। नाना प्रकार की विचारधाराएं प्रायः हमारे मस्तिष्कों में आती रहती हैं। नाना प्रकार का संवाद प्रायः चलता रहता है। मुनिवरों! देखों मैं आज अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि विचार केवल यह कि हम इस रूप में ही इस विषय को स्वीकार करते हैं जो हमारे पूज्यपाद–गुरुदेव इस रूप में स्वीकार करते चले आए हैं। मैं आज आत्मा के विषय को इतना विश्लेषण देना नही चाहता हूं क्योंकि परमात्मा निरवयव माना गया है स्वाकृति अनादि माना गया है, स्वयम् ब्रह्म माना गया है। इसी प्रकार आत्म ब्रह्म व्यापक प्रदे अकृतम् ब्रह्म व्याप अस्वति ! यह आत्मा उस ब्रह्म की ही एक ही प्रतिभा जैसे संसार में पिता और पुत्र होते हैं, पिता और पुत्र की संज्ञा हैं जब संसार में आत्मा के ऊपर विचार होता है तो चेतना में ही संसार स्वीकार होता रहता है। तो ऐसे मुझे प्रतीत होता है।

ब्रह्म के समक्ष आत्मसमर्पण से नम्रता तथा महत्ता प्राप्त होती है

तो आज अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहते। विचार यह कि हम परब्रह्म परमात्मा की उपासना करते हुए एक महान् अध्ययन करते चले जाएं। अपनी आत्मा अपने को उस ब्रह्म चेतना को समर्पित करते रहें। समर्पित करने से नम्रता महत्ता हमारे जीवन में उत्पन्न हो जाती हैं और हम अपने को जब प्रभु को समर्पित कर देते हैं तो अहम् भाव उत्पन्न नहीं होता। जहाँ अहम् भाव नहीं होता वहां चेतना में चेतना भासने लगती हैं मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अधिक चर्चा प्रकट करने नही आए हैं। विचार क्या कि आज हम उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना करते हुए, साधक बनते रहें और प्रत्येक विषयों पर अपना अध्ययन चालू रहना चाहिए।

परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान–विज्ञान वेद अनन्त है

महर्षि सोमभानु ऋषि ने ऐसा कहा है कि प्रभु के राष्ट्र में हमारी सहस्रों वर्षों की अवस्था हो और सहस्रों वर्षों तक हम वैदिक साहित्य का अध्ययन करते रहें तो भी यह अवस्था (जीवन) सूक्ष्म मानी जाती है। ऐसा क्यो? प्रभु का जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है वह अनन्तता में परिणित रहने वाला है। आत्मा, परमात्मा का विषय इतना गम्भीर है कि मुनिवरो! मुक्ति तक इसका अध्ययन करते रहो। अन्त में वहाँ जाकर के भिन्नता अभिन्नता के रूप में मानव को प्रतीत होती है। पर **मानव वाणी से इस विषय को वर्णन कर ही नहीं सकता। बेटा! उसको वेदों ने, दर्शनों ने 'नेति' 'नेति' कह कर प्रतिपादन किया है।** रहा यह वाक्य कि हम इस विषय पर चले जाएं। ऐसा प्रायः मानव स्वीकार करता रहता है।

प्रभु से परिचय, समर्पण बिना मानव में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ बनी ही रहती हैं

ब्रह्म व्यापक है। यह संसार प्रायः दृष्टिपात आ ही रहा है। इस सम्बन्ध में भी भिन्न–भिन्न प्रकार की विचार धाराएं मानव की प्रायः चलती रहती हैं। क्योंकि जब तक हम परम चेतना से अपनी चेतना को परिचय नहीं करा देते तब तक मुनिवरों! संसार में बनी हुई वस्तुओं से, बने हुए पदार्थों से मानव प्रमाण देता रहता है। उनके ऊपर टिप्पणियां करता रहता है, तर्कवाद में रमण करता रहता है। क्योकि प्रत्येक वस्तु बनी हुई है और बनी हुई वस्तुओं से बने हुए पदार्थों पर प्रमाण दिए जाते हैं। परन्तु आत्मा परमात्मा का गम्भीर और एक महान् विषय रह जाता है। जब तक आत्मा का प्रभु से परिचय नहीं हो जाता, तब तक मुनिवरो! मानव में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ बनी ही रहती है। इस प्रकार की विचारधारा प्रायः मस्तिष्क में आती रहती हैं।

जब हम अपने पूज्यपाद–गुरुदेव से आत्मा का प्रश्न करते तो उस समय पूज्यपाद–गुरुदेव उसके ऊपर विचार देते रहते। विचार देते–देते अन्त में मौन हो जाते और यह कहा करते, इस को जानने के लिए मन और प्राण दोनों का मिलान करो। उस आनन्द को प्राप्त करो जिस आनन्द को तुम्हें पाना है। उस आनन्द को पान

करने के पश्चात् बेटा! वह आनन्द वाणी का विषय नहीं रह जाता। इन्द्रियों का विषय वह ब्रह्म है ही नहीं। तो इसलिए उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए हम अपने में अनुभव करते रहते हैं। देखो, चित्त, मन इत्यादियों का प्रमाण देना हमारे लिए बहुत ही सहज रह जाता है क्योंकि संसार में हमारी वाणी भी अग्नि के सहयोग से, सहकारिता से इसका उद्गार उत्पन्न होता रहता है। देखो अग्नि के ऊपर अग्नि ही इसका वाहन रहता है। वाहन रहने के कारण इसका प्रायः प्रतिबिम्ब चलता रहता है! तो मैंने अपने पूज्यपाद—गुरुदेव से यह पाया कि आत्मा परमात्मा का एक गहन विषय हैं एकता—अनेकता में इसको दृष्टिपात करना एक ऐसा विषय है कि इसमें विचारते रहो, अनुसन्धान करते रहो अपने जीवन को महत्ता पर ले जाते रहो। परन्तु इसको प्रभु के समर्पित चेतना में चेतना का मिलान करने का प्रयास करो। प्रभु के आनन्द को प्राप्त होते रहो। प्रायः देखो, वही हमारा जीवन है। वही हमारी महत्ता है। वही हमारी एक यौगिकता कहलाई जाती है।

तो मुनिवरों! आज मैं अपने पूज्यपाद—गुरुदेव के विचारों को प्रकट कर रहा था। उनके द्वारा मृगराज रहते, पक्षी गण मौन हो जाते। उनका विचार इतना तपा हुआ रहता था। जिन महापुरुषों का, ब्रह्मवेत्ताओ का विचार तपा हआ होता है उनके **विचारों में इतनी विद्युत हो जाती है, इतना सूक्ष्म प्रकाश हो जाता है।** क्योंकि ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी में रहता है, तो वह पक्षी गणों के अन्तर्हृदय में भी जो हृदय है उसको भी वह चेतना देने वाला होता है। तो इसलिए आज हमें उस अनुपम प्रकाश में जाने के लिए प्रकाशित होना चाहिए। वही हमारा जीवन है। यह है मुनिवरो! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेद मन्त्रों का पाठ होगा। पूज्य महानन्द जी—अच्छा भगवान! आज्ञा। पूज्यपाद—गुरुदेव—आनन्द मंगलम् शान्तिः। **दिनांक : १२ अप्रैल १९९२ स्थान : योग निकेतन, ऋषिकेश।**

३. 'त्रैतवाद' ही सिद्ध सिद्धान्त है १३ अप्रैल—१९९२

जीते रहो!

देखो मुनिवरो। आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद—मन्त्रों का गुण—गान गाते चले जा रहे थे। आज के इस मनोहर वेद—पाठ में हमें ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे एक मनोहर आभा हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ट होने जा रही हो। क्योंकि ज्ञान और विज्ञान की जो आभा है उसका जो स्रोत है, वह मानव के अन्तःकरण में होता है। उस अन्तःकरण में जो सुन्दर आभाएं आती रहती हैं वह उस पवित्र आभाओं से प्राप्त होती हैं जिस आभा को प्रकाशमय माना हो, जिसको आनन्दमय माना गया है। तो मुनिवरो! आज हम उस मनोहर वेद—वाणी का जब उच्चारण करते हैं तो हमारे यहाँ वेद उच्चारण नाना प्रकार के होते हैं। जैसे हमारे यहाँ माला पाठ होता है, जटा पाठ होता है, घन पाठ होता है, स्वरों में उदात्त, अनुदात्त होता है, स्वरित होता है। पठन—पाठन के सुन्दर प्रकार होते रहते हैं।

प्रकृति का कण—कण ओम् रूपी धागे में पिरोया हुआ है

परन्तु आज हम **माला पाठ** के सम्बन्ध में कुछ विचार देना चाहते हैं। क्योंकि वह जो चेतना है जो ज्ञान स्वरूप है। वह चेतना ही संसार में ऐसे पिरोई रहती है जिस प्रकार मनको में धागा होता है। तो जब वह धागे में मनके पिरोए जाते हैं तो वह एक माला बन जाती है। इसी प्रकार वह जो ओम्—रूपी धागा है जो तीन व्याहृतियों में जिसको विभक्त किया गया है वह धागा इस प्रकृति के कण—कण में पिरोया हुआ है। यह प्रकृति मनके के सदृश ओम्—रूपी धागे में पिरोई हुई होने के नाते सृष्टि कहलाती है। जिसको हम रचना कहते हैं, जो हमें परिवर्तनशील दृष्टिपात आने लगती है। जब इन मनकों में धागा पिरोया जाता है, तो प्रकृति की गति नाना रूपों में परणित होने लगती है, तरंगे उत्पन्न होने लगती हैं। उन तरंगों में और भी नाना तरंगों का जन्म होता रहता है। जैसा हमारे यहाँ विज्ञानवेत्ताओं ने और भी नाना ऋषियों ने भौतिकवाद के सम्बन्ध में भी कहा है।

वाणी का वाहन अग्नि है

अग्नि के ऊपर विश्लेषण करते हुए एक समय महात्मा दधीचि—आश्रम में महर्षि शाण्डिल्य जी विराजमान थे। शाण्डिल्य मुनि बोले कि महाराज इस वाणी का वाहन क्या है? उस समय महर्षि दधीचि ने कहा कि वाणी का जो वाहन है वह अग्नि है। क्योंकि यह वाणी अग्नि के ऊपर विश्राम करती है और विश्राम करती हुई व्यापक बन जाती हैं। हमारे यहाँ ऐसा माना गया है आयुर्वेदिक ऋषियों ने भी माना है और भी नाना ऋषियों ने माना है कि

लगभग इस अग्नि की जो तरंगें होती हैं वह स्थाई–रूप से 284 प्रकार की होती हैं। ऐसा भी ऋषि ने कहा है कि वह जो 284 तरंगों में से अन्तिम तरंग है उसमें से 72 तरंगों का निकास होता है और वह जो 72वीं तरंग है उसमें से 99 तरंगों का जन्म होता है और वह जो 99वीं तरंग है उसमें से मुनिवरो! लगभग 120 तरंगों का जन्म होता है। (284a72a99a120=44,53,57,440 अर्थात् चवालीस करोड़ त्रेपन लाख सत्तावन हजार चार सौ चालीस प्रकार की अग्नि की सूक्ष्तम तरंगे होती हैं।)

तो बेटा! यह विचारा–जा सकता है अग्नि के सम्बन्ध में कि अग्नि की कितनी तरंगें हैं और **उन तरंगो के ऊपर विराजमान होने वाला शब्द है।** जब यह शब्द इसके ऊपर विश्राम करने लगता है तो **इसमें से अरबों–खरबों तरंगों का जन्म होता है।** तो मैं आज इन तरंगों में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि हमारा कल का विषय भी रह रहा है।

मानव के शब्दों के परमाणुओं में मानव का चित्र भी आकाश में प्रसारित होता रहता है

तो हमें यह विचार देना है आज हमें उस विज्ञान में जाना हैं एक भौतिक विज्ञानवेत्ता यह कह रहा है। हमारे यहाँ राजा रावण के पुत्र नारान्तक का विश्लेषण जब आता है तो राजा रावण के पुत्र नारान्तक ने एक समय यह कहा। प्रभु मैनें एक चित्रावली बनाई है। चित्रावली का निर्माण किया है और आपके सहयोग से उस चित्रावली में मानव का चित्रण आ जाता है। तो मुनिवरो! देखो, इसका मूल क्या हमारे यहाँ आता है। वैदिक–साहित्य में, वैदिक–मन्त्रों में आज भी आ रहा था। ''चित्रम ब्रह्म व्यापक प्रवे अस्ति सुप्रजः अध्युरत्नम वाचः अविशृयिमम भोगः अग्नि विप्रजः गच्छम् मनुवाचः''। ऐसा आज के इस वेद के पाठन–पाठन में आ रहा था और इसका अभिप्राय क्या है? वेद का ऋषि कह रहा है, वेद की आभाएं कह रही हैं कि मानव जब शब्द के साथ में एक चित्रावृत बनाता है, उसका एक स्थल बनाता है और अपने चित्रण को अपने इस मुखारबिन्द से निकला हुआ जो परमाणुवाद है वह वायु मण्डल में उसको त्याग देता है, उसका प्रसारण कर देता है। उसी शब्द के साथ में वह वाणी के सम्बन्धी उस चित्र के सम्बन्धी जितने भी यन्त्र हैं भौतिकवाद में सर्वत्र में उनका चित्र आता रहता है और वह जो चित्रण है वह नृत्य इत्यादि सभी कुछ कार्य करता रहता है।

महापुरुष के मुख से निकले सचित्र परमाणुओं का प्रभाव उसके निवास–स्थान पर पचास–वर्षों तक विचरता रहता है

हमारे यहाँ ऋषियों ने ऐसा माना है कि जिस स्थान पर महापुरुष रहते हैं उस स्थली पर उस महापुरुष के लगभग पचास वर्षों तक उसके परमाणु विचरते रहते हैं और उन परमाणुओं के साथ में उस महापुरुष का चित्र भी विचरता रहता है हमारे यहाँ यौगिक–सूत्रों में हमें प्राप्त होता है। तो बेटा हम यह चर्चा प्रकट कर रहे थे। आज हम विज्ञान के क्षेत्र में जाना चाहते हैं।

पुरातन काल में वैज्ञानिक ऋिषियों के बनाए गए यान आज भी चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों के कक्षों में भ्रमण कर रहे हैं

वैदिक जो विज्ञान है वह हमारे यहाँ परम्परागतों से ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में रहा है। ऋषि–मुनियों के अन्तःकरण में यह प्रकाश देता रहा है क्योंकि इसमें प्रायः ऐसी नाना प्रकार की धाराएं मानव के मस्तिष्कों में आती रहती हैं। एक समय मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रकट कराया कि आज का जो संसार है, आज का जो मानववाद है वह चन्द्रमा पर शयन कर रहा है। बेटा! यह कोई आश्चर्य नहीं है। तुम्हें यह प्रतीत होगा कि प्राचीन वैज्ञानिकों के नाना यन्त्र आज भी वायुमण्डल में भ्रमण रहें हैं। कुछ चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में हैं, कुछ मंगल के ऊपरले कक्ष में हैं। इस प्रकार जो बहुत पुरातन काल में वैज्ञानिक हुए जैसे द्वापर के काल में हुए और इससे पूर्व काल में भी हुए उनके बहुत से यन्त्र इस प्रकार के हैं। महर्षि भारद्वाज मुनि की तो परम्परा चली आ रही है। **स्वाकृति भारद्वाज** की बहुत ऊंची विशाल उड़ान थी विज्ञान में उन्होंने लगभग देखो ध्रुवयन्त्रों का निर्माण किया और **ध्रुव के आंगन में उसके कक्ष में भ्रमण करते थे।** पुरातन काल में एक–एक वैज्ञानिक यहाँ इस प्रकार का हुआ।

महात्मा 'ध्रुव' ने ध्रुवमण्डल में भ्रमण करने वाले यानों का निर्माण किया था

ऋषि–मुनियों के उस समूह ने ऐसे यन्त्र का निर्माण कर दिया जो करोड़ों वर्षों की उसकी अवस्था निर्माण करके वायुमण्डल में त्याग दिया गया। इस प्रकार यौगिकता और भौतिकता का दोनों का समन्वय करते हुए ऋषि–मुनियों ने ऐसा कहा है कि यन्त्र का निर्माण करना हमारे लिए कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु देखो,

आध्यात्मिकवाद, विनम्रता, मानवता समाज में आना बहुत अनिवार्य है। जैसा आज का हमारा जो विषय है, आज की हमारी जो धारा है वह क्या है कि हम यह विचारते रहें। ऐसा यन्त्र, ऐसा विज्ञान है। ऋषि–मुनियों की शालाओं में प्रायः रहता था। पांच वर्ष के बालक ''ध्रुव'' को देवर्षि नारद मुनि ने अपना लिया, परन्तु देखो, ध्रुव इनका विशाल मण्डल है। जिस मण्डल में सहस्त्रों सूर्य समाहित हो जाते हैं और बृहस्पति समाहित हो जाते हैं। **ऐसे मण्डल में जाने वाला जो यान है वह परमाणुवाद से ऋषि–मुनियों के निरीक्षण में बनाए जाते थे।** यानों का प्रायः अन्य लोकों में आवागमन रहता था। वह आवागमन प्रायः ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में चलता रहता था। तो मुनिवरो ! देखो, आज मैं अधिक विवेचना इस सम्बन्ध में प्रकट करना नहीं चाहता हूं।

भौतिक विज्ञान भी अनन्त है

विचार यह कि आज मानव को यह विचारना है कि यह जो वैदिक–साहित्य है, वैदिक जो विचारधारा है इस विचारधारा में वैदिक मन्त्राचार्यों में मुनिवरो! संसार की आभावाला विज्ञान रमण करता रहता है। परन्तु उसको विचारा जाए। विचारने से ही मानव को ज्ञान होता है। मानव संसार में टिप्पणियाँ करता रहता है। मुनिवरो! मैं भी जब अपने पूज्यपाद–गुरुदेव के चरणों में ओत–प्रोत होता था तो प्रत्येक विषय पर टिप्पणियां करता रहता था। टिप्पणियां करते हुए कोई काल तो ऐसा रहता था कि गुरुदेव भी शान्त हो जाते थे। तो वह जब शान्त हो जाते थे, अन्त में मौन होने पर मौन होना ही हमारे लिए भी आनिवार्य हो जाता था।

मानव तपस्या तथा योग से अन्य मानवों के तथा पशुओं तक के अन्तःकरण को भी प्रभावित कर सकता है

संसार में टिप्पणियों से काम नहीं चलेगा। ससार में अपने विचारों को सुदृढ़ बनाना, अपनी यौगिकता को प्राप्त करना। क्योंकि यौगिकता हमारे यहाँ ऋिषि–मुनियों के मस्तिष्कों में रहीं है। तपस्वी होते हैं परन्तु एक अन्तःकरण को जानना, एक दूसरो की आभा को जानना, मृगराज के अन्तःकरण को जानना यह ऐसा मुनिवरो! देखो योगियों के मस्तिष्कों में ही यह विद्या परिणित रहती है।

मन और प्राण दोनों की सहकारिता, एकाग्रता ध्यानावस्था है

आज जब हम धारणा, ध्यान और समाधि के विषय में जाते हैं कि धारणा क्या है? मुनिवरों! देखो, समाधिस्थ किसे कहा जाता है? तो यहाँ आचार्य कहते हैं कि मन और प्राण दोनों की सामूहिकता, सहकारिता का नाम ही संसार में ध्यानावस्था कहा जाता हैं। आज जब मन और प्राण दोनो को एकाग्र, दोनों की सहकारिता कराई जाती है उस समय मानव ध्यानावस्थित हो जाता है। क्योंकि संसार में ऋषि मुनियों ने कहा कि इस **मन से शक्तिशाली संसार में कोई वस्तु नहीं,** ऐसा ही महर्षि दधीचि ने और शाण्डिल्य जी ने भी कहा है। मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव भी प्रकट करते रहते थे।

प्राण मन से भी शक्तिशाली है। प्राण में मन का मिलान करने से धारणा होती है। धारणा से प्रकाश आता है। आत्मा के प्रकाश से समाधि लगती है।

संसार में यदि कोई शक्तिशाली मन से वस्तु है, तो वह प्राण कहलाया जाता है। तो इस प्राण में मन का मिलान कराने का नाम ही मुनिवरो! धारणा कहा जाता है। उसमें चित्रों का मन और प्राण की सहकारिता से प्रकाश आता रहता है। आत्मा का प्रकाश ज्यो–ज्यों आता रहता है त्यों–त्यों मानव समाधिस्थ होता रहता है। यह जो संसार है, जितना यह प्रपंच दृष्टिपात आता है, मान–अपमान वाला जो जगत् है इससे वह योगी उदासीन होता रहता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज प्रत्येक मानव को संसार में वह समय तो प्रायः मानव के द्वारा आता ही है कि ''ब्रह्म अपृही अस्ति सुप्रजः'' क्योंकि प्रत्येक मानव संसार में उदासीन होता रहता है। संसार में मन और प्राण का दोनों को सहकारिता में ही लाना है। क्योंकि मन और प्राण दोनों के विभाजित होते ही यह इस आत्मा के मण्डल के साथ में चित्त का निर्माण हो जाता है। क्योंकि संसार में प्रकृति का कोई सूक्ष्म तत्व है तो वह मन है। यह संसार मन और प्राण का ही विभाजनवाद दृष्टिपात आता है। बेटा, जब मैं यह दृष्टिपात करने लगता हूँ कि पृथ्वीमण्डल में हो, सूर्यमण्डल में हो, चन्द्रमण्डल में हो, जितना भी नाना प्रकार का खनिज और खाद्य है, जितना भी रसास्वादन है मन और प्राण के द्वारा ही इसका विभाजन होता रहता है। जहाँ प्राण से मन का विभाजन हुआ तो इस प्राण के विभाग होना प्रारम्भ हो जाता है। रसों का नाना रूपों में परिवर्तन होता रहता है। तो मुनिवरो! देखो, इन रूपों में हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम इस मन की धारा को प्राण से जब

सहकारिता कर देते हैं इससे मिलान कर देते हैं दोनों का मिलान हो करे अपना ध्यान समाधि में स्थित हो जाता है।

मन और प्राण की एकाग्रता होने पर चित्त भी समाहित हो जाता है

मेरे प्यारे ऋषिवर ! यह प्राण शरीरों में नाना रूपों में परणित होता हैं जैसे प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और ककृल, इन **दस रूपों में प्राण का विभाग** हमें दृष्टिपात आता है। जब मन और प्राण को हृदय में सहकारी कर देते हैं, तब चित्त को भी अपने में समाहित कर लेता हैं तब ब्रह्म और आत्मा दोनो में अन्तर्द्वन्द्व नहीं रह जाता। तब एक ऐसी विशालता आ जाती है उसमें एक ऐसी महत्ता आ जाती है उसी को परम प्रकाश और आनन्दमय कहा गया है। आज हमें उस आनन्द को प्रायः प्राप्त कर लेना चाहिए क्योंकि वही आनन्द समाधिस्थ अवस्था में होता है। जैसा मुनिवरों! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव भी कहा करते थे जितना भी यह जगत् है यह मानव के हृदय में समाहित हो जाता है। क्योंकि जितना संकल्पवाद है, जितना विभाजनवाद है, श्रद्धावाद है यह सर्वत्र मानव के हृदय से उत्पन्न होता रहता है और यह उस काल में होता है जब मन का इस प्राण से विच्छेद हो जाता है, यह दोनों दो रूपों में परिणित हो जाते हैं।

मन तथा प्राण के विभाजित होने पर सांसारिक पदार्थों का, पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धों का निर्णय हो पाता है

मुनिवरो ! देखो, यह नाना प्रकार से इस प्राण को विभाजित करने लगता है। प्राण का विभाजन करता हुआ यह संसार की जानकारी कराता रहता है। कुटुम्ब का निर्णय कराता रहता है। शिष्य और गुरुओं का निर्णय कराता रहता है। आचार्यों का भी निर्णय कराता है। वेदों को भी चार विभागों में परिणित कर देता है। क्योंकि प्रकाश को भी चार विभागों में परिणत करने वाला केवल मन ही कहलाया गया है। क्योंकि प्राण से इसका विच्छेद हो गया है और मुनविरो! देखो, धारणा नाम केवल उसी को कहा गया है। जब पुनः से संसार को एकत्रित करके और मन में इसका मिलान हो जाता है। क्योंकि मन इस प्रकृति का होने के नाते यह प्रकृति का जितना भी प्रपंच है, जितना भी जगत् है यह मन की रचना है। यह मन का ही एक सहकारी कृत्य कहलाया गया है। यह मन का ही नृत्य हो रहा है। वह जो मन का नृत्य है, मुनिवरो ! देखो, प्राण में पुनः से परिणित करना है। तो देखो, उस समय स्थित रहकर के, त्यों–त्यों प्राण की अवस्था परिणित होती रहती हैं मन और प्राण दोनों की अवस्था चित्त में चली जाती है। चित्त में जो प्रकृति की और मन की सीमा है, वह भी समाप्त हो जाती हैं उस समय उसी अवस्था को हमारे यहाँ मुक्त कहा जाता है। क्योंकि मन और प्राण दोनों का मिलान होने का नाम **मुक्ति** कहा गया है।

मन तथा प्राण के विभाजन का नाम चित्त है

इसे क्यों मुक्ति कहते है ? क्योंकि जिन तत्वों से चित्त बना है, मुनिवरो ! देखो, मन और प्राण के विभाजन होने का नाम ही चित्त कहलाया गया है। चित्त में संस्कार बनते हैं संस्कारों से यह संसार और जगत् बन जाता है और यह जो जगत बनता है! यह एक वृक्ष बन जाता है। इस वृक्ष के बन जाने के पश्चात् यह आत्मा और परमात्मा का जो विषय है, यह संसार इसमें जगत् आने से चित्त में सीमा आने से यह संसार एक भ्रान्तिमय दृष्टिपात आने लगता है। ब्रह्म से भी मानव का विच्छेद होने लगता है। कहीं–कहीं तो आत्मा की भी इस–ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार न करना भी उसके लिए अवाछनीय हो जाता है। ऐसे–ऐसे विचार मानव के प्रायः मस्तिष्क में आ जाते हैं।

मानव भ्रान्तिओं के कारण संसारिक भोगवाद को आनन्द मान लेता है

कहीं मुनिवरों ! देखो, इस भोगवाद को ही आनन्द स्वीकार कर लिया जाता है। कहीं माया और प्रपंच को ही यह स्वीकार कर लिया जाता है कि यही रहस्य है, यही हमारा जीवन है। परन्तु देखो, प्रायः वास्तव में ऐसा नहीं। प्रायः ऐसा यह जगत् में माना गया है। जगत् में आने का जो हमारा उद्देश्य है, वह उद्देश्य है, इस संसार में मन को एकाग्र करके प्राण मिलान करके धारणा, ध्यान, और समाधि में प्रविष्ट होना है। वह जो चित्त की सीमा है, उसे नष्ट करना है।

चित्त के अनेक रूप हैं

हमारे यहाँ चित्त भी कई प्रकार के माने हैं। एक **अन्तरिक्ष भी चित्त माना गया है। एक मानव के इस मन की क्षीण अवस्था का नाम भी चित्त कहलाया गया है।** कहीं–कहीं ऋषि–मुनियों ने ऐसा कहा है, मुझे एक समय बेटा ! देखो, महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज ने एक वाक्य प्रकट कराया था। महात्मा दधीचि ने और भी आदि त्रिऋषियों ने एक वाक्य कहा था कि संसार में यह जो द्यु है जिसे द्यु कहा जाता है इसमें अग्नि प्रविष्ट रहती है। आत्मा का जो घृत है, जब आत्मिक यज्ञ करते हैं तो वह घृत द्युमंडल से लिया जाता है। वह द्युमण्डल कौन–सा है। जहाँ मुनिवरों ! देखों, गो घृत रहता है ? **वह गौ क्या है?** गो नाम उस परम–विद्या का है, गौ नाम उस प्राण का है जिसको मन के द्वारा दुहा जाता है और उसमें से जो तरंगे उत्पन्न होती हैं उसका नाम घृत है और उन तरंगों, की जब हृदयरूपी देश में आहुति दी जाती है तो चित्त की जो नाना प्रकार की सीमा है जिस प्रकार यज्ञशाला में समिधा, समिधा रूप न रह करके अग्नि रूप बन जाता है, वह चित्त की सीमा न रह करके एक ब्रह्म ही ब्रह्म मानव को अपने में दृष्टिपात आने लगता है।

ब्रह्म प्रकाश ही प्रकाश है

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हमें इसके ऊपर अनुसन्धान करना हैं। क्योंकि अनुसन्धान करना क्या है ? वह प्रकाश ही प्रकाश है। संसार में अन्धकार नहीं रह पाता। संसार में और अन्धकार नहीं रह पाता। तो आत्मा परमात्मा की जो नाना प्रकार की जो सीमाएं हैं, नाना प्रकार का जो वाद है वह प्रायः मानव के मस्तिष्क से समाप्त हो जाता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! यह विवाद उसी काल तक रहता है जब तक चित्त की सीमा बनी हुई है। मन और प्राण दोनों की सहकारिता नहीं होती। जब दोनों की सहकारिता हो जाती है दोनों का मिलान करने के पश्चात् द्यु से घृत लिया जाता है और घृत की जब यज्ञशाला में वह जो चित्त रूपी यज्ञशाला है उसमें मुनिवरो देखो, यह जो नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ है इनकी समिधा बनाकर के जब ब्रह्म जो अग्नि है जब तक वह प्रदीप्त नहीं होती तो संसार में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ मानव को बनी ही रहती हैं। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे पूज्यवाद–गुरूदेव ने मुझे तो यही निर्णय कराया, यही प्रकट कराया। जब मैं अपना विचार देना प्रारम्भ करने लगता हूं तो वह जो ब्रह्म है वह एक प्रकार से प्रकाश दृष्टिपात आता है, अन्धकार नहीं रह पाता। परन्तु देखो, मन और प्राण दोनों का विभाजन न हो पाए। यदि दोनों का विभाजन हो गया तो दोनों में विवाद हो गया तो यह संसार बनेगा, प्रपंच बनेगा।

मन–प्राण की सहकारिता होने पर आत्मा को परमात्मा का दर्शन

मन और प्राण दोनों का मिलान करोगे तो संसार में उदासीन हो जाओगे और धारणा, ध्यान, समाधि में प्रविष्ट हो जाओगे। परन्तु देखो, वहां का वातावरण, वहां की प्रतिभा एक मानवीयता में परिणित होनी चाहिए। जैसा मुझे पूर्वकाल में भी प्रायः ऐसा अनुभव होता रहा है। क्योंकि संसार में आत्मा और परमात्मा का अनुपम अनिर्वचनीय जो विषय है आत्मा परमात्मा का जो अन्तिम विषय कहा जाता है वह अनिर्वचनीय इसलिए है क्योंकि प्राण और मन दोनों की सहकारिता, दोनों का मिलान जब कर देते हैं तब आत्मा परमात्मा का विषय अनिर्वचनीय हो जाता है। क्योंकि आत्मा प्रकाश को प्राप्त हो जाती है। **एक चित्त जब तक रहता है यह आत्मा रूप बना रहता है** उसकी भिन्नता में ही यह संसार दृष्टिपात आता है। परन्तु यहां याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भी, आचार्य दधीचि ने भी, सोमकेतु ने भी और भी नाना आचार्यों ने बेटा ऐसा ही वर्णन किया है।

चित्त की समाप्ति पर वास्तविक शान्ति

जैसा महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने जो वायु मुनि महाराज के ३५वॉं वें प्रपौत्र थे, उन्होंने रावणकेतु को एक विचार प्रकट किया जब कि रावण को आत्म शान्ति न हो पाई थी। तब कुक्कुट मुनि महाराज ने कहा कि आत्मा में तुम शान्ति को लाना चाहते हो। पर आत्मिक शान्ति उस काल में नहीं रह पाती जब दोनों (मऩप्राण) का विभाजन हो जाता है। उन दोनों वस्तुओं को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। वह अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा, व्रतों के द्वारा हो पाता है। बेटा! ऐसा हमारे यहां प्रायः माना है।

आसन–प्राणायाम के द्वारा, मन–प्राण के मिलान के द्वारा ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व होती है

मुझे एक वाक्य स्मरण आया। मैंने अपने पूज्यपाद–गुरूदेव से एक वाक् कहा। भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूं कि संसार में योगी कैसे दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेता है ? क्योंकि संसार में योगी की आत्मा योगी की जो

प्रवृत्ति है वह सुर्यमण्डल के गर्भ को जान लेती है, ध्रुव के गर्भ को जान लेती है, पृथ्वी के गर्भ को जान लेती है और भी नाना प्रकार के लोकलोकान्तरों के गर्भों को जानने लगती है। उस समय बेटा मेरे पूज्यपाद—गुरूदेव ने मुझे प्रत्यक्ष रूप में प्रकट कराते हुए कहा कि ''ब्रह्म रूपम् ब्रह्म लोकः अस्थम् ब्रह्म कामाप्रवे अस्ति सुप्रजः'' मेरे प्यारे ऋषिवर ! मेरे पूज्यपाद—गुरुदेव ने ऐसा वर्णन कराया। उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, ऐसा दृष्टिपात आता है वत्स ! कि जब योगीजन यौगिक क्षेत्र में प्रवेश होते हैं, ब्रह्म लोकों में जब प्रविष्ट होने लगते हैं तो आत्मा एक प्रबल शक्ति वाला हो जाता है। तो उस समय जब हम यह दृष्टिपात करते हैं कि हमारे ब्रह्मचर्य की गति कैसे ऊर्ध्व बनती है अपने आसन के द्वारा, प्रणायाम के द्वारा, मन और प्राण के दोनों के मिलान के द्वारा ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व बन जाती है।

ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति होने पर, मन प्राण के मेल होने पर ब्रह्म में मानव की गति निर्बाध हो जाती है

तो ऐसा हमारे यहाँ वैदिक—साहित्य में भी आया है। वह जो ''प्रायः भूः सन्ब्रह्म आस्वाति लोकः'' ऐसा आया है परन्तु देखो, इसका अभिप्राय यह है कि हम जब ब्रह्मचर्य की गति को उर्ध्व बनाते हैं तो ब्रह्मरन्ध्र में प्राण ले जाते हैं। तो ब्रह्मरन्ध्र की एक मनोहर अबाध गतियो से परिणित होता रहता है तो उसमें एक महत्ता जो कि ऐसे प्रकट होने लगती हैं जैसे एक महत्ता में थोड़ा अलग हो एक मानवीय जाति में एक समूह उत्पन्न होता रहता है। तो ऐसा मुझे प्रकट कराया कि ब्रह्मचर्य की गति नाड़ियों के द्वारा ऊर्ध्व बन जाती है और ब्रह्मरन्ध्र से उसका प्रायः सम्बन्ध होता है। ब्रह्मरन्ध्र से सम्बन्ध होता हुआ मुनिवरो ! ब्रह्मरन्ध्र के निचले भाग में जैसे पीपल का पत्र होता है उसका अर्द्ध भाग होता है। ऐसा एक स्थूल होता है उसमें ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व बन करके उसमें तीन प्रकार की नाड़ियां होती हैं। उन नाड़ियों में एक 'सुकेता' नाम की नाड़ी है, एक सोमभुक् नाम की नाड़ी है, एक श्वेतकेतु नाम की नाड़ी है जिनका प्रायः इडा—पिंगला से सम्बन्ध रहता है। वह जो नाड़ी है उन नाड़ियों में से 72—72 धाराओं का जन्म होता रहता है और वह जो जन्म है उसकी गति में एक ऐसा प्रवाह उत्पन्न होता है कि वह जब समाधिस्थ होता है, मन और प्राण की एकता, सहकारिता में जब वह जगत् लाया जाता है, तो मुनिवरो! उसमें एक महत्ता का प्रायः जन्म हो जाता है और योगी प्राण और मन को एकाग्र, ब्रह्मचर्य की जो ऊर्ध्व गति है, ब्रह्म में चरने वाली जो एक मनोहर अबाध गति मानी जाती है।

ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति होने पर, ब्रह्मचर्य की अबाध गति होने पर ब्रह्मचर्य की गति विशेष प्रबल हो जाती है

परन्तु उसमें एक महत्ता का प्रायः जन्म ब्रह्म व्यापः में हो जाता है तो प्रायः ऐसा माना गया है कि ब्रह्म की जो अबाध गति है वह ऐसी एक प्रतिभा में परिणत होने लगती है। एक महत्ता का प्रायः संसार में जन्म होने लगता है। तो मुझे ऐसा दृष्टिपात होता रहा है कि संसार में जब मेरे पूज्यपाद—गुरुदेव ने यह वाक्य प्रकट कराया और ऐसा कहा है कि ब्रह्मचर्य की अबाध गति विशेष और प्रबल हो जाती है। एक—एक नाड़ी से सहस्रों—सहस्रों धाराओं का प्रायः जन्म हो जाता है। इन्हीं धाराओं के साथ में आभाएं तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। मानव के चित्त से इन आभाओं का सम्बन्ध होता है और वह जो चित्त से सम्बन्ध है वह जो नाना प्रकार के लोक—लोकान्तर है इनकी आभाएं, इनकी तरंगें चित्त से इनका सम्बन्ध होते हुए मुनिवरों ! चित्त के देश में जब मानव की श्रुति विशेषकर हो जाती है तो वह योगी इस बह्माण्ड का प्रायः दिग्दर्शन कर लेता है। ऐसा हमारे यहां आचार्यों के सम्बन्ध में आता रहता है। जैसा मुझे मेरे पूज्यपाद—गुरुदेव ने प्रकट कराया।

मन—प्राण के विभाजन होने तक ही ये सारे वाद—विवाद हैं

आचार्यों ने कुछ ऐसा कहा है कि मानव को अपनी प्रवृत्ति को ब्रह्म में विचरण करा देना चाहिए। रहा यह वाक्य आज हम अपने हृदय देश में इस संसार को दृष्टिपात कराना चाहते हैं। मुनिवरो ! देखो, वह नाना रूपों में अनिवर्चनीय जो विषय है जिसको हम एक चित्त के देश में परिणित कराते रहते हैं। आज मैं अधिक विवेचना प्रकट इस सम्बन्ध में नहीं करूंगा। परन्तु विचार केवल यह है कि आज का हमारा यह वाक्य है कि हम परमपिता—परमात्मा की, आत्मा की इस विशेष विवेचना में जाना चाहते हैं जहाँ मुनिवरों ! नाना प्रकार के मानव के जीवन में, हमारे जीवन में भी और नाना ऋषियों के जीवनों में विवाद प्रायः चले आते हैं। यह विवाद केवल जभी तक रहता है जैसा मैने अभी—अभी कहा जब तक मन और प्राण का विभाजनवाद रहता है मानव के मष्तिष्क में। क्योंकि इन दोनों की सहकारिता हो जाती है, वही एक मन की आभा परिणित होती रहती है।

चित्त की विशेष अवस्था को जानने का प्रयास करें

मेरे प्यारे ऋषिवर। आज हम उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा का गुण–गान गाते हुए उस अपने हृदय को ऊंचा बनाते हुए इस संसार–सागर से हम पार होते चले जायें। जिससे मानवीय जीवन एक महत्ता में परिणित होता रहता है। आज मैं क्या वाक्य प्रकट कराने चला गया । मैं वास्तव में इस विषय को इस प्रकार लेना नहीं चाहता था। विचार देने का अभिप्राय केवल क्या ''यम ब्रह्मः यम लोकः, यम रुद्रः, यम गातः, यम धेनुः, यम भाविप्रता प्रवि अस्ति सुप्रजः।'' मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है। हम अपने चित्त की विशेष अवस्था को जानने का प्रयास करें। क्योंकि वह जो चित्त देश है चित्त जो भ्रमी, आज हम उस सीमा को नष्ट करने का प्रयास करें। जिससे हमें प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिपात आता रहे। दृष्टिपात क्या क्योंकि स्वयं हम प्रकाशमय बन जाते हैं। **प्रकाशमय बनने का अभिप्राय यह है कि हमारे द्वारा अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता।** तो इसीलिए बेटा उस अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त कर देना चाहिए और वह जो अन्तर्द्वन्द्व है वह मानव के द्वारा नहीं आना चाहिए।

आत्मा–परमात्मा की एकता वाणी का विषय नहीं है

तो वह जो एक मानवीय धारा है उसको हमें विचारना है। उसी धारणा में हमें जाना है उसी की एकता को हमें लाने का प्रयास करना है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! जहाँ तक यह है कि हम आत्मा और ब्रह्म दोनों को एकता में लाना चाहते हैं। तो वह जो एकता का विषय है वह वाणी का विषय नहीं परन्तु देखो, वह जो चित्त को भी नाना प्रकार की आभाओं में परिणित करते रहते हैं। क्योंकि चित्त भी हमारे यहाँ नाना रूपों में परिणित होता रहता है। एक साधारणता में, विशेषता में और यौगिकता में रमण करता रहता है। इसी प्रकार जहाँ आत्मा परमात्मा का विषय है क्योंकि जहाँ केवल प्रकाश ही प्रकाश रहता है वहाँ द्वितीय भाव का जन्म होता ही नहीं। द्वितीय भाव का जन्म उस काल में होता है जब नाना प्रकृति के आवेशों में हम ब्रह्म को जागरूक करना चाहते हैं। तो मुनिवरो देखो ! भौतिकवाद में अथवा नाना प्रकार के यन्त्रवाद में ब्रह्म के वाद में हम चन्द्रयानों में उस प्रभु को दृष्टिपात करना चाहते हैं। वह उसी आभा को प्रायः दृष्टिपात होती है। परन्तु यदि हम यह स्वीकार करने लगें कि यहाँ से हमें ''ब्रह्म अभ्रवे अकृतम्'' प्राप्त हो जाए तो यह मानवीयता के लिए एक सुन्दर नहीं कहा गया है। मुझे तो बेटा! ऐसा प्रायः अनुभव हो रहा है।

आत्मा, परमात्मा तथा मोक्ष विषय का सूक्ष्म विचार श्रेष्ठ योगियों के समाज में ही होना चाहिए

मुझे तो मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ने यह प्रकट कराया कि ''संसार में तुम यही मत जानो कि ब्रह्म अथवा आत्मा यह द्वितीय भाव में परिणित करना है। अपने जीवन में एक महान् और ऊँची से ऊँची उड़ान उड़ते चले आओ।'' मुनिवरो ! देखो, यह जो नाना प्रकार की आभा है यह स्वतः ही समाप्त होती रहती है। यह रहती ही नहीं। रहा यह कि संसार में हमें समाज के लिए यह उच्चारण करना बहुत ही अनिवार्य है कि हम इसका निर्णय करें। क्योंकि साधारण योगियों के विषय में तो ठीक है जहाँ यौगिक समाज विराजमान होता है। जैसा मुनिवरो देखो, जमदग्नि इत्यादि ऋषि–मुनियों के स्थानों में पिप्पलाद इत्यादि मुनियों का तपस्वियों का आवागमन होता रहता था वहाँ मुक्ति का विषय, आत्मा परमात्मा का विषय ऐसा एक विश्लेषण किया जाए तो यथार्थ है।

अनाधिकारी को अधिकार देने से भ्रान्तियों का, भ्रान्तियों से रूढ़िवाद का जन्म होता है

परन्तु जहाँ देखो समाज में नाना भोग विलासों में परिणित रहता रहे वहाँ ब्रह्म–आत्मा की एकता का उच्चारण करना क्या यथार्थ हो सकता है? मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव यह कहा करते थे कि संसार में अधिकारी को जब अधिकार दिया जाता है तो उसमें समाज ऊँचा बनता है। जब अनाधिकारी को वस्तु प्रदान की जाती है तो उससे समाज में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो करके रूढ़िवाद बन जाता है। तो बेटा ! मैं तुम्हारे इस विचार में कोई ऐसा विचार देना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मेरा तो सदैव यह सिद्धान्त रहा है, विचार रहा है। परन्तु जहाँ आत्मा और परमात्मा की एकता का विचार इसको तो हम प्रायः स्वीकार करते ही चले आए हैं। इसमें कोई द्वितीय भाव हमारे नहीं रहते। परन्तु इसका सुन्दर स्पष्टीकरण करना आवश्यक है क्योंकि इससे केवल रूढ़िवाद बना रहता है और रूढ़िवाद भ्रान्ति का कारण बन करके वह राष्ट्र और समाज के लिए हानिकारक बन जाता है।

मानव के लिए त्रैतवाद स्वाभाविक है

हम बेटा ! जब पूज्य–गुरुदेव के आसन पर जाते और भी ऋषि–मुनियों का समाज एकत्रित होता, जैसे जमदग्नि, पिप्पलाद, वृहणकेतु, सोमकेतु, पातली जी स्वामी इत्यादि ऋषि–मुनियों का समाज एकत्रित होता गौतम इत्यादियों का तो उसमें प्रायः यह विचार चलना बहुत ही स्वाभाविक है। क्योंकि वे तो अपना–अपना अनुभव आत्मा का जो चित्रण है, आत्मा का जो अनुभव है उसमें विचार देना यह बहुत ही सुन्दर है, बहुत ही उत्तम है। क्योंकि वह वायुमण्डल में क्या उन अनुभवी पुरुषों का जो अनुभव है उसमें जो अधूरापन हो उसका निर्णय हो जाए। निर्णय हो जाने के पश्चात् ज्ञान और विज्ञान की धाराएं प्रारम्भ होती रहें, आत्मा की धारा का जन्म होता रहे। परन्तु आत्मा को निरवयव स्वीकार करना तो ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में प्रायः रहता रहा है। इसके रहते हुए भी द्वितीय भाव त्रैतवाद मानव के मस्तिष्कों में प्रायः साधारण समाज के लिए उत्पन्न होता रहा है। जिससे मानव में द्वितीय भाव का उत्पन्न होना एक स्वाभाविक कहलाया गया है।

अधिकारी और अनाधिकारी का विचार न रखने से व्यक्ति का महत्त्व समाप्त हो जाता है

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मेरा इस सम्बन्ध में अपना विचार केवल यह है कि हम भी इसी विचार को सदैव स्वीकार करते रहे हैं। पूज्यपाद–गुरुदेव ने भी अन्तिम यह अपना विचार दिया। परन्तु इसी के साथ–साथ उसका अनुभव किया गया। अनुभव करने के पश्चात् जब यह निश्चय हो गया कि वास्तव में ऐसा ही स्वीकार करते रहना मानव के लिए स्वाभाविक है। परन्तु देखो बाह्य समाज, राष्ट्रीय समाज में इसको सुन्दर नहीं माना गया, क्योंकि अधिकार और अनाधिकार को जो महापुरुष स्वीकार नहीं करता उसकी कोई महत्ता इस संसार में नहीं रहती। क्योंकि उसकी उड़ान इतनी ऊर्ध्व नहीं है। संसार में उड़ान ऊर्ध्व होनी चाहिए और उड़ान को वही जान सकता है जो सूर्यमण्डल से ले करके क्या बृहस्पति, क्या गन्धर्व–लोकों से ले करके पृथ्वीमण्डल तक के प्राणियों की वार्ता को जानता है, इनके अधिकार को जानना है। वह प्राणी इस संसार में ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता रहता है, मेरे प्यारे ऋषिवर ! मुझे पुरातन का वाक्य स्मरण आता रहता है क्योंकि संसार में आचार्यजनों का यह सिध्दान्त रहा है।

शब्द का तप मानव को महत्ता प्रदान करता है

मुझे बेटा ! वह त्रैता इससे ऊर्ध्वगति का काल भी स्मरण आता रहा है। साहित्यों में वह अंकित है। वे अधिकार और अनाधिकार को विचारकर उसको मुखारबिन्द से कोई शब्द प्रदान करते थे। शब्द प्रदान करने का अभिप्राय यह होता था क्या वह शब्द विद्युत् का कार्य करता रहता था और विद्युत् का कार्य करते हुए जहाँ अन्तःकरण को छूता था वहीं पवित्र बनता चला जाता था। क्योंकि शब्द की जो गति है, शब्द का जो तप है वह संसार में एक महान् तप कहा जाता है। उसकी जो महत्ता है वह मानव के प्रायः मस्तिष्कों में प्राप्त होती रहती है। ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में वह विषय एक ऐसे स्थल को प्राप्त होता रहता है जिसकी आभा को जानने के पश्चात् मानव का जीवन महत्ता में परिणित होता रहता है।

परमात्मा की आभा को जीवन में उतारने से विचारों में उज्जवलता और जाग्रति आती है

मुनिवरो ! मैं आज कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार देना हमारा यह है कि हम उस परमपिता–परमात्मा की आभा को इन रूपों में परिणित करना चाहते हैं जिसके परिणित करने से संसार में मानव के विचारों में एक महत्ता की उज्ज्वला उत्पन्न होती रहे, महत्ता जागरूक होती रहे। तरंगों में क्या, वायुमण्डल में क्या, मानव के अन्तःकरण में क्या, सर्वत्र एक महान् तरंगों को जन्म देना है और उन तरंगों को जन्म देना ही वायुमण्डल को पवित्र बनाना है। संसार को ऊर्ध्व बनाना है। यह बेटा ! मैं अपना विचार प्रायः प्रकट करता रहता हूँ। आचार्यों ने भी ऐसा ही कहा है।

ब्रह्म का देश

परन्तु देखो कोई हमारा एक पथ ऐसा नहीं है जो पथ महापुरुषों से भिन्न हो। क्योंकि अन्त में महापुरुष आत्मा की जहाँ सहकारिता बनाते हैं आत्मा को जिस देश में स्थित कर देते हैं वह ब्रह्म का देश है और मुनिवरो ! वह जो ब्रह्म का देश है वहाँ जाने के पश्चात् त्रैतवाद का जन्म नहीं होता। परन्तु देखो, वहाँ एक देश है, प्रकाश है उस प्रकाश ही प्रकाश में मानव की आभा रमण करती रहती है। वही आभायित होता रहता है। वही संसार में आभायित हो रहा है। वहाँ मैं का जन्म भी नहीं होता। वहाँ केवल सर्वव्यापकता का जन्म होता रहता

है। इसीलिए मेरे प्यारे ऋषिवर आज यह विचार हमारे मस्तिष्कों में और ऋषि–मुनियों में जन्म–जन्मान्तरों से क्या यह तो ऋषि–मुनियों का जन्म सिद्ध अधिकार रहा है। इसको हमें प्रायः लाना चाहिए जगत में। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! यदि समाज में अधिकारी और अनाधिकारी का ध्यान न रखकर ऐसी वार्ता की जाती है तो वहाँ नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बनती हैं, भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

तपस्या से रहित भोग विलासी मानव इस विद्या का अधिकारी नहीं है

जब तप नहीं होता और वह तप की विवेचना को प्रकट कराते हैं उनको लाना चाहते हैं तो हृदय में वह वार्ता स्थान ग्रहण कर नहीं पाती। क्योंकि मल, विक्षेप, आवरण इतने विशेष बन जाते हैं नाना प्रकार के भोग–विलासों के द्वारा कि योगिता के वाक्य जब ग्रहण कर नहीं पाते तो उसमें एक रूढ़ि बन जाती है और वह रूढ़ि बन करके समाज मे रूढ़ि विनाशकारक होती है। इसीलिए अधिकारी अनाधिकारी के लिए ऋषि मुनियों ने विशेषकर बल दिया है और यह आज ही नहीं परम्परागतों से चला आया है।

अनाधिकारी को शिक्षा देने ज्ञान–विज्ञान समाप्त हो जाता है

देखो यहाँ राष्ट्र के राष्ट्रों को पंगों के आवृतों से (प्रगति से) दूर कर दिया है। महाभारत के काल में महाराजा परशुराम (जो भीष्म पितामह के गुरु थे) ने जब ब्रह्मचारी को धनुर्विद्या को प्रदान करना था तब उनके शिष्य भीष्म ने यह कहा कि तुम इनको धनुर्विद्या दो। तो उन्होंने कहा इनमें से केवल 8 ही ब्रह्मचारी ऐसे हैं जो विद्या के अधिकारी हैं मैं इनको विद्या प्रदान कर सकता हूँ। उन्होंने कहा प्रभु ! मेरे लिए सर्व राज कुमार एक ही तुल्य हैं। उन्होंने कहा तो मैं इनको शिक्षा प्रदान नहीं करूंगा। तो मुनिवरो ! देखो, उन्होंने कहा यह जो राष्ट्र है, हस्तिनापुर का इसको अपना लीजिए। उन्होंने कहा यह राष्ट्र भी मुझे नहीं चाहिए। क्योंकि राष्ट्र को मैं उसी काल में अपना सकता हूँ जब मैं ब्रह्मचारियों को सुयोग्य बना दूँ। अब ब्रह्मचर्य का अधिकार इनको है नहीं। इनको शिक्षा देने से केवल मेरी अकीर्ति होनी है। मेरी जो महत्ता है उसे समाप्त करना है। उसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि द्रोण ने वह शिक्षा द्वेष के कारण दी। उसका भयंकर परिणाम यह कि ज्ञान और विज्ञान द्वापर के काल में समाप्त हो गया।

महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ने अनाधिकरी रावण का राज्यभिषेक नहीं किया था

जिस समय राजा रावण का राज्याभिषेक होने जा रहा था उस समय उनके बाबा पुलस्त्य जी ने महर्षि कुक्कुट जी से कहा कि इनका राज्याभिषेक करो। उन्होंने कहा कि मैं इनका राज्यभिषेक नहीं करूँगा। क्यों नहीं करोगे ? इसलिए नहीं करूँगा कि इसको राष्ट्र का अधिकार ही नहीं देना चाहिए। क्योंकि मस्तिष्क का अध्ययन करना योगी के लिए बहुत अनिवार्य है! जो मस्तिष्क का अध्ययन नहीं कर सकता शिष्य का, उसको संसार में शिष्य बनाने का अधिकर नहीं हो सकता। यह प्रायः हमारे यहाँ है। क्योंकि आयुर्वेदाचार्यों ने कहा कि आयुर्वेद से मस्तिष्क की जानकारी होती है और मस्तिष्क जिस रूचि का होता है उसके अनुसार तब शिष्य बनाया जाता है तो गुरु का नाम ऊँचा होता है। परन्तु जब उसके अनुसार नहीं बनाया जाता तो गुरु का जो तपा हुआ तप है, वह भी अतप में परिणित हो जाता है। क्योंकि प्रायः शिष्य ऊँचा न होने के कारण संसार में अपकीर्ति होती रहती है। उससे रूढ़ियाँ बना करती हैं। शिष्य स्वयं रूढ़िवादी बना देते हैं। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! विचार क्या कि उस समय जब पुलस्त्य जी ने ऐसा कहा तो महात्मा कुक्कुट जी ने कहा मैं इसको अधिकार नहीं दूँगा राष्ट्र का। उस समय जब यह वाक्य आया तो पुलस्त्य ऋषि महाराज को तो इसको बनाना था। क्योंकि रावण ने कुबेर से लंका को विजय किया था। उस समय ऐसा कहा जाता है उन्होंने महात्मा भुंजु मुनि महाराज से उनका राज्याभिषेक कराया। राज्यभिषेक किया गया तो देखो, क्या हुआ ? राजा रावण के राष्ट्र में चरित्र न रहने के कारण राम जैसे महापुरुषों ने अचरित्र को लेकर के लंका को समाप्त कर दिया। परिणाम क्या इसी प्रकार मुनिवरो ! देखो, गुरु शिष्यों में आध्यात्मिकवाद में होता रहता है। और विचार यह कि संसार में अधिकार अनाधिकार को विचारना चाहिए जो नहीं विचारेगा वह संसार में अपनी मानवता में अधूरेपन में परिणित हो जाता है।

शृंगी ऋषि महाराज को उनके पूज्यपाद–गुरुदेव ने जीवन को ब्रह्मचर्य में परणित करके, ब्रह्मचर्य को ऊर्ध्व बनाकर सत्रह वर्ष पश्चात् दीक्षा दी थी

जब मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ने हमें दीक्षा दी तो मुनिवरो ! देखो लगभग बारह वर्ष तक औषध्यिों का पान कराया। औषध्यिों को बारह वर्ष तक पान करा करके लगभग चार–चार पाँच–पाँच वर्ष तक उन्होंने पुष्प और पत्तों

को पान करा करके ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति और वृत्ति को और जीवन को ब्रह्मचर्य में परिणित करके उसके पश्चात् दीक्षा दी। बेटा ! तो मुझे वह समय भलीभाँति स्मरण आता रहता है समाज कैसे ऊँचा बनता है, ऋषिवाद कैसे ऊँचा बनता है , ऋषिवर ! उस काल में ऊँचा बनता है जब अधिकारी और अनाधिकारी को विचारा जाता है।

महाराजा अश्वपति ने, महाराजा प्रजापति ने महाराज इन्द्र को कठोर–क्रियात्मक–तपस्यामय जीवन बनाने के पश्चात् ही दीक्षा दी थी

मुनिवरो ! देखो, जब नाना प्रकार की परमात्मा की पुनीत विद्या में हम परिणित होते हैं जो वैदिक विद्या है अपनी आत्मा में भासने वाली जो पवित्र विद्या है उसका अध्ययन करते हुए हम इस समाज को, पुनः से ऊर्ध्व बनाने के लिए हमें तप की आवश्यकता है। हमें प्रतीत है कि जब महाराज इन्द्र जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विराजमान हुए प्रजापति के यहाँ विराजमान हो गए वे प्रश्न करते रहे, उसका उत्तर 'क्रियात्मक तप करो, तप करते रहो, के रूप में देते रहे। परिणाम यह है कि तपस्या करने के पश्चात् इन्द्र को दीक्षा प्रदान करने का परिणाम यह हुआ कि इन्द्र परम्परा और देवताओं की परम्परा देवत्व में परिणित होती रही। इन्द्र एक उपाधि थी। वशिष्ठ एक उपाधि थी। मुनिवरो ! देखो, हमारे यहाँ वशिष्ठ मुनि की उपाधि वाले को ब्रह्मवाद का उपदेश दिया जाता था।

महात्मा महर्षि वशिष्ठ पुत्र, पत्नी तथा आश्रम के नष्ट होने पर भी विचलित नहीं हुए

एक समय महर्षि सोमकेतु के यहाँ एक समाज एकत्रित हुआ उसमें महर्षि दधीचि, श्वेतकेतु आदि ऋषिवर विराजमान थे। स्वांगकेतु मुनि महाराज को वशिष्ठ बनाना था। उन्हें ब्रह्म का अधिकार देना था। **"ब्रह्मव्यापक प्रवे अस्ति"** क्योंकि ब्रह्मवादी जिसको यह उच्चारण करें उसको सब ऋषियों का अधिकार प्राप्त होगा। क्योंकि वह इतने दृढ़ और इतने साहसी रहते थे कि पुत्र समाप्त हो जाए, पत्नी समाप्त हो जाए, आश्रम नष्ट हो जाए परन्तु वह अपनी सत्ता से नष्ट नहीं होते थे। उनका अन्तःकरण विनाश को प्राप्त नहीं होता था। इसलिए ऐसे महात्मा ऋषि को ब्रह्म का उपदेश देने का अधिकार प्राप्त होता था। ऐसे ऋषियों को तपा हुआ विचार सबके लिए कल्याणकारी होता था।

नाना प्रकार में तर्क–वितर्क एवं शंकाएँ जिज्ञासुओं को सांसारिक तथा प्रकृति पदार्थों में करनी चाहिए

मैंने अधिकार अनाधिकार के ऊपर विशेष चर्चाएँ प्रकट की। जहाँ आत्मा–परमात्मा का एक सम्बन्ध है वहाँ आत्मा–परमात्मा में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द हमारे मस्तिष्कों में नहीं है। हमारे मस्तिष्कों में शंका नहीं है क्योंकि शंका उत्पन्न करना केवल एक आकृतियों जिज्ञासुओं को प्राकृतिक पदार्थों में माना जाता है, भूगर्भों में माना जाता है, चन्द्रगर्भों में माना जाता है, तरंगों में माना जाता है। नाना प्रकार के तर्क मानव को करने ही चाहिएँ।

परमात्मा के प्रकाश को नेत्र नहीं देख सकते वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती इसलिए वह अनिर्वचनीय है

परमात्मा का विषय उस प्रकाश में मुनिवरों ! अनिर्वचनीय है। वह ऐसा प्रकाश है जो नेत्रों से दृष्टिपात नहीं किया जाता, वाणी से उस प्रकाश का वर्णन नहीं किया जाता। इसलिए उसको अनिर्वचनीय हमारे आचार्य ऋषियों ने वर्णन किया है। आज का यह वाक् समाप्त। जहाँ परमपिता परमात्मा को हमारे यहाँ एकता में परणित करते हैं वहाँ ऋषियों के मस्तिष्कों में द्वितीय भाव नहीं रहते। वहाँ केवल एक चेतना के आधार पर ही क्योंकि प्रकृतिवाद को भी भिन्न रूपों में आचार्यों ने परणित कर दिया है। इसमें कोई द्वितीय भाव नहीं। परन्तु जहाँ देखो अधिकार अनाधिकार के ऊपर विचार देना है उसके ऊपर मानव को बहुत ऊर्ध्वगति को प्राप्त होना है।

यह है मुनिवरों ! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं बेटा शेष चर्चाएं किसी काल में प्रकट करूँगा। वेद का पठन–पाठन आता रहेगा विषय प्रारम्भ होता रहेगा, ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि जब परमात्मा अनन्त है, उसकी आभा है तो उसका जो ज्ञान है वह भी अनन्त माना गया है। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट की जायेंगी। आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा। पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः। **दिनांक : १३–अप्रैल–१९९२ स्थान : योग निकेतन, ऋषिकेश।**

४. आत्मवत् १७ दिसम्बर, १९६९

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां नित्यप्रति उस मनोहर वेद पद्धति का वर्णन होता रहता है जिस पद्धति का किसी भी काल में Âास नहीं होता। उसमें सदैव उज्ज्वलता रहती है और नवीनवाद रहता है। जिस भी स्थान में उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा पर दृष्टिपात हमारा होगा, उसी काल में वह नीवनता में परणित होगा। नवीनवाद उसमें सदैव रहता है। क्योंकि वह पद्धति महान् होती है जिस पद्धति में वृद्धपन नहीं होता। क्योंकि वृद्धपन प्रायः उन पद्धतियों में होता है जो मानवकृत होती हैं। परन्तु जो ईश्वरीय कृत होती हैं, मुनिवरो! देखो, उसका किसी भी काल में Âास नहीं होता। वह विनाश को प्राप्त नहीं होती। क्योंकि उसकी धारा एक महत्ता में सदैव परणित रहती है। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं वेदमन्त्रों के सम्बन्ध में अथवा पद्धतियों के सम्बन्ध में विचार–विनिमय करने के लिए नहीं आया हूं। आज का हमारा जो वेदमन्त्र है, वेदों की जो परम्परा है अथवा उसकी जो विचित्र धारा है उन सभी पर विचार–विनिमय करना हमारा कर्त्तव्य कहलाया गया है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! हम यह विचार–विनिमय करते हैं कि वह परमपिता–परमात्मा, ज्ञान और विज्ञान से सुगठित है, जिसकी ज्ञान और विज्ञानमयी, पवित्रमयी, आनन्दमयी एक महान् प्रतिभा संसार में बेटा! ओत–प्रोत हो रही है।

परमपिता परमात्मा के नाना पर्यायवाची शब्द हैं

आज हमें उस परमपिता–परमात्मा की महिमा को सदैव जानने का प्रयास करना चाहिए जो महिमावादी है, जो विभु है, मानो वह संसार में रमण कर रहा है, 'रमणभ्रवे कृतानम्' मुनिवरो! जैसे हमारे यहां 'राम' शब्द की प्रतिभा आती है, हमारे यहां राम को भगवान् कहा जाता है। क्यों कहा जाता है? क्योंकि परमपिता–परमात्मा के नाना पर्यायवाची शब्द प्रायः रहते हैं। क्योंकि रमण करने वाले को रमेति शब्दों से उच्चारण किया जाता है। जो प्रकृति के कण–कण में रमण कर रहा है, प्रकृति के अणु–अणु में जिसकी प्रतिभा है। वही तो हमारे यहां चेतनावान् कहलाया गया है। जिसके ऊपर हमारा विचार–विनिमय चल रहा था। कहीं परमात्मा को विष्णु के रूपों से वर्णन किया गया है। कहीं उसको इन्द्र के रूपों में कहीं–कहीं तो उसको प्रजापति भी कहा है। उसके नाना स्वरूप जब हमारे समीप आते हैं। तो हमारा हृदय तो गद्गद् होने लगता है। हम यह कहा करते हैं, हे परमात्मा! तू कितना उज्ज्वल है। वास्तव में आज हम सब आपकी करूणामयी दृष्टि चाहते हैं। आनन्दमयी दृष्टि चाहते हैं। क्योंकि आपकी करूणा और आनन्द हमारे समीप होगा, तो प्रभु! हम संसार–सागर से पार हो सकेंगे। यदि आपकी करूणा हमारे ऊपर नहीं रहेगी तो नाना प्रकार के रूढ़िवाद में संलग्न होकर के प्रभु! हम अपने जीवन को नष्ट–भ्रष्ट कर सकते हैं। आज प्रायः मानव यह चाहता रहता है कि योगी बनूं, प्रायः मानव की इच्छा रहती है कि मैं आत्मवेत्ता बनूं, मैं आत्मा को जानना चाहता हूं। आत्मा को जानने की उसमें जिज्ञासा रहती है।

विनीत, उदार मानव, मान–अपमान को त्याग कर ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है

इस संसार में जितने भी नाना प्रकार के **हृदय को कष्ट देने वाले जो कर्म होते हैं वह मानव की मानवता को नष्ट करने वाले होते हैं। उनसे आत्मा का ह्रास होता रहता है।** मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम महान् बनना चाहते हैं हम संसार में उज्ज्वलता चाहते हैं, तो हमें अपनी आत्मा का हनन नहीं करना चाहिए। क्योंकि आत्मा का हनन कौन व्यक्ति करते हैं? "जिनकी बेटा! देखो, इन्द्रियों पर संयम नहीं होता।" जो संसार के मान और अपमान में संलग्न हो जाते हैं। मान–अपमान किसे कहा जाता है? बेटा! **"मान अपमान ही तो मानव की मृत्यु कहलायी गई है।"** मृत्यु को कौन मानव प्राप्त होता है? जो मान और अपमान को अपने में रमण करने लगते हैं। हमारे यहां परम–पिता–परमात्मा संसार में सबसे ऊपर हैं, वह सबसे महान् हैं, सबसे निरभिमानी है जिसके द्वारा किसी प्रकार का अभिमान नहीं आ पाता, छू तक नहीं पाता। क्योंकि वह रचयिता है, वह महान् है, वह विभु है, कण–कण में ओत–प्रोत होने के नाते वह कितना गम्भीर है। कितना निरभिमानी है उसको जानने के लिए हमारे आचार्यों ने नाना प्रकार का विचार दिया है। नाना प्रकार की शब्दावलियों में और नाना कृतियों में उन्होंने अपने शब्दों में कहा कि प्रभु को जानो। क्योंकि प्रभु को जानने से तुम्हें मान और अपमान नहीं होगा। नाना प्रकार की तरंगें नहीं होंगी। तुम मृत्यु को प्राप्त नहीं होंगे। क्योंकि परमात्मा सदैव रहने वाला है। इसी प्रकार हे मानव! तेरी भी प्रतिभा सदैव रहने वाली है, सदैव तू संसार में रमण करने वाला है। इसीलिए आज तू अपने प्यारे प्रभु को जान जो तेरा प्यारा प्रभु है। वह कौन है? बेटा! वह प्यारा प्रभु है, जिसमें मान और अपमान नहीं है। मान और

अपमान से पृथक् है। इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने कहा कि हम परमात्मा को जानने वाले बनकर मान और अपमान से उपराम हो जाएं। क्योंकि परमात्मा को जाने बिना जनता–जनार्दन में, जनता में हम अपनेपन में ही अपना अनुभव करने लगे कि आज मेरा अभिमान नष्ट हो गया, मेरा अपमान हो गया है, मेरा मान होना चाहिए। मान और अपमान दोनों एक सूत्र के ही धागे में पिरोए हुए हैं। एक ही सूत्र में उनको सूत्रवत् माना गया है। परन्तु जब यह विचार–विनिमय अच्छी प्रकार करते हैं कि वास्तव में हमारी जो महान् कृति है, महान् जो प्रतिभा है तो वास्तव में मान और अपमान से हम ऊंचे नहीं बनेंगे। हम उस काल में ऊंचे बनेंगे जब प्रभु के द्वार पर पहुंचेंगे। प्रभु के आंगन में जायेंगे। क्योंकि वह प्रभु हमारे जीवन का सदैव साथी बना रहता है। आज मानव नाना प्रकार के इष्ट पदार्थों को पान करता हुआ मानव यह चाहता रहता है कि मैं प्रभु को जानने की चेष्टा करूं। प्रभु के द्वार पर भी जाना चाहता है। अरे! **प्रभु को तो वही प्राप्त होता है जो अपने में उदार, विनीत हो जाता है।** जो निरभिमानी बन जाता है। जिसको मान और अपमान की तरंगें नहीं छू पातीं। वही तो हमारे यहां महापुरुष कहलाया गया है।

परमात्मा की चेतना से प्रकाशित हृदय के अलौकिक प्रकाश का वाणी से या लेखनी से वर्णन नहीं किया जा सकता, वह इन्द्रियातीत है

मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं वाक्यों को विस्तार नहीं देना चाहता हूं। केवल यह कल का हमारा कुछ यौगिक वाक्य प्रारम्भ हो रहा था। क्योंकि यौगिक वाक्य में प्रायः आता चला जा रहा था कि हम योगी बनना चाहते हैं। प्रायः मानव को यौगिक परम्पराओं में जाने की प्रबल इच्छा रहती है। परन्तु देखो, यहां मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय वर्णन करते हुए कहा था कि आज का जो संसार है आज का जो यौगिकवाद है वह मन की रश्मियों में ही लगा रहता है। मन की रश्मियों को जानने में लगा रहता है। कहीं मन की तरंगों में तरंगित होता रहता है। उसी को अपना प्रकाशवत् स्वीकार कर लेता है। आज मैं इसको क्या उच्चारण कर सकता हूं? परन्तु यौगिक वाक्य तो अनुभव का विषय रह जाता है। जब मानव के अन्तरात्मा की प्रतिष्ठा हृदय में प्रतिष्ठित हो जाती है, उस समय मुनिवरो! देखो, परमात्मा की जो चेतना है जब चेतना में और हृदय दोनों का समागम होता है तो वह मानव वाणी से इस विषय को, उस प्रकाश का वर्णन नहीं कर पाता क्योंकि वह प्रकाश इसी प्रकार का होता है। वह चेतनमय होता है। वह वाणी का विषय नहीं रह पाता। इन्द्रियों का विषय नहीं, बुद्धि का भी विषय नहीं। वह कैसा विषय है? जो महान् अनुभव किया जाता है, जैसा मैंने कल के वाक्यों में प्रकट करते हुए कहा था। आज हम यह जानना चाहते हैं, हमारे हृदय में उत्कृष्ट इच्छा रहती है, कि आज हम आत्मा को जानने का प्रयास करें।

परमात्मा के सन्निधान मात्र से प्रकृति में क्रियाशीलता जागृत हो जाती है

यह आत्मा अणु माना गया है अथवा यह विभु माना गया है क्योंकि विभु और अणु दोनों ही शब्द हमारे यहां व्यापकता में परणित किए गये है। मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारे यहां कुछ ऐसा माना है, जैसे परमपिता–परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह प्रकृति क्रियाशील हो रही है। प्रकृति का स्वभाव पुनः ही अपने स्वभाव से उमड़ आता है। जैसे माता का पुत्र है, परन्तु माता की लोरियों को अहः पुत्र हो या न हो परन्तु माता की लोरियां माता के हृदय से बेटा! स्वयं उमड़ आती हैं। मानो देखो, लोरियों में दुग्ध की प्रतिभा होने लगती है। स्वभावतः इसी प्रकार मुनिवरो! देखो, सन्निधान मात्र से ही इसी प्रकृति का स्वभाव स्वयं उमड़ आता है। स्वतः अपने आप क्रियाशील हो जाता है केवल सन्निधानमात्र से ही। इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में सन्निधानमात्र से ही इस शरीर की जो प्रक्रिया है, इसमें जो चेतन ब्रह्म है, प्रकृति के जो समूह बने हुए हैं, वे स्वतः ही क्रियाशील हो जाते हैं, क्रिया आने लगती है। उसका कारण मूल आत्मा है, सन्निधान में ही उस आत्मा का कर्त्तापन हमें दृष्टिपात आता है।

शरीर में जीव के सन्निधानमात्र से क्रियाएं उत्पन्न हो जाती हैं। अतः जीवात्मा अणु होते हुए भी निज शरीर के लिए विभुवत् माना गया है

रहा यह प्रश्न, हमारे यहां वाक्य कहा करते हैं कि आत्मा को अणु माना जाता है और कहीं–कहीं अणु और विभु दोनों स्वरूपों में माना गया है। ऐसा कहा है। क्या जैसे **परमात्मा विभु है** वह प्रकृति के सन्निधानमात्र से ही देखो इस प्रकृति की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। उसी प्रकार देखो, अणु का सन्निधानमात्र होते ही जिसको आत्मा कहते हैं, इस मानव शरीर में सर्वम् ओत–प्रोत उसकी क्रिया हो रही है और सर्वम् ओत–प्रोत है। उसका स्वभाव उसके बिना उत्पन्न नहीं होता। इसीलिए आत्मा को विभु और अणु दोनों स्वरूपों से वर्णन किया है। परन्तु हमारे

यहां आचार्यों को इसी से सन्तुष्टि नहीं हो पाती। हमारे यहां आता है जैसे मुनिवरो! एक भौतिक विज्ञानवेत्ता है, भौतिक विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार के परमाणुओं को एकत्रित करने लगता है। उन परमाणुओं को जानता हुआ नाना प्रकार के परमाणुओं को पांच–सात और चौबीस प्रकार के परमाणुओं को जानता हुआ वह एक भौतिक विज्ञान में पारंगत हो जाता है। वह मुनिवरो! देखो, नाना प्रकार के लोकों की यात्रा करने के लिए तत्पर हो जाता है।

शब्द विद्युत तरंगों का आश्रय लेकर विशाल गति धारण करके अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाता है

जैसा मैंने पूर्व काल में तुम्हें प्रकट कराते हुए कहा था कि मानव की जो वाणी है, शब्द है, मानव के उच्चारण होते हैं उसकी कितनी प्रबल गति हो जाती है। वह गतिशील बन जाता है उसकी कितनी गति है? उसमें कितनी तरंगें हैं? तो मुनिवरो! देखो, एक क्षण समय में शब्द की प्रबल गति बन जाती है। क्योंकि वह विद्युत जिसे हम 'कृत कहते हैं वह उस पर जब वह विश्राम करने लगता है। विश्राम मात्र से उसकी गति प्रबल हो जाती है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर वह अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाता है। अन्तरिक्ष में उसकी प्रतिभा रमण करने लगती है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वाक्य क्या कहता चला जा रहा है, मैं आज इस विज्ञान के क्षेत्र में नहीं जाना चाहता हूं। क्योंकि शाब्दिक जो विज्ञान है वह विशाल है, केवल मैंने इसकी सूक्ष्म सी तरंगों का पूर्व शब्दों में वर्णन किया था।

अणु जीवात्मा विभु परमात्मा की महत्ती शक्ति का आश्रय लेकर विभुवत् हो जाता है पर विभु नहीं होता

आज तो केवल इतना उच्चारण करने चले हैं कि आत्मा को हम अणु मानें या विभु मानें? मुनिवरो देखो, मैं उच्चारण कर रहा था। जैसे एक भौतिक विज्ञानवेत्ता है, वह विज्ञानवेत्ता उन अणुओं को जानता हुआ, नाना प्रकार के परमाणुओं को मिलान कराता हुआ नाना प्रकार के यन्त्रालयों में पहुंच जाता है। यन्त्र बना देता है। यन्त्रों को बनाता हुआ मुनिवरो! नाना प्रकार के लोकों में भी भ्रमण करने लगता है। जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने वर्णन कराते हुए कहा था कि आज का मानव भी चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। मैंने बहुत पूर्वकाल में **अपने प्यारे ऋषि से कहा था कि हे पुत्रवत्!** यह कोई आश्चर्यवाक् नहीं है। मुझे द्वापर का काल भी स्मरण आने लगता है। मुझे त्रेता का काल भी स्मरण आने लगता है जिस काल में नाना वैज्ञानिक, नाना लोकों की यात्रा करते थे। जैसा मैंने इससे पूर्व कई शब्दों में वर्णन किया है मुनिवरो! देखो, महाराजा अर्जुन थे, वे मंगल–मंडल की यात्रा करते समय वैज्ञानिक बन करके आये। देखो, भीम का पुत्र घटोत्कछ थे वे हमारे यहां शुक्र मण्डल की यात्रा करते थे जैसे मंगल की यात्रा अर्जुन करते थे, उसी प्रकार शुक्र और चन्द्रमा की यात्रा हमारे यहां घटोत्कछ इत्यादि किया करते थे। भगवान कृष्ण, मुनिवरो! देखो, शुक्र और घृति दो लोकों की यात्रा किया करते थे। तो बेटा यह वाक्य मुझे गम्भीर नहीं बनाना है। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हमारे यहां जो इस प्रकार के वैज्ञानिक परम्परा से होते आए हैं। उनकी विशालता के विषय में उनके वाक्य उच्चारण करने का जब किसी काल में हमें सौभाग्य प्राप्त होता है तो यह कितना कृत्य (कर्त्तव्य) कहलाया गया है। वाक्य यह है कि आत्मा को हम अणु स्वीकार करते हैं तो एक योगी का आत्मा सर्वलोकों की यात्रा नहीं कर पाता। एक भौतिक विज्ञानवेत्ता तो यन्त्रों के द्वारा मंगल की यात्रा, बुध की यात्रा और शुक्र, चन्द्र इत्यादियों की यात्रा करता है। परन्तु देखो, एक जो योगी है उस योगी की प्रवृत्तियों में ऐसा कहा गया है जब यह हृदय और आकाश जैसा मैंने कल कहा था जब दोनों की एकता में एक चित्त हो जाता है, तो देखो, दोनों का हृदय सुगठित होते हुए आत्मा का हृदय और ब्रह्म का हृदय जिसको प्रकृति का हृदय कहते हैं, आंतरिक जब दोनों की एक तुलना हो जाती है तो यह आत्मा नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों की यात्रा करने लगता है। जब नाना प्रकार के लोकों की यात्रा करने के लिए तत्पर हो जाता है, नाना लोक इसके नीचे ज्ञान में दब जाते हैं और यह प्रकृति के क्षेत्र को जानता हुआ इसकी गति एक महत्ता में परणित होती रहती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! वाक्य यहीं उत्पन्न होता है। यदि हम इस आत्मा को शरीर में अणु के रूप में स्वीकार करते हैं तो यह सर्वब्रह्माण्ड की गति किस प्रकार इसके समूह में आ जाती है? तो मेरे प्यारे ऋषि! इसका उत्तर यही बन पाता है। यदि हम ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना, दोनों की एक करते हैं तो आत्मा को भी विभु स्वीकार करना होगा। क्योंकि हम दोनों की एक ही तुलना करने पर दोनों को विभुवत स्वीकार करना होगा।

इस हमारे शरीर में पंचमहाभूत हैं, प्रकृति भी पंचमहाभूतों से क्रियाशील हो रही है, जितनी भी नाना प्रकार की प्रतिभा हमें प्रतीत होती है तो बेटा! देखो, यहां इससे यह सिद्ध होता है कि यदि परमात्मा को अणु मानोगे तो

आत्मा को भी अणु मानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य हो जाएगा इसीलिए हमारे आचार्यों ने अन्तिम में कहा है 'समागच्छम् ब्रह्मव्यापनोति कर्मणः।' हम जब यौगिक क्षेत्र में जाते हैं, सुषुम्णा नाम की नाड़ी के क्षेत्र में जाते हैं, हृदय चक्र में, स्वनाम चक्र में, कण्ठ चक्र में, घ्राण चक्र में, त्रिवेणी चक्र में, ब्रह्मरन्ध्र में जब चले जाते हैं, देखो, मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क और प्राकृतिक मस्तिष्क जो होता है जब उसके क्षेत्र में यह आत्मा जाता है, मुनिवरो! हमारे इस मस्तिष्क में जिस को लघु मस्तिष्क कहते हैं, उस लघु मस्तिष्क में सूक्ष्म–सूक्ष्म वाहक तरंगें होती हैं, वाहक नाड़ियां होती हैं ऐसा हमारे यहां कहा है कि नाना प्रकार के लोकों से उस नाड़ी का वास्तव में सम्बन्ध होता है। जहां यौगिक प्रकरण यह कह रहा है वहां हमे यह विचार–विनिमय करना होगा कि हम आत्मा को अणु मानें या विभु मानें। क्योंकि अणु में अणुता रहती है। आज हम अणु की शक्ति कितनी स्वीकार कर सकते हैं। आज इसका भी माप नहीं होगा, माप नहीं हो पाता। आत्मा का भी यदि हम अनुमान करने लगें कि इसका कितना कृत्य है? कितना इसका प्रवाह है? परन्तु देखो, इसका भी माप नहीं किया जा सकता। मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारा यह विषय केवल अनुभव का रह जाता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर आत्मा विभु और अणु के सम्बन्ध में जो हमारा एक प्रश्न चलता रहता है आज हम इसे दोनों ही स्वीकार करते हैं। अणु और विभु यदि हम दोनों स्वीकार करेंगे। **शरीर में ओत–प्रोत रहने के कारण इसको विभु माना गया है।** और मुनिवरो! जब वह केवल रह जाता है, तो केवल एक अणु रूप में स्वीकार किया जाता है। परन्तु यह वाक्य सुगठित नहीं हो पाता। क्योंकि हमारे यहां आत्मा को प्रजापति कहा है। तो वास्तव में देखो, यह प्रजापति की उपाधि में ही परणित रहना चाहिए। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं वाक्य उच्चारण करता–करता बहुत दूरी चला जा रहा हूं। वाक्य केवल उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि हम आत्मा को विभु स्वीकार कर सकते हैं? आत्मा का जो विषय है, यह बड़ा एक गम्भीर रहता है। परन्तु इसमें बहुत सा अनुसन्धान करना शेष रह जाता है। मानव के कथनानुसार भी इसका अनुसन्धान शेष रह जाता है।

आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना हमारा कर्त्तव्य है

हमारे यहां एक समय देखो 'कृतक' मुनि आश्रम में एक सभा हुई थी। जिस सभा में चाक्राणि गार्गी और मुनिवरो! भारद्वाज और 'दिग्ध' इत्यादि जिसमें और भी अनेक ऋषिवर विराजमान थे। जब वह विचार–विनिमय उनके मस्तिष्क में आया, सभा में आया, तो यह विचार–विनिमय ऋषि–मुनियों में प्रायः होता रहता था कि अब आत्मा को अणु रूप में स्वीकार करें, या विभु रूप में। क्योंकि विभु और अणु का प्रश्न उनके मस्तिष्कों में परम्परा से चलता आ रहा है। इसका मूल कारण क्या है? क्योंकि आत्मा के ऊपर मानव सदा से अनुसन्धान करता चला आया है इसकी जानकारी के लिए मानव के हृदय में बेटा! परम्परा से जिज्ञासा उत्पन्न होती रही है। क्योंकि यदि कोई भी मानव संसार में उठ जाता है, जब मुनिवरो! देखो, इसकी कल्पना आती है और भी नाना प्रकार की कल्पना मानव के मस्तिष्क में प्रायः आती रहती है। आज मैं इस वाक्य को गम्भीर नहीं बनाने जा रहा हूं। केवल वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह रहता है कि हम आत्मा के सम्बन्ध में विचार–विनिमय करने वाले बनें। हम आत्मा को जानना चाहते हैं, प्रत्येक मेरी प्यारी माता के हृदय में यह जिज्ञासा होती है कि मैं आत्मा को जानूं। मानव के हृदय में भी यह जिज्ञासा होती है। इसको जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य होता है।

मोक्ष में भी जीवात्मा परमात्मा से पृथक रहता हुआ उसके परमानन्द को भोग करता है

मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारे यहां ऐसा माना गया है कि यदि हम इस संसार में विराट् रूप से इस मानव शरीर की कल्पना करते हैं। जैसे ब्रह्म है ऐसे आत्मा भी मुनिवरो देखो विभु के रूप में परणित करना होगा। क्योकि जब इस पंच–महाभौतिक इस पिण्ड की और ब्रह्माण्ड दोनों की एक ही कल्पना करते हैं तो एक ही कल्पना करने से हम एक सार ही क्यों न स्वीकार करें? हम आत्मा को भी उसी रूप में क्यों नहीं स्वीकार करते? बेटा! देखो, इसमें कोई किसी प्रकार का दोषारोपण होता है तो इसका निर्णय किया जाए। परन्तु देखो, कोई मानव कहता है इसमें यह दोषारोपण होता है, क्योंकि आत्मा परमात्मा, दोनों की एकता मानी जाती है। मैं यह वाक्य कहा करता हूं कि आत्मा, परमात्मा को हम एक ही रूप में स्वीकार करने में किसी प्रकार का संकोच तो हमें होता नहीं। परन्तु यह स्वीकार करना होता है क्योंकि जहां शरीर के सम्बन्ध में, प्रकृति के क्षेत्र में दोनों का समावेश होता है वहां दोनों में सूक्ष्म–सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द (भिन्नता) रहता है। सूक्ष्म अन्तर रहता है। क्यों रहता है? क्योंकि यह जब मोक्ष के द्वार पर जाता है अन्तरात्मा तो मुनिवरो! देखो, यह प्रभु की चेतना में चेतनित हो जाता है। प्रभु की चेतना में

जो चेतनित हो जाता है, इसीलिए बेटा दोनों में मैंने पूर्व कई काल में कहा है कि **आत्मा वास्तव में ब्रह्म (महान) बन जाता है। "परन्तु परब्रह्म की कल्पना इससे नहीं की जा सकती।,"** मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचार व्यक्त किए थे। मेरे प्यारे ऋषिवर! जहां योग के सम्बन्ध में मैंने बहुत से अपने विचार व्यक्त किए हैं जो मेरा अनुभव था। मैंने बेटा! योग के सम्बन्ध में एक ही विचार नहीं कि भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार हैं। आज कोई मानव कहता है कि आज मैं मस्तिष्क में इस प्रकाश को दृष्टिपात करना चाहता हूं। लघु–मस्तिष्क को बिना जाने आज इसकी प्रतिभा कैसे प्रतीत होगी? जब तक सारे ऋषि विज्ञान को अच्छी प्रकार इसका मन्थन नहीं किया जा सकता, शरीर का मन्थन कैसे करोगे? शरीर में किसी प्रकार का भी रोग हो जाता है तो आज हम योग के द्वारा उस रोग को दूर कर सकते हैं।

मानव को स्वस्थ रहने के लिए जीवात्मा, मन और प्राण का योग करना आवश्यक है

हमारे यहां योग किसे कहा जाता है? मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है। मानव के जिस भी भाग में जब मन और प्राण शुद्ध रूप से कार्य नहीं करते तो देखो, अंग मानव का भंग होने लगता है। आज हम देखो, प्राण को अच्छी प्रकार उसमें संचालित करते हैं। एक मानव का हृदय दुःखित हो रहा है। **हृदय में एक रुग्णता आ रही है तो वहां प्राण की क्षमता होनी चाहिए। प्राण उसके द्वारा होना चाहिए।** कोई भी देखो मानव का विभाग हो उस विभाग में मन की प्रक्रिया और प्राण की प्रक्रिया दोनों से कार्य होता है। आत्मा उसमें चेतनित रहता है। इसीलिए आज हमें दोनों को विचारना है। क्योंकि जहां हमें प्राण शक्ति प्राप्त होती है। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं इनकी भी इच्छा प्रकट हो रही है परन्तु इनको आज समय प्रदान नहीं किया जा सकेगा। "समय ब्रह्म व्यापनोति कर्मणः रुद्रम ब्रह्मे व्यापः कृति रुद्रो", ऐसा हमारे यहां कहा गया है। यौगिक आचार्यों ने कहा है कि प्रतिभा में पहुंचे। आज मानव वास्तव में देखो स्वस्थ रहना चाहता है, शरीर को उन्नत बनाना चाहता है, शरीर के साथ में अपनी जीवन सत्ता चाहता है तो उसे योग के उस मार्ग को अपना लेना चाहिए, जिस मार्ग को अपनाने से, महान पुरुष देखो, उस मार्ग को अपनाने से उन्नति को प्राप्त हो गए हैं।

मेरे प्यारे ऋषिवर! जब इन विचारों पर और भी विचार–विनिमय होने लगता है कि **हमारे यहां योग की परम्परा वास्तव में है क्या?** क्योंकि प्रायः मानव इसके अन्धकार में चला जाता है। कोई मानव मस्तिष्क में प्रकाश को लाने की चेष्टा करता है, कोई नेत्रों में प्रकाश को लाने की चेष्टा करता है। कोई मानव हृदय में इसको चेष्टावान् करने लगता है। कोई देखो ब्रह्मरन्ध्र से ले करके कृतियों तक नाभि देखो वह मूलाधार से ले करके और मस्तिष्क तक, ब्रह्मरन्ध्र तक इसकी प्रतिभा को लाने का प्रयास करता है। **हमारे यहां योग किसे कहते हैं।** बेटा! हमारे यहां योग उसे कहा जाता है क्योंकि "योगम् ब्रह्मः व्यापक गच्छप्रवे अस्ति सुप्रजः" ऐसा कहा गया है कि सबसे प्रथम तो योग के मार्ग में जाने से पूर्व परमात्मा में आस्था होनी चाहिए। वह जो परमात्मा है वह कण–कण में जब हमें फांसने लगता है तो हमारी **जो प्रवृत्ति है वह ब्रह्म में संलग्न होने लगती है।**

जो व्यक्ति स्थूल और कारण–शरीरों के विज्ञान का पारंगत होता है वह वास्तव में योगी होता है

परन्तु एक तो प्रतिभा यह होती है। द्वितीय प्रतिभा हमारे यहां यह मानी गई है कि जहां जो भी हम कर्म करते हैं उस पर पूर्ण आस्था होनी चाहिए। जब कभी हमें अपनी अन्तरात्मा पर विश्वास नहीं हो पाता, अन्तरात्मा पर ही नाना प्रकार की विडम्बना रहती है तो मुनिवरो! देखो, यौगिक प्रक्रियाओं में या परमात्मा को चेतनवत् में कैसे मानव रमण कर सकता है? तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें अपनी आत्मा पर विश्वास होना चाहिए। **आत्मामय ही मानव का जीवन है।** क्योंकि आत्मा ही हमारा विभुवत् में परणित रहता है। इस आत्मा को हमें जानना है क्योंकि आत्मा हमारे सर्व शरीर में इस प्रकार रहता है जैसे विद्युत् ओत–प्रोत रहती है। जैसे अग्नि हमारे शरीर में ओत–प्रोत रहती है। वायु ओत–प्रोत रहती है। इसी प्रकार बेटा! देखो, हमारे इस मानव शरीर में आत्मा ओत–प्रोत रहती है। प्रत्येक जो अंग है वह आत्मा से पिरोया हुआ है। बेटा! उसी चेतना से पिरोया हुआ है। इसीलिए आत्मा को चेतनावान कहा गया है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है? मुझे इस वाक्य को गम्भीर नहीं बनाना है और इस वाक्य को मुझे वहां ले जाना है, जहां मानव की यौगिक प्रक्रियाओं का उत्थान होना चाहिए, यौगिकता में रमण करना चाहिए। देखो, भगवान कृष्ण ने और आदि आचार्यों ने भी यहां कहा है। जिस समय बेटा भगवान–राम महर्षि वशिष्ठ मुनि आश्रम में प्रविष्ट थे तो भगवान–राम ने कहा हे प्रभु! मैं यौगिक क्षेत्र में जाना चाहता हूं। योगी किसे कहते हैं? उन्होंने कहा "योगम् ब्रह्मः कृतिरुद्रो

कृतानश्च आश्वानि रुद्रानाम ब्रह्मः वाणी कृति सुप्रजो व्यापम् ब्रह्मे लोकः,'' मुनिवरो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि **योगी उसे कहा जाता है** जो देखो, अपने ब्रह्म की निष्ठा में सदैव निष्ठित रहता है, हृदय में ही उस ब्रह्म को दृष्टिपात करता है, हृदय ही इसका जगत् है, हृदय ही उसका क्षेत्र है, **हृदय ही ब्रह्म का स्थान माना गया है।** बेटा! तो मेरे प्यारे ऋषिवर! भगवान–राम ने कहा कि महाराज हृदय में क्या ब्रह्म की, क्या उस योगी की प्रतिष्ठा है। उन्होंने कहा कि योगी तो कहा ही उसे जाता है जो परमात्मा को कण–कण में व्याप्त कर लेता है, कण–कण में दृष्टिपात कर लेता है। अन्त में योगी का अन्तर्मन खो जाता है और यह कहता है कि जब सर्व जगत् यह ब्रह्मवत् है तो मैं आज किसके द्वारा यह उपदेश की मात्रा उत्पन्न कर सकता हूं। बेटा! जब योगी की इस प्रकार की पराकाष्ठा हो जाती है, वह मानव हो जाता है। देखो, उस योग की प्रथम 'अकृत' गति जानने के पश्चात् मानव इस संसार के अकृत भाग में उसकी पराकाष्ठा नहीं हो पाती। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं इस वाक्य को अच्छी प्रकार तो किसी काल में वर्णन करूंगा। क्योंकि जब तक स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर, इन तीनों शरीरों की प्रतिभा को मानव नहीं जानता तब तक उनको बेटा! वास्तव में तब तक योगी की प्रतिभा करना उसके लिए असम्भव कहलाया गया है। मेरे प्यारे ऋषिवर! देखो, ऐसे तो संसार सर्वस्त्र ही योगीवत् कहलाया जाता है।

जीवात्मा अणु है, शरीर में विभुवत् है, अल्पज्ञ है, प्रकृति के आवेशों (काम–क्रोधादि) के कारण परमात्मा के साक्षात्कार से वंचित रह जाता है

योग नाम मिलान का है। मानव कोई न कोई मिलान प्रायः करता ही रहता है। योग के क्षेत्र में भ्रमण करता ही रहता है। परन्तु सबसे उत्तम उसे योग कहा जाता है जिससे आत्मा को परमात्मा के मार्ग को जाने में सफलता की प्राप्त हो जाती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक्य यह कि हम आत्मा को विभु और अणुता में दोनों में परणित करते हैं। परन्तु देखो, इसको विभु ही माना गया है, क्योंकि इसकी भी जानकारी कहां तक है? बेटा! इस आत्मा की इतनी जानकारी है क्योंकि हम इसको अणु स्वीकार कर लेते हैं, जो बुद्धि से परे इसका विज्ञान नहीं होता। क्योंकि आत्मा का जो विज्ञान है वह बुद्धि से परे माना गया है, और जहां बुद्धि से परम अकृत माना गया है। जहां ब्रह्म के क्षेत्र चेतनवत दोनों माना गया है वहां अकृत होता रहता है। एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है जब आत्मा को हम विभु स्वीकार करते हैं तो शरीर में आने के पश्चात् जैसे परमात्मा विभु है, **परमात्मा संसार को जानता है, ऐसे आत्मा क्यों नहीं जानता** मुनिवरो! देखो, इसलिए नहीं जानता क्योंकि प्रकृति के आवेशों में प्रायः आता रहता है और प्रकृति के आवेश इसके ऊपर इतने आते रहते हैं। यह विभु तो अवश्य होता है परन्तु इसके द्वारा अल्पज्ञता अवश्य रहती है। अल्पज्ञता यदि नहीं होती तो देखो, यह परमात्मा के क्षेत्र में नहीं जा सकता था। अकृत नहीं हो सकता, आनन्दवत को प्राप्त नहीं हो सकता था। इसीलिए आचार्य कहता है, ऋषि कहता है कि बेटा! सांख्य का जो सिद्धान्त है मैं उसका वर्णन कर रहा हूं। **सांख्यवाद यह कह रहा है** ''आत च प्रवे कृति भागः भवनेति सुप्रजो अचिन्त लोकः कृति रुद्रः'' ऐसा आचार्य कहता है यह 'अप्रत' है। मानो देखो यह जो आत्मा है, इस शरीर में आने के पश्चात् एक दूसरे मानव के भाव को क्यों नहीं जानता है? इसलिए नहीं जानता कि इसका जो मनोविज्ञान है इसके संस्कारों में वह जो प्रारब्ध है, उनसे देखो, वह जकड़ा हुआ है। अन्तरात्मा जकड़ा हुआ है। क्योंकि संस्कारों का यह जगत है, संस्कारों से ही आवागमन की प्रतिभा होती है। जब तक मुनिवरो! देखो इसमें आवागमन की प्रतिभा होती है तब तक यह एक दूसरे के मन की प्रतिभा को भी अच्छी प्रकार नहीं जान पाता। वास्तव में दूसरों के मनों को योगी जानता है। अन्तरिक्ष में जो शब्द रमण कर रहे हैं उनको भी धारण करने के लिए योगी तत्पर हो जाता है। उनको वास्तव में अपने में धारण कर भी लेता है। मैं इस गम्भीरता में अधिक नहीं जाना चाहता। क्योंकि यह तो विशाल वन है योग का। आत्मा का भी विशाल वन है। इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है।

अन्तर्मुखी प्रवृत्ति बनाकर आत्मा को जानना चाहिए

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमें वास्तव में सभी को यौगिक प्रक्रियाओं में संलग्न होना चाहिए। यू तो प्रायः मानव योग में रमण करता रहता है। ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को जानता रहता है। परन्तु आत्मा को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। इसको जानने से ही हमारा कल्याण होगा, हम कल्याण को प्राप्त होंगे। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज के इन हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या है? हम परमपिता–परमात्मा को जानने का प्रयास करें। **क्योंकि परमात्मा को जाने बिना और उसको कण–कण में दृष्टिपात किए बिना हम**

अपनी अन्तरात्मा को चेतनवत् कर ही नहीं सकते। मेरे प्यारे ऋषिवर! जब तक मानव के द्वारा नाना प्रकार के आडम्बर रहते हैं, नाना प्रकार की भौतिक प्रक्रिया रहती हैं तब तक अन्तर्मुखी वह महापुरुष हो नहीं पाता। क्योंकि उसकी जो प्रवृत्ति होती हैं, वह बाह्य हो जाती हैं और बाह्य प्रवृत्ति हो जाते ही अन्र्मुखी जीवन का Âास होने लगता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वेद का आचार्य क्या कह रहा है? हमें अपनी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति बना लेनी चाहिए। हमें अपनी उस आत्मा को जानना चाहिए जो आत्मा वास्तव में हम इस शरीर विभु के रूपों में स्वीकार भी करते हैं। परन्तु देखो तो यह सिद्धान्त है। बेटा, किसी आचार्य ने आत्मा को अणु माना है, किसी ने विभु माना है। परन्तु यह विषय तो कहीं वेद का पाठ आएगा किसी काल में, तो गम्भीरता से वर्णन करेंगे। आज का वेद पाठ इस प्रकार का नहीं कि इसको इतना विलम्भ दिया जाए। परन्तु हमारा यह सांख्यवाद का सिद्धान्त है क्या इसको **सांख्यवाद में दोनों रूपों में स्वीकार किया है।** मैं दर्शनों का सिद्धान्त प्रकट कर रहा हूं। अपने अनुभव की चर्चा तो किसी काल में प्रकट करेंगे। **परन्तु सांख्यवाद इसको विभु स्वीकार करता है और कहीं–कहीं अणु भी स्वीकार करता है।** दोनों में उसकी प्रवृत्ति होने के नाते हमारा तो यह विचार रहता है कि इसको विभु ही क्यों न स्वीकार कर लिया जाए। क्योंकि उसमें उतना ही ज्ञान है, विज्ञान है, उतनी क्रिया है, परन्तु एक अल्पज्ञता अवश्य रहती है। वह ब्रह्म और परब्रह्म में दोनों के मध्य स्थित रहने पर भी इसमें सूक्ष्म अल्पज्ञता मानी गई है।

मान–अपमान का त्याग करे

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक् क्या कह रहा है? कि हम परमपिता–परमात्मा को जानने के लिए सदैव तत्पर रहें और आत्मा के प्रति हमारी कितनी निष्ठा होनी चाहिए? हम परमात्मा के क्षेत्र में कितना जाने के लिए तत्पर हो जाएं। यूं तो बेटा! संसार में एक मानव दूसरे के ऊपर टिप्पणियां करता रहता है। परन्तु टिप्पणियों से मानव किसी मानव का हनन नहीं कर पाता। वह स्वयं घृणित हो करके अपनी आत्मा को दुःखित किया करता है। इसीलिए मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है? क्या बिना परमात्मा के विश्वास के, विवेक के मानव दूसरों में त्रुटियों को दृष्टिपात करता रहता है? यदि वह अपने जीवन की त्रुटियों पर दृष्टिपात कर ले तो वह महापुरुष बन जाए। महान बन जाए। बेटा! जहां देखो इस प्रकार की प्रवृत्तियों में नहीं जाना चाहिए मानव को। परमात्मा का चिन्तन करते हुए मान और अपमान की जो तरंगें हैं, उनको त्यागना मानव के लिए बहुत अनिवार्य है।

यहां संसार में मानव को तो दो ही वस्तुएं प्राप्त होती हैं, मान मिलता है या अपमान प्राप्त होता है। परन्तु देखो इस मान और अपमान में यदि मानव सुगठित हो गया तो जानो मानव जन्म जन्मान्तरों का पथिक बन गया है। यदि मान, अपमान को मानव ने त्याग दिया है तो देखो वह परम–मार्ग का पथिक बन गया है। दोनों मार्गों में से हमें कोई से मार्ग को अपना लेना चाहिए। इसीलिए **मान और अपमान की जो प्रतिभा है यह मानव के जन्म–जन्मान्तरों का कारण बनती है।** देखो नारकीय द्वार पर मानव को ले जाती हैं। क्योंकि नारकीय द्वार तो मानव का उस काल में बन जाता है, जब मानव अपने कर्त्तव्य से स्वयं निराशा को प्राप्त होता है। जब अपने कर्तव्य से निराशा प्राप्त होती है वही तो मृत्यु है। वही नारकीय बनना है। इसीलिए इनको त्यागना है और इस संसार–सागर से पार होना है।

यह है बेटा! आज का हमारा वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट कर सकूंगा। **आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम प्रभु का चिन्तन करने वाले बनें प्रभु का सदैव चिन्तन करें, यौगिक प्रवृत्तियों को जाने, आत्मा के उस क्षेत्र में पहुंचे जहां आत्मवत् बन करके, ब्रह्म को प्राप्त करते हुए, हम आत्मवत् बनते हुए मान और अपमान को त्यागते हुए इस संसार से चले जाए।** यह आज का हमारा वाक् अब समाप्त होने जा रहा है।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : १७–दिसम्बर, १९६९
स्थान : चौ. किरन सिंह, ग्राम विधेह, शामली।

५. महापुरुष २२ फरवरी १९७२

जीते रहो!

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में परमपिता–परमात्मा का ज्ञान अथवा विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि यह जो सर्वत्र जगत आज हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह उस परमपिता–परमात्मा का विज्ञान ही दृष्टिपात आ रहा है। उसमें जो ज्ञान की प्रतीति आज हमें दृष्टिपात आ रही है, वह उस परमपिता परमात्मा की एक आभा है। उसकी विचित्रता की एक महान् कीर्ति हमारे समीप आती चली जा रही है। तो आज हमें विचारना है, आज हम उसी वेदी पर विराजमान होते चले जायें, जिस वेदी पर विराजमान होकर के यहां वेद के अनुसार राष्ट्र और समाज की प्रतिभा का एक चित्रण किया जाता है। तो आज हम उस चित्रण को लेना चाहते हैं, जिस चित्र को अपनाने के पश्चात् मुनिवरो! देखो, राष्ट्रीय और सामाजिक धर्म और मानवता का एक चित्रण हमारे समीप आता रहता है।

अज्ञान से रूढ़िवाद जन्म लेता है

मुझे बेटा! परम्परा की वार्ताएं भलीभांति स्मरण आती रहती हैं। जब हम यह विचारते हैं कि हमारा वेद क्या कह रहा है? वेद की आभाएं हमें कौन से मार्ग के लिए पुकार रही हैं, तो हमें यह प्रतीत होता है कि वास्तव में उस मार्ग को हमें अपनाना है। क्योंकि संसार में मानव के विचारों में रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यह जो रूढ़ि होती है यह धर्म और मानवता के विकास का विनाश करने वाली है। तो इसीलिए आज हमारे जीवन में किसी प्रकार की रूढ़ि नहीं होनी चाहिए और रूढ़ि का जो मूल है वह अज्ञान है। इसलिए हमारे जीवन में अज्ञानता नहीं होनी चाहिए और अज्ञानता उस काल में आती है, जबकि मानव अपने मानवीय दर्शन को त्याग देता है। अपनेपन को ही अपने को नहीं जान पाता तो संसार में अज्ञान प्रायः आ जाता है।

प्राचीन आर्यों में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वशिष्ठ, भारद्वाज, शृंगी ऋषि, नारद और विश्वामित्र आदि परम्परागत उपाधियां थीं

मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे आज का वेद पाठ भी कह रहा था। आज के वेद के पठन–पाठन में हमारे यहां नाना प्रकार की उपाधियां परम्परागतों से चली आईं। जैसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वशिष्ठ, भारद्वाज, शृंगी ऋषि और विश्वामित्र आदि। उपाधियां परम्परागतों में ही चली आ रही हैं। क्योंकि हमारे यहां वशिष्ठ मुनि का वर्णन हमारे साहित्य में उस काल में आता है जब स्वायंभुव मनु थे। क्योंकि स्वायंभुव मनु के जो पुत्र थे इक्ष्वाँकु उन्होंने एक पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जो महाराजा वशिष्ठ ने किया था। परन्तु देखो वह उसके ब्रह्मा रहे और वही परम्परा पुरातन काल से चली आई। त्रेता का काल आया और त्रेता के काल में भी रघुवंश में वशिष्ठ ही ऊंचे पुरोहित माने जाते थे। तो आज विचारना यह है कि **भगवान् स्वायंभुव मनु से लेकर उनके ७५वाँ वंशज हुए।** उनके राष्ट्र में जो वंश परम्परा चली आई जैसे मुनिवरो! देखो, अथवा स्वायंभुव मनु के पुत्र का नाम इक्ष्वाँकु मनु था और इक्ष्वाँकु मनु के पुत्र का नाम सूर्य मनु था, सूर्य मनु के पुत्र का नाम चन्द्रकेतु मनु था, और चन्द्रकेतु मनु के पुत्र का नाम रेनकेतु मनु था और उनके पुत्र का नाम स्वाभिनी मनु था। इसी प्रकार यह ७५वाँ वंशज ने इस पृथ्वी मण्डल पर राज्य का पालन किया और अपने को अनुशासन में करते हुए इस प्रजा को नियन्त्रण में लाने का उन्होंने सर्वत्र प्रयत्न किया, और वह परम्परा चलती आई। परन्तु वशिष्ठ उस काल में इक्ष्वाँकु मनु का पुत्रेष्टि यज्ञ कराने में भी रहे। परन्तु उसके पश्चात् ज्ञानश्रुति के समय में भी रहे और आए आकर के मुनिवरो रघु वंशज में सूर्य वंशज में भी यह पुरोहित कहलाते थे।

वशिष्ठ

तो विचारना क्या कि मुनिवरो! हमारे यहां यह एक उपाधि है। उपाधियां हमारे यहां सर्वत्र मानी जाती हैं। क्योंकि राज्य का पुरोहित वही होता है जो अपने जीवन को संयम में बना लेता है और ब्रह्म को अपने में समाहित कर लेता है। संसार में बेटा! मानव के समीप दो प्रकार के भय होते हैं। एक भय तो सामाजिक होता है। द्वितीय

भय ईश्वरीय होता है। जो मुनिवरो! देखो, ईश्वर को जानते हुए परमपिता—परमात्मा को जानते हुए वह परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। अपने प्रभु के बन जाते हैं तो उनको लोग अपना ब्रह्मवेत्ता चुना करते हैं। क्योंकि ब्रह्मवेत्ता की उपाधि उन्हें प्रायः प्राप्त होती है, जिनका कर्मकाण्ड भी हो, कर्मकाण्ड के साथ में उनका जीवन भी परिमार्जित हो तो उन व्यक्तियों को, उन महापुरुषों को हमारे यहां उपाधियां प्राप्त हुआ करती हैं, जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा था।

नारद

नारद एक उपाधि है और नारद कैसी उपाधि है। जिसकी गति मुनिवरो! देखो मन की गति ज्ञान के सहित इतनी प्रबल हो जैसे मन की क्षमता में कहीं का कहीं रमण कर जाता है उसी प्रकार जो ब्रह्मवेत्ता बन करके और ध्यानावस्थित होकर के इस संसार का जो दिग्दर्शन करने वाले हों और जो देखो नारद प्रवे जो अपने हृदय में किसी प्रकार का कपट न रहने दे। उसको हमारे यहां नारद कहा जाता है। क्योंकि नारद का अभिप्राय यह है नारद प्रवे अप्रः जो अपने को इस संसार में रमण करा देता है। अपनी आभाओं को अपनी इच्छाओं का संसार है त्याग देता है। वह लोक लोकान्तरों में अपनी आभा को ले जाने वाला होता है उसको हमारे यहां नारद कहते हैं। क्योंकि हमारे यहां परम्परागतों से यह उपाधियां बुद्धिमानों के द्वारा परिमार्जित चुनाव भलीभांति होता है। इनका जो मान है, प्रतिभा है एक आभा में सदैव रमण करती रहती है उस आभा का नाम हमारे यहां उस आभा के कारण भी नाना प्रकार की उपाधियां प्राप्त होती रहती हैं। जैसा मैंने बहुत पूर्व काल में प्रकट करते हुए कहा था। वशिष्ठ एक उपाधि है।

ब्रह्मा

उपाधि का अभिप्राय यह है कि बुद्धिमान जब किसी को चुनते हैं तो उनकी परीक्षा करने के पश्चात् वह ऋत और सत् को जाने वाला हो। उसको क्रोध तो नहीं आता उस काल में उसको ब्रह्मवेता कह करके यह कहा जाता है। जिसके लिए मानव यह उच्चारण करें कि यह ब्रह्मवेत्ता है वह सर्वत्र बुद्धिमानों को और ब्राह्मण समाज को मुनिवरो! वह मान्य होता है। इसी प्रकार वेदों के पंडित होने के नाते, कर्मकाण्ड के युक्त होने के नाते, रचना कराने के नाते, ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती है।

इन्द्र

मुनिवरो जैसे इन्द्र है हमारे यहां इन्द्र की इस प्रकार की उपाधि मानी जाती है। इन्द्र का अभिप्राय यह है कि जो मुनिवरो! एक सौ एक अश्वमेघ यज्ञ कर लेता है। **अश्वमेघ का अभिप्राय यह है** जो संसार को विजय करके अपनी भावनाओं से, अपनी विद्या से अपने बल से जो मुनिवरो! यज्ञ कर लेता है। वह देखो, एक सौ एक यज्ञ करने वाले को हमारे यहां इन्द्र की उपाधि प्रदान की जाती है। क्योंकि इन्द्र किसे कहा जाता है? जितना भी राष्ट्र मण्डल होता है, उस राष्ट्र मण्डल का एक नेतृत्व करने वाला होता है, एक नियमावली बनाने वाला होता है। उन सर्व राष्ट्रों को अपने नियन्त्रण में लाने वाला हो। **उन सर्व राष्ट्रों के एक सर्व शिरोमणि को इन्द्र कहा जाता है।** जो मुनिवरो! देखो, संसार में कोई उसका विरोध न कर सकता हो। जिसका कोई विरोधी न हो। अह! ऐसा वास्तव में कोई होता तो नहीं। परन्तु यदि विरोधी भी हो तो अपनी विद्या से, अपने बल से उसको विजय करने वाला हो। तो उस राजा को, महाराजा को हमारे यहां इन्द्र कहा जाता है।

शिव

तो मुनिवरो! देखो, इसी प्रकार देखो शिव है हमारे यहां शिव की जो उपाधि है, शिव का अभिप्राय है **शिवम् भवे प्रवा कृति** जो एक महान आकृति वाला जो पुरुष होता है। कैसा पुरुष हो? कैसी आकृति वाला हो? जैसे मानो कैलाश पर्वत है, बहुत विशाल है, जिसकी प्रवृत्ति इतनी विशाल हो जो कैलाश पर्वत को भी निगल जाती हो। उस कठोरता को भी सहन करने की उसमें शक्ति हो और जिसमें अहिंसा का भाव हो। हिंसा न आने वाली हो उसको हमारे यहां शिव की उपाधि प्रदान की जाती है।

विष्णु

विष्णु कहते हैं जिसमें मुनिवरो! मान और अपमान न हो जिसमें एक महानता का दर्शन हो। उसको हमारे यहां विष्णु कहा जाता है। तो आज मैं वाक्य उच्चारण करता हुआ उपाधियों की गणना करने लगा हूं। उपाधियां

हमारे यहां यह तो परम्परा से चला आ रही हैं, चलती रहेगी। विचार यह कि उनके द्वारा, उपाधियों के द्वारा राष्ट्र और समाज ऊंचा बनता है इससे विचार होता है।

योग्य व्यक्तियों को ही उपाधियां प्रदान की जाती थीं

हमारे यहां देखो पुत्रेष्टि यज्ञ, वृष्टि यज्ञ कराने का भी हमारे यहां प्रकरण आता रहता है। इसी प्रकार अश्वमेध, गोमेध, कन्या मेध, मुनिवरो देखो नाना प्रकार के यज्ञों का वर्णन है। जैसा याज्ञवल्क्य इत्यादि ऋषिओं ने भी उसका वर्णन धर्म ग्रन्थों में किया है। इससे पूर्व काल में भी उसका वर्णन होता रहा है। परन्तु विचारना यह है कि यह **उपाधि बुद्धिमानों के द्वारा, महापुरुषों के द्वारा, इसका चुनाव होता रहता था।** आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना प्रकट नहीं करूंगा। केवल वाक्य यह है कि हमारे यहां परम्परागतों से ही उपाधियां राष्ट्र और समाज के कल्याण के लिए इनका निर्माण किया जाता था। क्योंकि अधिकारी को जो वस्तु प्रदान की जाती है, अधिकारी उस वस्तु को लेकर उसका सदुपयोग कर सकता है। इसी प्रकार हमारे यहां देखो इन सबका सदुपयोग होता है। तो आज हम जब सदुपयोग की भावना अपने मस्तिष्क में लाते हैं तो विचार केवल यही आता है कि अधिकारी को वस्तु प्रदान की जाए। जिससे बेटा! राष्ट्र और समाज दोनों ऊंचे बनें।

अनाधिकारियों को अधिकार देने से स्वार्थ की मात्रा प्रबल होती है

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा था कि समाज में एक रक्त भरी जो भावनाएं आती हैं वे किस काल में आती हैं? तो मैंने बहुत पूर्व काल में अपना विचार दिया और वह विचार केवल यह था कि अनाधिकार और अधिकार के ऊपर जब विचार नहीं रहता समाज का उस काल में मुनिवरो! देखो, जब उसका निर्माण बुद्धिमानों के द्वारा, वैज्ञानिकों के द्वारा नहीं होता। तो परिणाम क्या होता है? कि रक्त भरे विचार मानव के मस्तिष्क में आ जाते हैं क्योंकि स्वार्थ की मात्रा प्रबल बन जाती है। स्वार्थ उस काल में आता है जब अनाधिकारियों को वस्तु प्रदान की जाती हैं। जैसे एक राष्ट्र नेता बनाना है, राष्ट्र का चुनाव करना है और राष्ट्रपति बनाना है तो बुद्धिमान विवेकी ब्राह्मणों के द्वारा उसका चुनाव नहीं होता। न होने के कारण वह राष्ट्र के लिए इतना हितकर नहीं होगा।

त्यागी पवित्र पुरुषों द्वारा उपाधियां प्रदान होने से राष्ट्र की उन्नति

परन्तु जिस काल में उपाधि निर्णय बुद्धिमानों के द्वारा पवित्र पुरुषों के द्वारा होगा तो मुनिवरो! देखो, त्यागी पुरुषों के द्वारा होगा तो वह राष्ट्रपिता राष्ट्र के लिए उन्नति का कारण होता है। समाज में शान्ति होती है और विद्या का प्रसार होता है। तो हमारे यहां इसका चुनाव सुन्दर होना चाहिए। हमने बहुत पूर्व काल में अपने विचार देते हुए कहा था कि संसार में अधिकारी को वस्तु प्रदान की जाए।

विद्यालयों में गुरूजन सुयोग्य होने चाहिए

जब विद्यालय में किसी गुरुजन को चुना जाता है तो कैसे चुनाव हो उसका? बुद्धिमानों के द्वारा उसमें कितना मनोविज्ञान है? क्योंकि बिना मनोविज्ञान के, आयुर्वेद के जाने बिना ब्रह्मचारियों का गुरु बनने का उसे अधिकार नहीं होता। क्यों? कारण यह है कि उस मानव के मस्तिष्क की जो जानकारी है वह आचार्य की होती है और आयुर्वेद में वह विद्या है। परन्तु वह ब्रह्मचारियों की जो विद्या है वह आयुर्वेद है। मानव का मस्तिष्क किस प्रकार का उसका निर्माण किया हुआ है, किस प्रकार की प्रवृत्ति है? उसको आचार्य जानता है। इसलिए आचार्य को यह कहा है कि आचार्य ब्रह्मचारी को तीन दिवस तक मुनिवरो देखो अपने गर्भ में धारण करना चाहिए। गर्भ का अभिप्राय क्या है? जो माता का गर्भ है उनका अभिप्राय नहीं, परन्तु जो गुरु का कुल होता है वह उस गुरु आचार्य का गर्भाशय होता है जब उसमें ब्रह्मचारी रहता है तो उसके विचारों से, उसकी क्रियाओं से आचार्य यह जान लेता है यह कौन से गुणों वाला ब्रह्मचारी है। कौनसा गुण, कौनसी उपाधि इसे प्रदान की जाए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनमें से कौनसी प्रदान की जाए। तो इसका जो चुनाव है वह आचार्यों के द्वारा होता है। इसलिए ऋषि मुनियों ने क्या कहा है? शिक्षालयों में ऊंचा ब्राह्मण हो और आचार्य सुन्दर हों। जब गुरु ऊंचा होगा तो मुनिवरो राष्ट्र और समाज का ऊंचा कल्याण हो सकता है।

राष्ट्र में मानवता की स्थापना करके ही अन्य लोकों की यात्रा सफल होगी

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं अधिक चर्चा तो प्रकट नहीं करूंगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि वैज्ञानिक एक यन्त्र का निर्माण करता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में यह प्रकट करते हुए कहा

कि आज का वैज्ञानिक चन्द्र यात्रा कर रहा है, मंगल में जाने का प्रयास कर रहा है। हमने बहुत पूर्व काल में इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि चन्द्रमा में जाना कोई आश्चर्य नहीं मंगल में जाना भी आश्चर्य नहीं, शुक्र में जाना भी मानव के लिए आश्चर्य नहीं है। परन्तु देखो, यहां अधिकार और अनाधिकार का निर्माण करना, चुनाव करना राष्ट्र में मानवता को लाना, समाज को सुदृढ़ बनाना यह जब समाज में आ जाती है तो समाज ऊंचा बन जाता है। उस काल में चन्द्रमा की यात्रा भी सफल होती है।

भौतिक–विज्ञान पर मानव का जन्म–सिद्ध अधिकार

परन्तु मैंने बहुत पूर्व काल में कहा है कि चन्द्र यात्रा तो होनी चाहिए। परम्परागतों से हमारा जो विज्ञान है, भौतिकवाद यह तो मानव का जन्म–सिद्ध अधिकार होता है। इस अधिकार का अभिप्राय यह है कि यह तो विज्ञान परम्परागतों से ही चल रहा है। इस विज्ञान की आभाओं में एक महत्ता का दिग्दर्शन होता रहता है। इसको विचारने के पश्चात् हमारा जीवन एक महत्ता की वेदी पर आ करके एक पवित्रता को प्राप्त होता रहता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! यह विज्ञान हमारे यहां परम्परागतों से ही माना गया है।

महर्षि नारद से विज्ञान की शिक्षा का पान

मैंने बहुत पूर्व काल में यह कहा कि हमारे यहां एक राजा उत्तानपाद हुए। आज से लाखों वर्षों पूर्व मुनिवरो! उनके पुत्र का नाम था ध्रुव। केवल पांच वर्ष का पुत्र था। उस समय माता के आंगन में जब रमण करता था। क्योंकि उत्तानपाद के दो पत्नियां थीं। ध्रुव जो ब्रह्मचारी था माता उसे अपनी लोरियों का पान कराती रहती और कुछ निर्माण की वार्त्ताएं प्रकट करती रहती थी। तो एक समय नारद मुनि आ पहुंचे। नारद मुनि के समीप ब्रह्मचारी जब सात वर्ष का था, विडम्बना (संताप) से युक्त था। उन्होंने कहा प्रभु मैं बड़ा दुःखित हूं। तो देव ऋषि नारद मुनि अपनी विज्ञानशाला में गए। नारद मुनि उस समय हिमालय की कन्दराओं में अनुसन्धान कर रहे थे ध्रुव मण्डल का। उस ब्रह्मचारी का मस्तिष्क बड़ा तीव्र था। नारद मुनि ने यह जान लिया यह तो ब्रह्मचारी बड़ा सुयोग्य है। उस समय उन्होंने बेटा! यन्त्र बनाने प्रारम्भ कर दिए। अहः धातु से उनके यहां नाना प्रकार के निर्माण होते रहते थे। कुछ ब्रह्मचारी भी शिक्षा ग्रहण करते रहते थे। परन्तु नारद जी के यहां मुनिवरो! देखो, ध्रुव–यान का निर्माण किया जा रहा था। तो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति बना करके और भौतिक परमाणुओं का विज्ञान करते हुए उन्होंने ध्रुव–यान बनाया। ध्रुव–यान का निर्माण किया। उसमें मुनिवरो! देखो, महात्मा ध्रुव विराजमान हो करके ध्रुव–मण्डल की यात्रा करते थे।

हमारे प्राचीन वैज्ञानिक आचार्यों ने, महर्षियों ने लोक–लोकान्तरों की यात्राएं की थी

मुनिवरो! देखो, ध्रुव मण्डल कितना विशाल है। जिसमें असंख्य सूर्य समाहित हो जाते हों ऐसा जो मण्डल है, उस ध्रुव को जानने का प्रयास महात्मा ध्रुव ने किया। विज्ञान की जो आभाएं हैं, मानव के जीवन में परम्परागतों से आती रहती हैं। क्योंकि उन महात्मा ध्रुव की जो विवेचनाएं हैं हमारे यहां साहित्यकारों ने उसका बड़ा सुन्दर विवेचन किया। परन्तु विचार क्या? मुनिवरो! देखो, महात्मा ध्रुव कितने वैज्ञानिक थे। मैं उसके विज्ञान की सीमा की माप नहीं पा रहा हूं। न मापना चाहता हूं। विचार केवल यह है कि हमारे यहां विज्ञान में पहुंचना कोई आश्चर्य नहीं माना जाना चाहिए।

समाज कब ऊंचा होगा?

परन्तु देखो, जहां यह है, वहां ऋषि–मुनियों ने यह कहा क्या? समाज ऊंचा होना चाहिए। समाज में सात्विकता होनी चाहिए। समाज में यौगिकता आ जानी चाहिए। समाज में प्रभु को समर्पित करने की क्षमता होनी चाहिए। उस काल में यह राष्ट्र और समाज ऊंचा बनेगा। आज मानव यह चाहता है कि मैं यौगिक क्षेत्र में जाना चाहता हूं। आज मैं भी यह चाहता रहता हूं योगी बनूं। परन्तु और भी आचार्यों की विडम्बना (अनुकरण) रहती है कि यौगिक क्षेत्र में जाना चाहता हूं।

मन और प्राण के मेल को योग कहते हैं

हमारे यहां विचार यह है कि योग किसे कहा जाता है? हमारे यहां योग की सीमाएं करते हुए ऋषि मुनियों ने कहा है कि मन और प्राण का मिलान करना है। दोनों को एक सूत्र में लाने का काम योग कहलाया जाता है। अब विचार आता है कि इनको एक सूत्र में कैसे लाया जाए? क्योंकि प्राण भी दस हैं। प्राणों के भाग भी दस हैं। मन की भी नाना प्रकार कामना जागरूक हो चुकी हैं। अब मुनिवरो! देखो, इन दोनों को जोड़ने का प्रयास करना

है तो हमें किसी का आश्रय लेना होगा, तो मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा, हे प्रभु! मैं योग के क्षेत्र में जाना चाहता हूं। परन्तु समाज को ऊंचा बनाने के लिए मेरे हृदय में एक विडम्बना रहती है। परन्तु मैं यह चाहता हूं कि मैं यौगिक क्षेत्र में पहुंच जाऊं। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, हे पुत्रवत्! संसार में वाक्य उच्चारण करना अथवा योगी बनाना यह दो वाक्य हैं। उन्होंने कहा प्रभु! मैं तो योगी बनना ही चाहता हूं। उस समय कहा जब **तुम योगी बनना चाहते हो तो अपने को समर्पित करने की तुममें शक्ति होनी चाहिए।** अब मुनिवरो! देखो, जब तक एक दूसरों की समर्पित करने की हममें शक्ति नहीं होती, समर्पित नहीं कर सकते, तो तब हम योगी कैसे बनेंगे? क्योंकि सबसे प्रथम हम जब प्रभु के लिए अपने को समर्पित कर देते हैं तो मुनिवरो! हममें यौगिक तरंगें ओतप्रोत होने लगती हैं। जैसे माता का प्रिय बालक अब क्षुधा से पीड़ित हो रहा है, माता को उसने अपने को समर्पित कर दिया है, जब व्याकुल होता है तो माता दृष्टिपात करती है कि यह मेरे आधीन है। मेरे समर्पित है तो उस बालक को माता अपनी लोरियों का पान करा देती है। पान कराने के पश्चात् उसकी पिपासा शान्त हो जाती है और वह पिपासा जहां समाप्त हुई, समाप्त होने के पश्चात् उसको आनन्द प्राप्त होने लगता है। अतः! इसी प्रकार जब हम प्रभु को अपने को समर्पित कर देते हैं सर्वत्र कामनाओं को समर्पित कर देते हैं और प्रभु को हम सर्वत्र कण–कण में दृष्टिपात करने लगते हैं, उस समय समर्पित करते हुए जो प्रभु है, वह जो हृदय ग्राही है, जो चेतन्य है, देवता है, देवताओं का भी महादेव है, वह अपने हृदय से अपने पुत्र को धारण कर लेते हैं और एक आनन्दमय जो आनन्द है जिसको परम आनन्द कहते हैं उसको वह उस सोम को प्रदान कर देते हैं। उसके लिए यह लोक न होने के तुल्य हैं। ऐसे जो महापुरुष होते हैं, ऐसे जो योगी बनना चाहते हैं वह सबसे प्रथम प्रभु को अपने को समर्पित कर देते हैं।

प्रभु को समर्पण करने से, जीवन को यज्ञमय बनाने से समाज तथा राष्ट्र ऊंचा बनता है

हमारे यहां बेटा परम्परागतों से ही नाना प्रकार के लोकों में जाने की गति रही है। महात्मा ध्रुव ने जब अपने को समर्पित कर दिया तो इतने विशाल वैज्ञानिक बने। परन्तु इसी प्रकार जो मानव अपने को दूसरों को समर्पित करना चाहते हैं उसको परम आनन्द प्राप्त होता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम अपने जीवन को यज्ञ में समर्पित कर देते हैं, यज्ञमयी जीवन हो जाता है क्या जो भी भावना हो वह भी यज्ञमय हो, तरंगें हों वह भी यज्ञमय हों, सुगन्धि दायक हों, योगी का जो मस्तिष्क और विचार होता है उसमें से सुगन्धि उत्पन्न होने लगती है और वह जो सुगन्धि होती है वही राष्ट्र और समाज को सुगन्धित बना देती है।

वेदों में लोक लोकान्तरों में जाने का विज्ञान विद्यमान है

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं यह वाक्य अधिक उच्चारण करना नहीं चाहता था। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को कुछ समय लेना था परन्तु उनको समय कल प्रदान किया जाएगा। आज समय न होगा क्योंकि समय की बहुत दूरी हो गई है। विचार क्या? कि हम अपने जीवन को एक महत्ता की वेदी पर ले जाना चाहते हैं। जीवन को एक ऐसे ऊंचे आदर्श में ले जाना चाहते हैं, जहां धर्म और मानवता की रक्षा होती हो। क्योंकि चन्द्रमा में जाना, मंगल में जाना, शुक्र में जाना, और भी नाना प्रकार के लोकान्तरों की यात्रा करना यह हमारे वैदिक साहित्य में यह विद्या परम्परागतों से निहित है।

केवल विज्ञान में जाने से मानव में, राष्ट्र में अभिमान बढ़ता है

तो मुनिवरो! देखो, उस विज्ञान में रमण करने की हमारी जो आवश्यकता है वह उस काल में होती है जबकि हम अपने इस मानवीय समाज को ऊंचा बनाते हैं। क्योंकि इस विज्ञान में जाना कोई दुरित (कठिन कार्य या पाप) नहीं। यह भी बहुत सुन्दर है। परन्तु इस विज्ञान से मानव में अभिमान, राष्ट्र में अभिमान, अधिकार चेष्टा होने लगती है। उसका परिणाम कि यह समाज अन्तर्द्वन्द को प्राप्त होता रहता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है आज हमारा कि हम अपनी महत्ता को, अपनी विचारधारा को ऊंचा बनाना चाहते हैं। आज हम इन उपाधियों के ऊपर विचार विनिमय करें।

मुर्खों द्वारा चुने गए नेता राष्ट्र का निर्माण नहीं कर पाते हैं

जहां बेटा! देखो, यहां राजा, महाराजा नहीं बुद्धिमान ब्राह्मण समाज के द्वारा चुनाव होता था। निर्माण होता था। यह मैंने बहुत पूर्व काल में अपना वाक्य प्रकट करते हुए कहा था कि जिस चुनाव में राष्ट्र में मूर्खों के द्वारा, अपठितों के द्वारा जिस राजा का नेतृत्व करने वाले का चुनाव होगा, वह राष्ट्र–पिता मूर्ख होता है। उसके मूर्ख

होने का प्रमाण मुनिवरो! देखो, वह राष्ट्र को ऊंचा नहीं बना सकेगा। क्योंकि जब निर्माण करने वाले जो चुनाव करते हैं नहीं जानते उस महत्ता को तो उनकी जो तरंगें हैं वे तो एक रूढ़ि हैं और रूढ़ि जो होती है वह अज्ञानता से बनती हैं और अज्ञान ही संसार में रूढ़ि बनाता है और रूढ़ि ही राष्ट्र समाज के लिए हानिकारक होती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! किसी भी प्रकार की रूढ़ि बन जाए, धर्म की रूढ़ि बन जाए, समाज की रूढ़ि बन जाए, विचारों में रूढ़िवाद आ जाए, राष्ट्र में रूढ़िवाद आ जाए, जातीयता आ जाए तो जानो कि समाज में रूढ़ि देखो, वह विनाश के लिए उत्पन्न हुई है, विनाश के लिए रूढ़ियों का विचार मानव के प्रायः मस्तिष्क में आया है।

वेद के वचनों के अनुसार तथा महापुरुषों के आदर्श के अनुसार समाज तथा राष्ट्र को बनाएं

तो इसलिए हमें विचारना है आज हम उन महापुरुषों के आदर्शों के अनुसार और वेद के वचनों के अनुसार अपने जीवन और शिक्षालयों को बनाएंगे तो यह समाज पवित्र बनेगा। राष्ट्र तभी ऊंचा होगा जब मानव में अपने को समर्पित करने की क्षमता होगी।

विष्णु

कल मैं योग के सम्बन्ध में कुछ अपने विचार प्रकट करूंगा। जो अपना कुछ अनुभव भी योग के सम्बन्ध में उसका भी विचार कल मैं अपना प्रकट करूंगा। आज मैं अपना कोई वास्तविक विचार प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार यह है कि हमारे यहां यह जो उपाधियां हैं जैसे ब्रह्मा उपाधि है विष्णु उपाधि है जो राष्ट्र का पालन–पोषण अच्छी प्रकार कर सके। उसका निर्माण सुन्दर हो। वह विष्णु कहलाया जाता है हमारे यहां सूर्य–मण्डल का जो राजा होता है, सूर्य–लोक का जो राजा होता है, उसको विष्णु कहा जाता है इसी प्रकार बेटा! क्योंकि वह जो विष्णु है जैसा हमारे यहां यह आया है कि सूर्य–मण्डल में भी क्या प्राणी रमण करते हैं? अथवा नहीं? इनका उत्तर मैं बहुत पूर्व काल में प्रकट कर चुका हूं।

मैं इन लोक–लोकान्तरों में जाना नहीं चाहता हूं। वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि आज लोक लोकान्तरों में जाने की हममें शक्ति होनी चाहिए परन्तु उसके साथ–साथ हमें राष्ट्र और समाज में चरित्र और मानवता को लाने का प्रयास करना चाहिए जिससे यह राष्ट्र ऊंचा बने और महत्ता वाला बने। यह जो मानवीय जीवन है यह समाज को ऊंचा बनाता है, पवित्रता लाता है, महत्ता को लाने का प्रयास करने वाला जो प्राणी है वह महापुरुष होता है **अपने जीवन में याज्ञिक बनना चाहिए।** यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल करूंगा। कल मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ साहित्य की चर्चाएं करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा।
पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।
पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : २२–फरवरी–१९७२
समय : दोपहर ३ बजे।
स्थान : लाखा मंडप, बरनावा।

६. पुनीत–आत्मा २ जून १९७२

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण करते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वाणी में उस परमपिता–परमात्मा की आभा निहित रहती है। क्योंकि परमपिता परमात्मा का ज्ञान–विज्ञानमय यह जो जगत् है यह हमें अलौकिक प्रतीत होने लगता है। जब हम इस महत्त्वदायक जगत् पर विचार–विनिमय करना प्रारम्भ कर देते हैं तो बेटा! उस महान् जीवन की आभा का मधु एक मौलिक व्रत धारण कर लेता है। हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि परमपिता–परमात्मा की जो आभा है, सर्वत्र वह आभा दृष्टिपात आने लगती है जो हममें भर रही हो। उसी की आभा में हम अपना कार्य कर रहे हैं। संसार में प्रत्येक मानव भयभीत होता रहता है। उसमें नाना प्रकार के विचार आते रहते हैं।

आत्मा का भविष्य क्या है?

बेटा! आज मुझे वैदिक विचारों से कुछ प्रतीत हो रहा है और वह क्या कि हम आत्मा के सम्बन्ध में कुछ विचार करें। परन्तु आत्मा का तो एक विशाल चक्र है। आत्मा की जो विशालता है वह प्रत्येक प्राणी के मस्तिष्क में ओत–प्रोत रहती है। प्रत्येक प्राणी उस महान् आत्मा के

[1]स्वर्गीय बाबू अमृतलाल जी बस्सी का त्रेता काल के जन्म का वृतांत।

सम्बन्ध में जानना चाहता है। भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार दार्शनिक कर रहा है। विचारों में कुछ लोलुपता और प्रकाश भी है परन्तु जो मानव का अनुभवी ज्ञान है वह और ही कुछ आज्ञा दे रहा है। परन्तु नाना प्रकार की भ्रांतियां होने के पश्चात् भी आज बेटा! मैं उन नाना भ्रांतियों में जाना नहीं चाहता हूं। मानव के सम्बन्ध में विचार यह आता रहता है क्योंकि मानव का सबसे जो मानवीय धन है उसके प्रति आश्चर्य प्रतीत होता है। परन्तु जो मानवीय कहलाते हैं उन्हें सबसे महान भय यह रहता है कि मेरा यह आत्मा कहां जाएगा? इस आत्मा का बनेगा क्या? परन्तु इसके ऊपर विचार किसी का नहीं होता। जो महान् विचारक होते हैं वह इस सम्बन्ध में विचारते हैं।

परमात्मा के विश्वास वाले महात्मा मृत्यु से भयभीत नहीं होते

रहा यह कि संसार में मानव जो भयभीत होता है वह मृत्यु से होता है और कोई ऐसी वस्तु नहीं है मानव के समीप, जो भयभीत होने वाली हो। सदा इसकी कल्पना करता रहता है मानव कि मेरा यह शरीर न चला जाए। परन्तु जो महान् विचारक होते हैं, दार्शनिक होते हैं उनको भी यह प्रकृति अपने में धारण कर लेती है। परन्तु जो यौगिक और दार्शनिक विचारक होते हैं, जो मुनि बन जाते हैं उनकी प्रवृत्तियों में 'ध्यानः प्रवे' कुछ अन्तर प्रतीत होने लगता है। भिन्नता दृष्टिपात आती है। अपनी अन्तरात्मा में ही प्रभु के जब दर्शन कर लेते हैं, तो उनके मस्तिष्क में यह वाक्य आता है कि **"प्रभु जब हम में है और हम प्रभु में हैं तो पवित्र वस्तु न कोई आती है और न कोई जाती है।"** विचार यह कि यह चक्र है प्रकृति का। प्रकृति के आवेशों में आते हैं और आकर के चले जाते हैं। परन्तु विचार यह कि न कोई आना है न कोई जाना है।

मानव के संस्कार चित्त (अन्तःकरण) में संचित हो जाते हैं

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ अपने विचार देने आये हैं तो पोथी लिए हुए हैं। इनका विचार रहता है कि मैं अपनी पोथी में से कुछ उच्चारण करूं। इन वाक्यों में मुझे अधिक नहीं जाना है। केवल विचार यह देना है कि हम इस आत्म सम्बन्ध में, आत्म चिन्तन वेत्ताओं के सम्बन्ध में कुछ विचार करने के लिए आते हैं। संक्षिप्त परिचय देते हैं। **मानव जैसा भी इस प्रकृति के आवेशों में आ करके अपने विचार और संस्कार बना लेता है उसके अनुकूल उसके आवागमन की प्रतिभा बन जाती है।** मानव अपने कृत्यों से आवागमन बनाता है। किसी दूसरे के कर्म से आवागमन नहीं बनता। अपने से बनाता है। परन्तु हमारा दार्शनिक विचार यह कहता है कि मानव के शरीर में मन, बुद्धि, चित्त अहंकार यह चार साधन हैं। इन्हीं चारों के समन्वय को चित्त कहा जाता है। लेकिन चित्त नाम की ध्वनि कहलाती है। जिसमें मानव के जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते हैं। जब भी बेटा! मैं संस्कारों के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करता हूं तो विचार केवल यही आता है कि यह सर्वत्र जगत् जो है यह जन्मान्तरों की संस्कारों की वेदी पर नृत्य कर रहा है। क्योंकि यदि संस्कार नहीं होंगे तो इस मानव शरीर के बनने का और इस सम्बन्ध में रहने का मानव का कोई मूल कारण नहीं बनता। क्योंकि मानव का मूल कारण तभी बनता है जब कि कोई न कोई संस्कार अन्तःकरण में विराजमान होते हैं। शरीर में आत्मा इन्हीं से बद्ध हो जाता है **क्योंकि आत्मा तो एक चेतना है।** यह एक रस रहने वाला है। परन्तु जब आत्मा इस चक्र में आता है तो केवल चित्त के आधार पर ही आता है। क्योंकि चित्त में संस्कार बनते हैं। संस्कार के आधार पर ही इस आत्मा का चक्र बनता रहता है। तो विचार यह कि चित्त के आवागमन में जैसे एक मानव नृत्य कर रहा है और चित्त पर चित्र मानव के पटल पर परिवर्तित होते रहते हैं। जैसे कि एक मानव उत्पन्न हुआ, दूसरा चला गया। तीसरा उत्पन्न हो गया। इसी प्रकार (मानव के चित्त पर) जीव के आवागमन के चित्र आते रहते हैं। मानव बना तो केसे बन गया? कोई पशु से पक्षी बन गया। वह जीव आत्मा चारों प्रकार की सृष्टि में रमण करता रहता है। जैसे स्थावर है जैसे पटल पर एक चित्रण होता रहता है उसमें कई परिवर्तन हैं। इसी प्रकार बेटा! संसार में चित्रण होता रहता है। इसी प्रकार अन्तःकरण का भी चित्रण होता रहता है। अन्तःकरण का चित्रण उसी काल में

होता है जब कि उसमें संस्कार विराजमान होते हैं। **यदि चित्त में कोई संस्कार नहीं होंगे तो संसार के आवागमन का कारण नहीं बनता।** न कोई राजा होता है न प्रजा होता है, न पति–पत्नी होते हैं, न पिता पुत्र होते हैं। जितना भी यह जगत् बनता है, एक महाशक्ति बनती है, तो यह केवल बनती है संस्कारों के आधार पर।

जीवन (योनि) संस्कारों की देन है

संस्कार माता के प्रबल होते हैं। अन्तरिक्ष में आत्मा रमण करती रहती है तो अन्तःकरण में जिस प्रकार के संस्कार का संकलन है उसी प्रकार के माता–पिता प्राप्त हो जाते हैं। माता–पिता के मन में जैसा संकलन है उसी के आधार पर अन्तरिक्ष में से रमण करते हुए आत्मा माता–पिता के रजोवीर्य में शामिल हो जाते हैं। मुनिवरो! रज और कण का सम्बन्ध आत्मा से होता है, उससे सम्बन्धित प्राणी होता है। बेटा! बहुत पूर्व काल में अनुसन्धान करने का भी सौभाग्य मुझे प्राप्त होता रहा है। आज मैं इस सम्बन्ध में अनुसन्धान करने नहीं आया हूं। मेरे प्यारे महानन्द जी हैं, इनका कितने जन्मों का संस्कार संकलन है। किसी काल का इनका जीवन था। उस जीवन के साथ आत्मा में संस्कार मिलते चले आते हैं। इसी आधार पर मुनिवरो! देखो विचार धाराओं का भी परिवर्तन होता रहता है। इसी आधार पर जीवन की धाराएं बन करके एक रुद्र रूप धारण करती रहती हैं। तो विचार यह कि यह जो मानव का जीवन है जिससे मिलन है, एक संस्कार है।

संस्कारों से नवीन संस्कार बनते हैं और नवीन संस्कारों से पुरातन संस्कारों का भेदन होता है

संस्कारों से नवीन संस्कार बनते हैं और कहीं कहीं परम्परा के संस्कार चले आते हैं इनमें भी नाना प्रकार के भेदन होते हैं। आज मैं उन भेदों के ऊपर विचार नहीं दूंगा। परन्तु विचार यह कि **मानव का जैसा एक लोक का कर्म होता है उसी प्रकार से योनियां प्राप्त होती हैं और लोक प्राप्त होते हैं।** जैसा मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था बेटा! कि मानव के शरीर में ९ द्वार कहलाए जाते हैं ९ द्वारों से ही आत्मा इस शरीर से निकलता है। जब भी समय आता है तो ९ द्वारों से ही आत्मा इस शरीर से जाता है। परन्तु दसवां द्वार भी होता है जिसको हम ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। **ब्रह्मरन्ध्र उसे कहते हैं** जहां इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीन नाड़ियां एक होकर के चलती हैं और उनका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र में एक हो जाता है। तो किन्हीं–किन्हीं का आत्मा जो महागुणी होते हैं जो उस शरीर में महागुणीवत् को प्राप्त होते हैं, उन में किसी–किसी का आत्मा ऐसा होता है जो ब्रह्मरन्ध्र द्वार से जाता है। बेटा! **ब्रह्मरन्ध्र के द्वार से जाने वाला आत्मा सूर्य–लोक में दस दिवस तक रमण करता हुआ उसके पश्चात् वह आरुणि–मण्डल में रमण करता है। ध्रुव लोक में दस दिवस तक रमण करता है। वह ऊंचे लोकों में रमण करता है।** जहां इसे सुख और आनन्द ही आनन्द, प्रकाश ही प्रकाश प्राप्त रहता है।

शरीर त्याग के समय जिस तत्व की प्रधानता होगी, जीव उसी तत्व की प्रधानता वाले लोकों में जन्म धारण करेगा

कहीं–कहीं ऐसा भी हमारे यहां माना जाता है कि हमारे यहां जो नौ द्वार हैं इन नौ द्वारों में किसी में वायु तत्व की प्रधानता है, किसी में अग्नि तत्व की प्रधानता है, किसी में जल की ही प्रधानता रहती है। उसी प्रकार जब भी इस शरीर को त्यागा जाएगा यह आत्मा निकलेगा इस शरीर से, जिस द्वार से जाएगा, जैसा तत्व प्रधान होगा, उसी लोक को वह प्राप्त हो जाएगा। परन्तु उनमें भी अनेक धाराएं हैं, प्रकृति की गति है। प्रकृति की गति में यदि अग्नि की प्रधानता है तो नेत्रों में भारद्वाज का वास रहता है। उस समय भारद्वाज की प्रधानता होती है और यदि उसमें जल की प्रधानता रहती है तो उसमें अश्विनी कुमारों की प्रधानता रहती है। इस प्रकार इनमें भिन्नता यह है कि अग्नि की प्रधानता प्रकृति में अधिक होगी। सूर्य की गति की प्रधानता होगी। तो उस समय आत्मा यदि शरीर को त्यागेगा तो सूर्य लोकों को प्राप्त होता है। जितने भी अग्नि लोक हैं उनको प्राप्त होता रहता है। परन्तु यदि घ्राण के द्वारा जमदग्नि का वास अधिक है, जमदग्नि की प्रधानता है। जमदग्नि में भी जेठाय नक्षत्र प्रकृति के आवेशों में रमण करने वाला हो तो जब आत्मा शरीर को त्याग करके घ्राण को सूर्यस्वर के द्वार जहां जमदग्नि की प्रधानता हो, जेठाय–नक्षत्र की आभा हो, वह बाह्य लोकों को प्राप्त होने वाला आत्मा होता है।

इस पृथ्वी का जीव कर्मानुसार अन्य भूखण्डों में तथा सूर्य चन्द्रादि लोकों में जन्म धारण कर सकता है

हम इस विचार को गम्भीर नहीं बनाना चाहते। यह मैं नहीं जानता कि हम विचारों को क्यों यह कहलाने की इच्छा करते हैं? इसको तो मैं नहीं जानता। परन्तु यह बहुत गम्भीर विषय है। इस गम्भीर विषय पर चिन्तन

करना हमारा सभी का कर्तव्य हो जाता है। इस आधार पर हम स्वर विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान को जानने की उत्सुकता प्रकट करें जिससे हमारा जीवन इसके आधृत बनकर अपने जीवन की आभा को आभासित करता रहता है। जिससे हमारा अन्तरात्मा पवित्र बनता रहे। उपस्थ जो द्वार है उससे भी आत्मा जाते हैं परन्तु वह तो जीवन–मरण के ऐसे आंगन में रहते हैं कि उनका एक क्षण में जीवन है, एक क्षण में मरण है। अन्य लोकों में भी यह आत्मा रमण करने वाले होते हैं। परन्तु यह निश्चय नहीं होता कि इस सृष्टि में पृथ्वी का आत्मा जाने वाला इसी पृथ्वी पर आएगा, ऐसा निश्चय नहीं है। ऐसा न तो नियम है, न सिद्धान्त है।

अन्दर (अन्तःकरण के द्वारा) प्रकाश का अनुभव करने वाले व्यक्ति पुण्यात्मा होते हैं

परन्तु यह तो बेटा! **मानव का आत्मा जाने के समय जो मानव का अन्त विचार होता है उसी प्रकार के विचारों के साथ में यह आत्मा का आवागमन, इसकी धाराएं प्राप्त होती रहती हैं।** जो आत्मा इस संसार में उदासीन होते हैं यह अपने लोकों में बहुत समय तक वास करते हैं। जब भी वे सुख का अनुभव करते हैं और अन्दर प्रकाश का अनुभव करते हैं। अन्दर प्रकाश का अनुभव करने वाला जो होता है वे पुण्य आत्मा होता है। उनका जीवन सदैव महत्ता में रमण करने वाला है। तो मैं इस सम्बन्ध में अधिक विचार नहीं दूंगा क्योंकि यह तो विशाल विज्ञान है।

द्रव्य का सदुपयोग करें और जीवन में महत्ता लाएं

परन्तु विचार केवल यह कि हम सदैव अपने से उदासीन रहने का प्रयास करें। आज के संसार में तथा इससे पूर्व के काल में भी यह कर्मों का चक्र है। क्योंकि संसार में जो याज्ञिक पुरुष होते हैं, यज्ञ करने वाले पुरुष होते हैं और यज्ञ की महत्ता को जानते हैं, उसके लिए जो द्रव्य एकत्रित किया जाता है उसका सदुपयोग करते हैं उनके जीवन में आभा एक महान् होती है। वह संसार से उदासीन होने का प्रयास करते हैं। क्योंकि उनकी उदासीनता उनके याज्ञिक जो कर्म हैं उनमें द्रव्य का दुरुपयोग नहीं होता। क्योंकि बहुत से उदाहरण इस प्रकार के हमारे जीवन में आते हैं। बहुत से क्रियात्मक भी जीवन में दृष्टिपात किए गए जो द्रव्य का दुरुपयोग करते हैं, उनके जीवन का पुण्य होता है वह नष्ट हो जाता है। उनकी आभा नष्ट हो जाती है। प्रायः इस संसार में ऐसा दृष्टिपात होता है। परन्तु जब वह आवागमन के इस प्रकृति के आवेश में आते हैं उस समय उनका अन्तरात्मा उन योनियों को प्राप्त होता है तो उस समय यह प्रतीत होता है। उस समय इन वाक्यों का अनुभव करते हैं कि वास्तव में हमारा जीवन तो सार्थक नहीं हुआ, निरर्थक बन गया। हमारे जीवन में प्रकाश जो हुआ वह अन्धकार ही बन गया। ऐसा उन्हें प्रायः अनुभव होने लगता है। तो इसीलिए मैं यह विचार देने आया हूं पुत्र! संसार में जैसा मैंने इससे पूर्व शब्दों में कहा कि द्रव्य का सदुपयोग और मानवीय जीवन में महत्ता को लाने का प्रयास हम करना ही चाहते हैं वह तो मानव का मौलिक गुण है और वह आत्मा की पिपासा है।

यज्ञ के द्वारा मानव की ऊर्ध्वगति होती है

जब एक मानव शरीर को नाना प्रकार से संवार लेता है, सजातीय बनाता है, परन्तु कोई काम ऐसा भी करता है जब आत्मा भी पिपासु होने लगता है। आत्मा को तृप्त करने के लिए, मानव, इस संसार में द्रव्य के द्वारा उस आत्मा को तृप्त किया जाता है और द्रव्य के द्वारा आत्मा को कैसे तृप्त किया जाए? यज्ञ करो और ऊंचे–ऊंचे महान कर्म करो। द्रव्य का जो सदुपयोग है उसके द्वारा किए गए जो कर्म हैं वह मानव की आभा को उर्ध्वगति को ले जाने वाला पात्र होता है।

ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज का पूर्व जन्म में महाराजा अश्वपति के पुरोहित होने का वृतांत

मुझे बहुत समय हुआ जब मैं बेटा! अश्वपति के यहां मुझे पुरोहित रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तो महाराजा अश्वपति के यहां सबसे प्रथम जब यज्ञ होने लगे तो एक महामन्त्री थे। उनका जीवन ऐसा स्वर्णमय कहलाया जाता था कि उन्होंने अपने मन में किसी काल में प्रतिज्ञा की, प्रतिज्ञा ऐसी होती थी जैसे प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है और वह अन्त नहीं होता था। वह जो संकलन होता था उस संकलन के आधार पर मानव के अन्तःकरण की धारा बनती रहती थी। परन्तु जब वह किसी काल में मेरे समीप आते तो बहुत समय तक चर्चाएं उनसे आगे के सम्बन्ध में चलती रहती। वह प्रश्न करते रहते, उत्तर देते रहते। परन्तु अन्ततः उत्तरों और प्रश्नों का परिणाम यह होता कि दोनों संतुष्ट हो जाते। क्योंकि राष्ट्र का बहुत दायित्व होता है। मन्त्री बहुत विचारशील होता है। क्योंकि यदि राष्ट्र में मन्त्री ऊंचा और विचारक नहीं होगा तो राष्ट्र का अपना कोई प्राण नहीं होगा।

क्योंकि हमारे ऋषि–मुनियों ने ऐसा कहा है कि राष्ट्र में मन्त्री ही राष्ट्र का प्राण होता है। परन्तु यदि राष्ट्र का प्राण ऊंचा होगा तो राष्ट्र का श्वांस विलक्षण बनता रहेगा। इसी प्रकार जैसे मानव के शरीर में प्राण अपना कार्य करता है। जब प्राण क्षीण हो जाता है तो मानव रुग्ण हो जाता है। इसी प्रकार राष्ट्र में मन्त्री होता है। जिसका मस्तिष्क बहुत विशाल होता है। बहुत विशाल हृदय से राष्ट्र के सम्बन्ध में विचारता रहता है और उसके आश्रित सदैव कार्य करता रहता है।

प्राकृतिक विज्ञान ऋत् है और ऋत् के द्वारा सत् को जाना जाता है

परन्तु जब आत्मा की पिपासा आती है तो आत्मा को भी भोजन मन्त्री देता है। आत्मा का भोजन क्या है? यह मैंने बहुत पूर्व काल में कहा। एक समय महामन्त्री ने प्रश्न किया महाराज! मैं यह जानना चाहता हूं आत्मा का भोजन क्या है? उस समय उत्तर दिया कि **आत्मा का भोजन यज्ञ है।** उन्होंने कहा यज्ञ का भोजन क्या है? उस समय उत्तर दिया यज्ञ का जो भोजन है वह कर्म है। उन्होंने प्रश्न किया कि कर्म का भोजन क्या है? तब यह कहा गया कि कर्म का भोजन है सत् उन्होंने प्रश्न किया कि सत् का भोजन क्या है? उन्होंने उत्तर दिया कि सत् का भोजन ऋत् है। उन्होंने प्रश्न किया कि ऋत् का भोजन क्या है? उन्होंने उत्तर दिया कि ऋत् का भोजन चेतना है। मानो चेतना नहीं होगी तो विराजमान अन्न को मानव पान नहीं करेगा। अन्न तो चेतना है। आत्मा को ऋत् कहा गया है। **''ऋत् कहते हैं प्रकृति के विज्ञान को।''** अर्थात् जितना प्राकृतिक विज्ञान है उसे ऋत् कहते हैं। यदि चेतना है तो ऋत् को हम जान सकते हैं और मानो यदि ऋत् है तो सत् को हम जान सकते हैं क्योंकि सत् का जो निर्णय होता है वह उच्च विचार से होता है। सत का ब्रह्म में प्रमाण मानो ''सत्यम् ब्रह्म व्यापः यज्ञः,'' क्योंकि यदि सत् होगा तो यज्ञ का सत् विचार होगा। **''यज्ञ कहते हैं विचार को, यज्ञ कहते हैं सुगन्धि को।''** सुगन्धि विचार की भी होती है, पदार्थों की भी होती है। जब हम विचारों की सुगन्धि देते हैं तो क्या आनन्द आता है। बेटा! उस आनन्द में मानव विभोर हो जाता है।

आत्मा के भोजन यज्ञ के द्वारा आत्मा सन्तुष्ट होता है

एक ब्रह्मचारिणी माता अपने पुत्र को शिक्षा देती है, कहती है, मेरे पुत्र! तू मेरा बालक है, तू मेरे गर्भाशय को विशाल बना। विशाल कैसे बनेगा? जब माता का प्रिय विचार सुगन्धि युक्त होगा। हृदय का विचार होगा। पुत्र जब हृदय के विचार को श्रवण करेगा तो वह बालक यज्ञ करने वाला होगा। क्योंकि **आत्मा का भोजन यज्ञ है।** तो यज्ञ करना, विचार सुन्दर बनाना, इससे आत्मा सदैव तृप्त होता रहता है, जब आत्मा तृप्त होता है तो **आत्मवत्** बनता रहता है मानव। क्योंकि जैसे शरीर को सजातीय बनाया जाता है, मन को गम्भीर विचारों के यज्ञ के सहित आत्मा को तृप्त किया जाता है। जब संसार में सुगन्धि होती है, तो उस समय द्रव्य होने लगता है।

सुयोग्य गुरु की प्राप्ति से राष्ट्र, समाज, परिवार तथा व्यक्ति का कल्याण हो जाता है

मैं इन विचारों को अधिक देना नहीं चाहता हूं। पुत्रवत् अब तुम कुछ सूक्ष्म विचार देने वाले थे। तुम्हारा कोई विचार हो तो समय का परिचय दे सकते हो। अधिक समय नहीं। मैं बेटा! महामन्त्री की चर्चाएं प्रकट कर रहा था। महामन्त्री यह कहा करते थे कि महाराज! मैं यह चाहता हूं कि यदि मेरा शरीर का निधन हो तो मैं निधन ऐसा चाहता हूं कि सुयोग्य गुरु के द्वारा मेरा निधन हो। क्योंकि जब सुयोग्य गुरु मानव को प्राप्त हो जाते हैं, आत्मवेत्ता प्राप्त होते हैं, तब उससे मानव का शुभ कल्याण होता है। ऐसा जब प्रकट करते हैं प्रजापति तो सदैव सदाचार की तरंगें राजा के राष्ट्र में होने से राजा का राष्ट्र प्रिय होगा, महान् होगा। वह गृह तथा समाज ऊंचा होगा। तो मैं आत्मा की चर्चा कर रहा था। आत्मवत् जब मानव एक दूसरे को इस प्रकार का भोजन देता रहता है ''तब ऋत् के द्वार से चेतना सत् हो जाती है, तो वह आत्मा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।'' वह जब इस शरीर को त्यागता है तो उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। वह आनन्द से इस शरीर को त्याग कर चला जाता है और जहां उनका ऊंचा कर्म है, उसी कर्म के आधार पर उसको योनियां प्राप्त होती रहती हैं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपना संक्षिप्त विचार प्रकट करेंगे।

पूज्य महर्षि–महानन्द जी के उद्‌गार

माता–पिता और गुरुजनों के समीप व्यक्ति को अहंकार त्याग कर विनयी बनकर जाना चाहिए

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं सदैव अपनी कोई न कोई नवीन चर्चा आपके समक्ष लाता ही रहता हूं। क्योंकि हमारे यहां एक परम्परा से नवीन विचार चला आता है। यदि बालक माता के द्वार में जाए तो मूर्ख बनकर के जाना चाहिए। क्योंकि माता अपने प्यारे पुत्र को योग्यता प्रदान कर देती है। शिष्य जब गुरु के समीप जाता है तो वह भी विनम्र समर्पित होकर जाता है और वहां से कुछ प्राप्त कर के आता है। यदि अभिमान और विडम्बना से जाता है तो वहां से कोई वस्तु उसे प्राप्त नहीं होती। तो इसीलिए मैं पूज्यपाद गुरुदेव के समीप आता रहता हूं। चर्चाएं होती रहती हैं। संसार का चक्र चलता रहता है। हमारी यह जो आकाशवाणी है यह मृत मण्डल में जा रही है।

प्रत्येक घर में बाबू अमृत लाल जी बस्सी के तुल्य पुण्य आत्माओं का जन्म हो

भगवन्! मैंने आपको इससे बहुत पूर्व काल हुआ जब कुछ पुनीत आत्माओं के सम्बन्ध में चर्चाएं प्रकट की थी। आज मैं वाक्यों की पुनरुक्ति तो नहीं करूंगा। परन्तु केवल यह उच्चारण करने आया हूं कि संसार में प्रत्येक गृह में ऐसी पुनीत आत्माओं का जन्म होता रहे तो गृह सुन्दर बन सकते हैं। विचारों में व्यापकता आ सकती है। परन्तु जब यह आत्मा पृथ्वी मण्डल से सूर्य मण्डल को गमन करती है तो उसका कितना सौभाग्य होता है। उसके विचारों में व्यापकता, महत्ता होती है। आत्मा चक्षु के द्वार से जाता है, भारद्वाज की जिसमें प्रधानता हो तो उसकी यह उज्ज्वलता है। रहा यह प्रश्न कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का शिष्य इस मृतमण्डल के प्राणियों को जानता है। यह तो एक ऐसा विषय है जिस विषय के सम्बन्ध में मैं कोई विवेचना नहीं दे सकता। क्योंकि किस–किस का मानव सांसारिक उद्‌बुद्धता प्रकट कर सकेगा।

किसी पूर्व जन्म में ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज और उनकी माता का संक्षिप्त वृतांत

मैंने इस पुनीत आत्मा के सम्बन्ध में कुछ विवेचना प्रकट की थी। प्रकट केवल यही कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब ब्रह्मचर्य आश्रम में थे तो माता श्रेयधेनु ने यह जो महाराजा शाकल्य मुनि महाराज की पौत्री थी यह आज्ञा दी कि पुत्र तुम्हें १४८ वर्ष की आयु तक इस आश्रम से दूरी नहीं जाना, कजली–वनों से दूर नहीं जाना है। जब यह आज्ञा दी गई तो उस समय पूज्यपाद गुरुदेव यज्ञ के सम्बन्ध में, वृष्टि यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत चिन्तन करते थे। परन्तु जब अकाल पड़ा संसार की गति बन गई। राजा के यहां अन्न प्राप्त न होता, न वृष्टि होती, न वनस्पतियों का जन्म होता। तब ब्राह्मणों ने यह विचार बनाया, कजली वनों में आये। निवेदन किया कि महाराज राजा के यहां वृष्टि यज्ञ कीजिए। उन्होंने कहा कि माता की आज्ञा नहीं है। माता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा। परन्तु उस माता ने मुझे अपने गर्भ–स्थल में सुशील बना दिया। उस माता के वचन का मैं पालन अवश्य करूंगा। माता का यदि वचन दुष्ट व्यवहार का हो तो मुझे वह पालन नहीं करना चाहिए। परन्तु जब मेरे आत्म–कल्याण के लिए ही ऐसा आदेश है तो मैं उसको अवश्य स्वीकार करने के लिए आया हूं, और करूंगा। राजा से कहो कि वह आएं और यज्ञ करें। परन्तु ब्राह्मण इससे असन्तुष्ट हो करके राष्ट्र गृह में पहुंचे। तो उस समय राजा बृहीक ने कहा कि महाराज ब्राह्मणो! क्या हुआ? उन्होंने यह कहा महाराज ब्रह्मचारी ने यह कहा है कि मैं माता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। परन्तु राजा शान्त हो गए।

श्री बस्सी जी ने पूर्व जन्म में पत्नी सहित कजली वन में जाकर वृष्टि यज्ञ के यजमान पद को सुशोभित किया

कुछ ऋषिजन कहने लगे कि महाराज यज्ञ करो। उन्होंने कहा सामग्री एकत्रित की जाए। तो सामग्री एकत्रित की गई। जब एकत्रित की गई तो बहुत सूक्ष्म सामग्री एकत्रित की गई। क्योंकि जब वनस्पति नहीं थीं तो साकल्य रूप से सामग्री कहां से एकत्रित होती? तो उस समय यजमान का प्रश्न उत्पन्न हुआ। यजमान कौन आए? वह तो वन था। तो कहीं से यह पुनीत आत्मा जिसका मैंने वर्णन किया वह अपनी पत्नी के सहित व्याकुल थी। क्षुधा से व्याकुल वह कजली वनों में भ्रमण करते रहे। उस समय मेरे पूज्यपाद ने कहा कि यजमान का आसन उनको प्रदान किया जाए। यजमान ने कहा भगवन्! मैं और मेरी पत्नी प्राणों के इच्छुक हैं। प्राण प्राप्त हों। तब हमारे प्राणों की रक्षा होगी जब अन्न प्राप्त होगा। उस समय एक वृक्ष ऐसा कजली वन में था जिसको **स्वादिष्ट वृक्ष** कहते हैं। उसकी छाल पूज्यपाद पान करते थे। छाल को लाया गया और उसका पंचाँग बनाया। यजमान को पान कराते ही प्राणों की रक्षा हो गई। यजमान बन गए। जब यजमान बने तो उन्होंने पवित्र वृत्तियों से जब यज्ञ किया तो प्रातः से लेकर के सायं तक यज्ञ हुआ। सूर्य उदय होने से प्रारम्भ हुआ और सूर्य अस्त होने

के पश्चात् वह यज्ञ समाप्त हो गया। जब यज्ञ समाप्त हुआ, वृष्टि प्रारम्भ हो गई। वनों में एक आनन्द छा गया। जब यज्ञ करने से वृष्टि होने लगी तो राजा का राष्ट्र आनन्दित हो गया, लहलहाने लगा। वनस्पतियां अपने–अपने आंगन में एक सुन्दरता की छाया प्रदान करने लगीं।

श्री बस्सी जी पूर्वजन्म में श्रीमान् महाराज रोहिणी–केतु के सुपुत्र थे और पूज्य ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के सत्संग में पूरे एक वर्ष रहे थे

उस समय जब यज्ञ समाप्त हुआ तो यजमान ने कहा भगवन्! मैं कुछ समय तक आपके आश्रम में वास करना चाहता हूं। उन्होंने कहा वास तो कर सकते हो परन्तु मैं माता की आज्ञा चाहूंगा। मैंने यज्ञ करने की तुम्हें आज्ञा प्रदान कर दी। मैं यह नहीं जानता हूं। इसको मेरी माता आज्ञा दे सकती हैं। उस समय जब माता से कहा तब उन्होंने (माता ने) कहा तुम आश्रम में वास कर सकते हो। उन्होंने वास किया तो लगभग एक वर्ष तक वास किया। एक वर्ष तक वह अपने सुन्दर दिव्य प्रभु का चिन्तन करते रहे। मैंने उन्हें कहा था 'अच्छा' बहुत सुन्दर, तुम्हारा जीवन संसार में बहुत ही प्रिय हो और तुम अपने विचारों से बहुत ही महान् हो। तो उस समय माता ने और जीत ऋषि ने यह कहा कि तुम्हारा जीवन जन–गण मात्र तक के लिए अखण्ड हो। सहचरी के साथ तुम्हारा दोनों का जीवन अखण्ड बना रहे। ऐसा ऋषि ने आशीर्वाद दिया। तब मुनिवरो! देखो, उनके जीवन की धारा प्रारम्भता में रही, अखण्डता में परणित रही। वहां उन्होंने अपना वास किया। महाराजा रोहिणी केतु नाम के राजा थे, उनके वे पुत्र कहलाते थे। क्योंकि उनके पिता ने किसी द्वेष के कारण उन्हें गृह से पृथक् कर दिया था। पृथक् करने के पश्चात् जब उनका समय पूर्ण हो गया तो वे पिता के गृह में आ गए। गृह में उनका वास हो अतः उन्होंने अपने पिता को सब वार्ता प्रकट कराई। पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा धन्य हो। ऐसे ब्रह्मचारियों के यहां जिनका जीवन सदैव यज्ञ में रमण करने वाला विचारणीय यज्ञमय हो धन्य हो। तब जीवन की धाराएं प्रारम्भ होती रहीं।

बस्सी जी का पुण्यात्मा 284 वर्षों तक सूर्य–मण्डल में रहने के पश्चात चन्द्र–मण्डल में जन्म धारण करेगा

ऐसा पुनीत आत्मा जिनका जीवन जन्म–जन्मान्तरों से स्वभावतः ही पवित्र रहा हो ऐसी पुनीत आत्मा के सम्बन्ध में जिनका आत्मा २८४ वर्ष तक सूर्य लोक में आनन्द को प्राप्त करने वाला होगा। तो मेरा आत्मा तो सदैव प्रसन्नता में रहता है। धन्य है, कितने उच्च विचार हैं माता के। क्योंकि कि यह भी उनकी एक कल्पना है। उस माता के गर्भ से उसका जन्म चन्द्र मण्डल में एक रेहेकृति नाम का एक स्वातिक है स्वातिक माता के गर्भ से उस आत्मा का वास होगा। क्योंकि उनकी चन्द्र विद्या पर ही इस समय साधना जाग्रत होती है। क्योंकि सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा जिसमें अग्नि तत्व की प्रधानता हो तो पार्थिव तत्व जैसा मंगल मण्डल में उनका आत्मा वास करने वाला हो। हम इस वाक्य को कैसे उच्चारण कर सकते हैं? हम कैसे यह उच्चारण कर रहे हैं? यह प्रश्न मेरे भी मस्तिष्क में आ रहा है। परन्तु यह विचार क्योंकि वे जो लक्षण होते हैं आत्मा के और इन्द्रियों के, जिस आत्मा को जाना है उसके लक्षणों से सर्वत्र इसका निर्णय एक महान् यौगिक आत्मा के लिए उसका वर्णन करना कोई आश्चर्य नहीं होता। संसार के प्राणियों के लिए यह आश्चर्य होता है। क्योंकि वह उस विद्या को जब नहीं जानते तब उनका दर्शनवेत्ता यह उच्चारण कर देता है कि यह वेद के विरुद्ध है। क्योंकि वेदों का अध्ययन जब गम्भीरता से नहीं होता, तो उस विषय को जो मन के अनुकूल नहीं उसे वेद के विरुद्ध उच्चारण कर देते हैं। परन्तु इनमें बहुत सा भेदन है तो मैं उस विचार पर नहीं जाना चाहता हूं।

पुण्यात्मा बस्सी जी के पुत्रादि को पूज्य महानन्द जी का उपदेश

विचार केवल यह है कि मैं पुनीत ब्रह्म व्यापः क्योंकि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से इन वार्ताओं के ऊपर टिप्पणियां सदैव चाहता रहता हूं। मैं भी इन पर टिप्पणियां करता रहता हूं। सदैव मैं यह चाहता हूं कि सदुपयोगी आत्मा जिन्होंने अपने द्रव्य का कदापि भी दुरुपयोग नहीं किया उनके रक्त से होने वाली जो संतति है उनके लिए चाहिए कि वह अपने द्रव्य का दुरुपयोग न करें। सदैव जो ऐसी पुनीत भावना है सुख और आनन्द उसी में प्राप्त होता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक काल में वार्ता प्रकट की जिससे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ क्योंकि द्रव्य जो होता है उसे लक्ष्मी कहते हैं और लक्ष्मी जो होती है वह उस प्रभु की अर्धांगिनी होती है और प्रभु अर्धांगिनी का निरादर होता है जहां मानो प्रभु नहीं रहते और जहां प्रभु का निरादर होता है वहां लक्ष्मी नहीं रहती। दोनों का वास समाप्त होता रहता है। मानो एक स्थान में प्रभु का चिन्तन है और लक्ष्मी का भी पूजन है तो वहां सर्वत्र

सम्पदा है, आनन्द है और जहां प्रभु का दुरुपयोग किया जाए, प्रभु को ठुकराया जाए, लक्ष्मी का दुरुपयोग किया जाए, तो वह कितने समय तक रह सकती है? कुछ ही समय के पश्चात् खण्डहरों के रूप में वे गृह दृष्टिपात आने लगते हैं। संसार में प्रायः ऐसा ही दृष्टिपात किया गया कि जिन मानवों ने लक्ष्मी का दुरुपयोग किया है, उन मानवों का जीवन निराशा में परणित हो गया। अधिक दुरुपयोग विनाश को प्राप्त हो गए। व्यवहारों में जब दूरिता आ जाती है तो उनका जीवन समाप्त होने लगता है।

उनको चाहिए कि वे पूर्ण अहिंसक बनें

मैं सदैव यह कहा करता हूं कि आत्मा जिस गृह में से जाती है उसमें रहने वाला जो समाज है वह हिंसक न बने। जिनका विचार सदैव अहिंसा में रहता था आज उनके गृह में रहने वाला जो समाज है उनका जीवन जैसे मांस जैसे पदार्थों का भक्षण करने वाला प्राणी, दूसरे के रक्त को पान करने वाला प्राणी अपनी आत्मा में हृदय की शुद्धता को नष्ट कर देता है। इसलिए सदैव मैं यह चाहता रहता हूं क्योंकि बहुत अनुसन्धान किया गया। मैं दर्शनों के आधार पर यह वाक्य उच्चारण कर रहा हूं, कुछ मेरी भी टिप्पणियां अपनी हैं और वह यह कि, अनुसन्धान यह है कि संसार में **जो मानव दूसरों को प्राण नहीं दे सकता है तो उसे प्राण को हनन करने का, भक्षण करने का अधिकार जगत् में नहीं होता।** यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई समय उच्चारण किया। मैं भी इस वाक्य को देता रहता हूं तो मेरी सदैव यह आकांक्षा रहती है जिनका जन्म–जन्मान्तरों का संस्कार व्यापक चला आ रहा है। जिनका जन्म जन्मान्तरों से **ऋषि–मुनियों के आर्शीवादों से जीवन की प्रतिभा चली आ रही है** उनका पुनीत आत्मा इस शरीर को त्याग करके सूर्य लोक को गमन करने वाला हो। आज उनके समीप उनका गृह, उनका जीवन, उनका कर्म कितना सुन्दर हो सकता है। इसके ऊपर हम विचार नहीं करते हैं।

शुभ और सात्विक कर्मों से गृह स्वर्ग बनें। कर्म के आधार पर मानव की गतियां होती हैं

अपने विचार प्रकट करते हुए उच्चारण किया करते हैं कि सदैव कर्म करने वाले संसार में प्राणी हों। प्रत्येक गृह स्वर्ग की आभा में रमण करने वाले हों। मैं जो उच्चारण करने आया हूं 'अन्तम् ब्रह्म' जो विचार हैं उसके आधार पर मानव की गतियां प्रारम्भ होती हैं। तो उसके साथ मैं अपने विचार को समाप्त करने जा रहा हूं। यह विचार मुझे अधिक नहीं देना है। यह नौ द्वारों का एक विशाल विज्ञान है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस पर विचार देते रहेंगे। आज का यह विचार समाप्त है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरूदेव

धन्य हो...

बेटा! तुमने बहुत प्राचीन परम्परा का काल उच्चारण किया। इसको मैं नहीं जानता कि आज तुमने साहित्य क्यों प्रकट किया? यह आज का साहित्य बहुत पुरातन परम्परा का है। परन्तु कोई बात नहीं। अब बेटा! यह वाक् समाप्त होने जा रहे हैं। आत्मा का तो गमन चलता ही रहता है। **न तो कोई जाता है न आता है।** मानो यह चक्र चलता रहता है। इसके साथ–साथ यह विचार समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः। **दिनांक : 2–जून–1972**

समय : रात्रि 9 बजे।

स्थान : 38, जोरबाग, नई दिल्ली।

७. वेदों के उदगीत २ अगस्त १९७१

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद –मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ जो पठन–पाठन का क्रम होता है वह विचित्रता में परिणत किया गया है। हमारे यहाँ वैदिक परम्परा में क्या है? यह प्रायः मानव के मस्तिष्क में, मेरे प्यारे! ऋषि के मस्तिष्क में भी यह विचार प्रायः आता रहता है। जब हम यह विचारने लगते हैं। कि वेदों में है क्या? तो इसके ऊपर मानव की बहुत उत्तम–उत्तम टिप्पणियां और विचार–विनिमय भी होता रहता है। हमारे यहाँ महर्षि मुदगल जी ने बहुत अनुसन्धान किया और महर्षि दधीचि और महात्मा जमदाग्नि जी ने भी बहुत ही अनुसन्धान किया और भी नाना ऋषिवर जैसे महर्षि भारद्वाज

जिन्होंने अपने जीवन के जीवन को अनुसन्धान की वेदी पर समाप्त कर दिया। जैसे अश्वनी कुमारों का आयुर्वेद के ऊपर बहुत अनुसंधान रहा है। आज हम उन वाक्यों को विचार–विनिमय करने वाले बनें कि हमारा जो वैदिक–साहित्य है अथवा वैदिक विचार है इसका अनुकरण करना, विचारना यह हमारा एक परम कर्त्तव्य होता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर आज हम उस परम कर्त्तव्य को जानने के लिए तत्पर हों, जहां मानव के मस्तिष्क को अपनी यज्ञवेदी, विचार–विनिमय करने वाली एक वेदी बनानी है। विचारकों का विचार उनकी धारा, उनकी मानवीयता उनके द्वारा परिणत होनी चाहिए।

वेद अनुपम प्रकाश

आज हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था? 'वेदज्ञ प्रकाशः' वेद तो अनुपम प्रकाश है और कैसा महान प्रकाश है? वेद का जो रसिक होता है, वेद का जो प्रकाशक होता है उस मानव के जीवन में अन्धकार नहीं होता, मानवता होती है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई कालों में विज्ञान की चर्चा प्रकट की, चन्द्रमा की, मंगल और बुध इत्यादियों की चर्चा परन्तु मैं उन विचारों पर तो जाना नहीं चाहता। विचार–विनिमय केवल यह है कि आज हम ऐसे सुन्दर–सुन्दर अविष्कार वेदों के माध्यम से करने लगते हैं कि हमारा मस्तिष्क चकित हो जाता है। वेदों में भिन्न–भिन्न प्रकार की विद्या है। संसार में जितना भी विद्यावाद हैं प्रकाश है वह वेदों की ही प्रतिभा है।

उदगीत

वेद हमारे यहां गान रूपों में गाये जाते हैं ऐसा क्यों है? क्योकि संसार में प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने स्थान पर गान गा रहा है, एक दूसरे से मिलान करता है उसी को हमारे यहां उदगीत कहते हैं। जैसा मैंने पूर्वकाल में प्रकट किया। सूर्य का मिलान पृथ्वी से होता है, वह भी अपना उदगीत गा रहा है उदगीत कहते हैं उ और गै मानो दोनों का समन्वय करने के पश्चात उदगीत हो जाता है, उदगीत का अभिप्राय "गीतम् ब्रह्म"। गीत का अभिप्राय क्या है? **जो मानव के हृदय से भावनाएं और तरंगें उत्पन्न होती हैं हमारे यहां उसे उदगम कहते हैं। इसी को उदगीत कहा जाता है** रहा यह वाक्य कि "गामम् ब्रह्मे लोकः गात्राणि छन्दः" क्योंकि छन्द और गायत्री सभी गान के रूपक होते हैं इसीलिए जैसे उनका सम्बन्ध हो उन सब लोंकों से, पदार्थों से होता है जैसे अग्नि यज्ञशाला में प्रदीप्त होती है अग्नि का द्यु का और समिधा का दोनों का मिलान हो करके उदगीत हुआ करता है। सामग्री का स्वाह देते हैं तो अग्नि में एक महान प्रदीप्तपन आ जाता है क्योंकि वह एक गान है गान का अभिप्राय है जो गाया जाता है। **दो वस्तुएं हैं दोनों का मिलान करने का नाम ही उदगीत कहा जाता है।** तो आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम उदगाता बनें, उदगीत गाने वाले बनें और अपनी मानवीय प्रक्रिया को ऊँचा बनाने का प्रयास करें।

आत्मवेत्ता

मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि संसार में मानवीयता की सदैव आवश्यकता होती है। मैं यह कहा करता हूँ कि मानवीयता की आवश्यकता होती ही है उसमें एक महान जो ज्ञान होता है, इस ज्ञान की जो प्रतिभा होती है उसका भी आत्मा में प्रकाश होना बहुत अनिवार्य है और उस प्रकाश को विचार–विनिमय करने वाला आत्मवेत्ता कहलाता है। वह मानवीयता में विचारक होता है, मन के ऊपर उसका अनुसन्धान होता है, अनुकरण होता है, मन की प्रक्रिया को जानना भी एक मानव का कर्तव्य है, मन की प्रक्रिया को जानने से मानव एक विशाल वैज्ञानिक बन जाता है।

मन की तरंगे क्या–क्या करती है और कहां से इन तरंगों को उदबुद्ध किया जाता है? ऋषि कहते हैं "मनः ब्रह्म लोकः प्रवेः अस्वन्ति पृथ्वी वसुन्धरा भ्रवे कृति रूद्रोंः" ऐसा आचार्य कहता है। ऋषि कह रहा है कि जहां माता वसुन्धरा अपने अकृतम वेगों से एक सुन्दर प्रतिभा उत्पन्न करती है उस प्रतिभा के साथ में मन की प्रतिभा का जन्म होता है। उस मन के आधार को लेकर के जैसा देवऋषि नारद मुनि को महाराजा संत कुमार ने कहा था। महाराजा संत कुमार ने कहा कि "अन्न ब्रह्मे कृत प्रवा" देखो! अन्न की प्रतिभा को विचार–विनिमय करना है और अपने मानवीयत्व को इस प्रकार विचार–विनिमय करना है जिससे जीवन की प्रतिभा एक महानता में परिणत हो जाए।

उत्तम राष्ट्र

मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं अपने महानन्द जी को पुनः भी समय प्रदान करूंगा क्योंकि इन्हें एक विज्ञान की प्रतिभा का विचार देना है, जिसको मैं भी स्वयं श्रवण करना चाहता हूं। ''सम्भूलम् प्रवे अकृतम लोकः'' कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचारों का उद्‌गार देते हुए कहा था कि राष्ट्रवाद को , अपने जीवन को विचारना है। राजा जब राष्ट्र का नियम ब्राह्मणों के द्वारा बनाता है तो मानव के चरित्र का विचार होना चाहिए। चरित्र को ऊंचा बनाने के लिए तत्पर होना चाहिए। द्वितीय अंग राष्ट्र का धर्म होना चाहिए और तृतीय अंग राष्ट्र का पालन पोषण होना चाहिए जिससे राजा के राष्ट्र में अजीर्ण न हो करके उस राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रांति की उद्‌बुधता न आ जाए। ऐसा महानन्द जी ने कल के शब्दार्थों में कहा था। मैं आज फिर उन वाक्यों को पुररूक्ति देना नहीं चाहता हूँ। एक वाक्य यह भी कहा था कि राष्ट्र में रूढ़िवाद नहीं होना चाहिए। रूढ़िवाद जहां होता है वहां राष्ट्रीयता का विनाश होने लगता है, वहां एक दूसरा मानव सहकारिता में परिणत नहीं हो पाता। इसीलिए हमारे रूढ़िवाद को नष्ट करना यह राजा को सबसे प्रथम ब्राह्मणों की अनुमति लेकर के कार्य करना चाहिए। ऐसा मेरा परम्परा से विचार रहा है। मुझे वह वाक्य स्मरण आते रहते हैं।

गुरूडमवाद रूढ़ि है

जब कोणवुत राजा के यहाँ सुमनेतु नाम का ऋषि प्रतिष्ठा में चला गया, वैदिक परम्परा को त्यागना उसने प्रारम्भ कर दिया। उस पर टिप्पणियां प्रारम्भ न करने से वह गुरूडमवाद में परिणत हो गए। जब गुरू के अप्रतम गुरू शिष्य की प्रणाली में मानव चला जाता है और उसमें प्रतिष्ठा का विचार हो जाता है। उस प्रतिष्ठा के गर्भ में रूढिवाद होना है और वह रूढिवाद राष्ट्र के विनाश का कारण बन जाता है । धर्म की परम्परा को नष्ट कर देता है। राजा ने उसी समय ऋषि से प्रार्थना की कि महाराज आप ऐसा न करें। उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न था। परन्तु राजा ने अपने राष्ट्र से दूरी कर दिया और यह कहा कि मेरे राष्ट्र में तुम्हारा कोई कार्य नहीं, या तो तुम बुद्धिमता से कार्य करो, अन्यथा मेरे राष्ट्र से दूरी हो जाओ क्योंकि मेरे राष्ट्र में तुम्हारे इस अज्ञान से अन्धकार आएगा। आगे चल करके शिष्यों में आएगा और मेरे राष्ट्र की जो परम्परा है उसका विनाश हो जाएगा। ऐसा राजा ने किया, जो मनु परम्परा में हुए।

ऋषि परम्परा

आज मैं उन वाक्यों को पुनरूक्ति नहीं चाहता हूँ। वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हमें विचार–विनिमय करना है, अनुसन्धान करना है, विचारक बनना है और अपनी ऋषि परम्परा को अपना करके ही राष्ट्रवाद के और समाज के प्रति हमें कल्याण की भावना को विचार–विनिमय करना है। जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे प्रकट कराते हुए कहा था कि संसार में, राष्ट्र में और छात्रबल में भी मानवता होनी चाहिए। **जब राष्ट्र में, छात्रबल में अज्ञानता क्रांति आने लगती है तो छात्रबल राष्ट्र का विनाश करती है।** अपनी बुद्धि का विनाश कर देती है। बुद्धिमता के साथ जो क्रांति होती है वह महान क्रांति होती है और राष्ट्र की स्थापना करती है, बुद्धि की स्थापना करती है और सदाचार की स्थापना करती चली जाती है। इसीलिए हमें इन वाक्यों को विचार–विनिमय करना है। मैं यह कहाँ करता हूँ कि संसार में वास्तव में जीवन में एक कृत्य होना चाहिए जिससे मानव के जीवन में एक महानता की धारा हृदय से उदगीत गाती चली जाऐ। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी बडे उत्सुक हो रहे हैं। यह सदैव लालयित रहते हैं अपने वाक्यों को प्रकट करने के लिए। इनकी बड़ी उत्कट इच्छा होती है कि मैं भी सभापति बनूं। ऐसा इनका विचार प्रायः रहता रहा है। आज पुनः से इनको समय प्रदान किया जा रहा है।

पूज्य महर्षि महानन्द जी के उदगार

भद्रवत ! मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ! मेरे भद्र ऋषि मंडल अथवा भद्र समाज ! मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने पुनः से यह समय प्रदान किया है। वास्तव में मैं इस समय को पान करके ही कृतज्ञ हो जाता हूं। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव के तो समय देने में कुछ संकुचित विचार हो जाते हैं क्योंकि संकुचित विचार उस काल में होते हैं जब प्रतिष्ठा की प्रतिभा मानव के मस्तिष्क में ओत–प्रोत हो जाती है हास्य... कोई वाक्य नहीं। यह शब्द मुझे शोभा नहीं देते। आज हमारा यह अपूर्व समय है।

वर्तमान राष्ट्र

मैंने कल के वाक्यों में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि राष्ट्रवाद में अनुशासन की हीनता नहीं होनी चाहिए। राष्ट्र में अनुशासन की हीनता उस काल में होती है जिस काल में मानव के संकुचित विचार बन जाते हैं और इन विचारों में रूढिवाद आ जाता है और उन विचारों में अपनी प्रतिष्ठा आ जाती है। उस समय मानव राष्ट्र का और धर्म का कोई कार्य नहीं कर पाता। **मानव को जब पद की लोलुपता हो जाती है तो धर्म उसके द्वार से ऐसे चला जाता है जैसे सायंकाल का सूर्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।** इसी प्रकार जो मानव चाहे धार्मिक हो, राष्ट्रवादी हो जिस समय पद की लोलुपता आ जायेगी उस समय मानवता की परम्परा को अपने से दूरी कर देता है क्योंकि धर्म और मानवता पद को पद नहीं चाहती। जब पद की प्रतिष्ठा आने लगती है तो उस समय इस मानव को धर्म नहीं रहता। वह मानव यही चाहता रहता है कि इस समय पद की तेरी लोलुपता बनी रहे। आज के राष्ट्र का यह कार्य हो रहा है। कल के वाक्यों में अपने पूज्यपाद गुरूदेव को वर्णन कराया था कि आज का जो राष्ट्र है वह न तो स्त्री और पुरुष लिंग कोई भी नहीं कहलाया जा सकता। आज के समाज में ऐसा प्रचलित एक चलन है कि परम्परा में जब भगवान राम वन को जाने लगे तो अयोध्या के जितने प्राणी थे, उन्होनें राम के वियोग में अयोध्यापुरी को त्याग दिया। भगवान राम ने कहा अब तुम अपने-अपने गृहों में प्रविष्ट हो जाओ जितने स्त्री, पुरुष हैं वह सब वहां से प्रस्थान कर जाओ। इतना उच्चारण कर भगवान राम भयंकर वन में चले गए। स्त्री पुरुषों ने अयोध्या को प्रस्थान किया और जब राम लौट कर अयोध्या के निकट आए तो परन्तु वे प्राणी जो न स्त्री थे न पुरुष थे, वे उस स्थान पर विराजमान रहे। उन्होनें कहा महाराज हम तो आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अरे क्यों? महाराज इसलिए कर रहें हैं कि ब्रह्मे प्रव। भगवन आप! ने यह कहा था कि जितनी भी देवियां व पुरूष हैं वे अपने गृहों को प्रविष्ट हो जाओ, न तो हम पुरूष हैं न देवियां इसलिए हम इस स्थान पर ज्यों के त्यों विराजमान हैं। जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो भगवान राम ने एक वाक्य प्रकट किया कि कलयुग में तुम्हारा राज्य होगा। आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूं। ''राज्यम् भवक्रतम ब्रह्मे लोकः अस्वति लोका'' भगवान राम, राम के कथानुसार ऐसा मुझे आज का राष्ट्र प्रतीत हो रहा है। जहां पद की लोलुपता में मानव मानवीयता को त्यागता चला जा रहा है। न उसे यह विचार रहा है कि तू मानव है न यह विचार रहा है कि अमानव है। इसीलिए मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान राम के वरदान के कारण इस संसार में आ पहुंचे हैं। आज प्रजा क्या चाहती है? और राष्ट्र क्या कर रहा है? ऐसा संसार में किसी काल में दृष्टिपात भी नहीं किया गया। आज इन वाक्यों को तो मैं उपहास में प्रकट कर रहा हूँ। इसमें यथार्थता भी हो सकती है। जिन वाक्यों को प्रकट करने के लिए इस वेदी पर एकत्रित हुए हैं वह अपना उद्गम उदगार आज मुझे देना है।

ब्रभुवाहन का विज्ञान

वह उदगार क्या है? आज के इस संसार में विज्ञान की घोषणा की जाती है आज का मानव चन्द्रमा पर जा रहा है, शुक्र की कल्पना कर रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आज का मानव इस कल्पना में सफल नहीं होगा। सफल होता रहेगा, होता रहा भी है। परन्तु वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे यहां इस प्रकार के जो यन्त्र हैं, इस प्रकार की जो धाराएं हैं यह परम्परागतों में भी रहती चली आई है। मैंने कल चित्रावलियों का वर्णन करते हुए कहा था। उनमें ऋषि मुनियों का चित्रण किया जाता था। अहः ! मानव के द्वारा ऐसा भी प्रायः रहा है। ''सौभाग्य प्रवः कृति रुद्रो'' ऐसा कहा जाता है कि द्वापर के काल में महाराजा अर्जुन के पुत्र ब्रभ्रुवाहन ने एक यन्त्र को जाना। जो **''क्राकीक''** नाम के यन्त्र में ऐसी विशेषता थी कि मानव के रक्त की धारा के एक ही बिन्दू से जब वह चित्रण करता था, अप्रेत करता रहता था तो मानव का चित्रण ज्यों का त्यों उसमें प्रायः आ जाता था। ऐसा यन्त्र को जाना।

उसके पश्चात उन्होंने यन्त्र को जाना जैसे किसी भी लोक से कोई यन्त्र चलता है संसार के लिए, पृथ्वी मण्डल के लिए, द्वितीय लोक के लिए उसका चित्रण भी उस यन्त्र में उनके समीप आ जाता था। प्रायः उसको **''क्रोगा अनेक''** नाम का यन्त्र कहा जाता था। आधुनिक काल में तो यन्त्रों का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ है। जैसे मंगल मण्डल से कोई प्राणी यन्त्रों से युक्त हो करके चलता है। उसका चित्रण उसमें प्रायः आ जाता था ! ऐसा प्रायः हमें संसार को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

घटोत्कच के यन्त्र

यहां भीम के पुत्र घटोत्कच की जो विज्ञानशाला थी मैंनें उसका विवरण पूर्व काल में भी दिया है। आज भी मुझे वह स्मरण आता चला आ रहा है। उनका जो अध्ययन था वहां चन्द्र–मण्डल और चन्द्र से ऊंचा जो बुध–लोक है उस पर उनका प्रायः अनुसन्धान रहा है। जिस समय उन यन्त्रों का प्रादुर्भाव करके वायु मण्डल में त्याग देते थे तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा कुछ श्रवण भी किया गया कि वह **आज भी चन्द्रमा के उपरोक्त भाग में** जहां बुध की और मंगल की दोनों की आर्कषण शक्ति का मिलान होता है में वह भ्रमण कर रह रहे हैं।

आज जब इस पृथ्वी–मण्डल का प्राणी सूर्य–मण्डल के ऊपरले भाग में पहुंचेगा चन्द्रमा के कक्ष से, अक्रेति से उसकी आकर्षण शक्ति से उस समय उन्हें यह प्रतीत होगा कि **''अस्विति''** नाम का यन्त्र जो महाराजा बभ्रुवाहन ने निर्माण किया था और **'सोमाकृतिक'** नाम का यन्त्र जो महाराजा घटोत्कच ने निर्माण किया था वह आज भी उसी प्रकार भ्रमण कर रहे हैं।

उस समय महाभारत का संग्राम हुआ था। **महाभारत के संग्राम में इस प्रकार के यन्त्र वायु–मण्डल में त्याग दिए गए थे।** आज मुझे वह काल स्मरण आता चला जा रहा है। परन्तु मैं उसकी पुनरूक्ति देना नहीं चाहता हूँ वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि आज हम उस विज्ञान को जानने के लिए सदैव तत्पर बनें। जिससे हमारा वह विज्ञान पुनः से आ जाए।

सूर्य की किरणों से निदान

महाराजा अर्जुन ने सूर्य विद्या पर नाना प्रकार की पोथियों के निर्माण किए। सूर्य की नाना प्रकार के किरणों के ऊपर जिनका अप्रेत होता रहता था। हमारे यहां **हनुमान जी सूर्य विज्ञान के बड़े प्रकांड पंडित थे।** एक समय भगवान राम ने उनसे कहा हे हनुमन्तः ''प्रवे कृतम ब्रह्म'' मेरी ऐसी अभिलाषा है कि आज तुम सूर्य विज्ञान की वार्ता प्रकट करो कि आज मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार में **सूर्य किरणों से सूर्य रोगों का विनाश कैसे होता है?** उन्होनें कहा कि महाराज देखो सूर्य की सात प्रकार की मुख्य किरणें होती हैं। वास्तव में तो सहस्त्रों प्रकार की किरणें होती हैं परन्तु यहां ऐसा माना गया है कि जैसे वायु है, पृथ्वी है, अग्नि है, अन्तरिक्ष है इस प्रकार की जो यह पंच–महाभौतिक है इन्हीं किरणों का जैसा जिसका रंग होता है, श्वेत होती है, हरित होती है, ललित होती है, इसी प्रकार का जैसा इनका रंग रूप होता है उसी प्रकार की किरणें होती है सूर्य में। मानव के शरीर में केवल पंच–महाभूत कार्य कर रहे हैं जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी। मानव के द्वारा पृथ्वी का तत्व सूक्ष्म हो जाता है जब मानव रूग्ण होता है। उसकी रूग्णता में प्रहः 'गच्छत प्रवे अकृतानम्' मानो पृथ्वी का जो प्रवाह होता है वह सूक्ष्म हो जाता है, अग्नि का प्रवाह सूक्ष्म हो जाता है और वायु का प्रवाह सूक्ष्म हो जाता है जो तत्व मानव शरीर में सूक्ष्म हो जाता है उसी प्रकार की किरण को लाया जाता है। वही किरण उस मानव शरीर में प्रभावित हो जाती है और उस मानव का रोग शान्त हो जाता है। उसी किरण के आधार से, उसका निदान किया जाता है, उसी प्रकार का यन्त्र बनाया जाता है। जैसे स्वर्ण है, स्वर्ण में अग्नि की प्रधानता मानी गई है। वह स्वर्ण जैसी धातु का प्रतीक बनाया जाता है। उसका एक **'अक्रात'** यन्त्र बनाया जाता है। सूर्य की किरणों का उसमें जब प्रवाह होता है तो मानव के अंग को भी शुद्ध बनाता चला जाता है जिस प्रकार की धाराएँ सूर्य वैज्ञानिक पुरूषों ने अपना–अपना विचार व्यक्त किया है। उन्होनें सूर्य अस्त्र नाम के यन्त्रों का निर्माण किया। जिससे मानव अग्नि के प्रभाव को अपने में धारण कर सकते हैं ऐसा भी कहा जाता है।

आज जो मानव सूर्य की किरणों के विज्ञान को जानता है वह ऐसे यन्त्रों को बना देता है। जब सूर्य की किरण के साथ–साथ वह यन्त्र रमण करने लगते हैं और वे सूर्य की कक्षा में चले जाते हैं ऐसा हमारे यहां वैज्ञानिकों ने कहा है। आज मैं कोई अधिक वाक् प्रकट करने नहीं आया हूँ।

नास्तिकवाद का प्रसार

आज का ही विज्ञान नहीं परम्परागतों से विज्ञान पराकाष्ठा पर रहा है। परन्तु उस काल में विज्ञान में नास्तिकवाद नहीं रहा है। आज के मानव में नास्तिकवाद आता चला जा रहा है। जो सूक्ष्म सी वार्ता को जानने लगता है वह विज्ञान की अपनी घोषणा करने लगता है और कहता है कि परमात्मा की चेतना, उसकी सत्ता कोई वस्तु नहीं होती है। मैं यह कहा करता हूँ कि यन्त्र जो अपना कार्य कर रहे हैं, जिन धातुओं को तुमने जाना है उन धातुओं में जो क्रिया है वह कहां से आती है? यदि प्रकृति को शून्य स्वीकार किया जाता है जड़ कहा जाता

है तो जड़वत प्रकृति में अपना स्वभाव जड़वत रहता है चैतन्य नहीं रहता है। उसी प्रकार यदि हम यह भी स्वीकार कर लेते हैं कि प्रकृति में जो चेतना होती है उस चेतना के आधार पर हम अपनी विज्ञानशालाओं का निर्माण कर रहे हैं तो यह भी तुम्हें कोई न कोई वस्तु स्वीकार करनी होगी। उसी को हमारे यहां ईश्वरीय चेतना कहा जाता है। इसी को संसार को नियंत्रण से करने वाली चेतना कहा जाता है। इसीलिए आज के संसार में नास्तिकवाद का प्रसार हो रहा है।

गुरूजन

जब मैं छात्रबल के द्वारा जाता हूँ तो छात्रों में इस प्रकार की प्रवृत्ति आ जाती है। उसका मूल कारण क्या है? हमारे यहां जिस काल में गुरूजन शिक्षार्थी को शिक्षा प्रदान करता है उस समय तो इसका कोई अनुभव नहीं होता। आज के राष्ट्रवाद में ऐसे नियम बनाए जाते हैं कि जिस काल में एक आचार्य को संसार का अनुभव होता है, इस काल में इसको निठल्ला बना दिया जाता है। मूल कारण क्या हैं? वहां तो स्वार्थवाद की नींव है। चरित्र की और मानवता की नींव नहीं है। मुझे स्मरण आता रहा है। हमारे यहां चार आश्रमों का भगवान मनु ने निर्माण किया है। वास्तव में यह आश्रम भगवान मनु से पूर्व भी कहलाए गए है। हमारे यहां सबसे प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है, वही शिक्षार्थी कहलाता है, वही ब्रह्मचारी कहलाता है परन्तु जब वह आचार्य के कुल में जाता है, आचार्य इसे शिक्षा देता है और इसका अपना अनुभव कुछ नहीं होता। अभी वह कल ब्रह्मचारी था, आज वह गुरू बन गया है। परन्तु संसार में आध्यात्मिकता से और वैज्ञानिकता से वास्तव में वह उसको शिक्षा दिलाने का अधिकारी नहीं होता। हमारे यहां भगवान राम के काल में, रघु परम्परा में और भी मनु–परम्परा में प्रायः ऐसा रहा है। ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी आश्रम से गृह आश्रम में प्रविष्ट होते हैं, उसके पश्चात जब वह गृह आश्रम से उपरोक्त होते हैं, वानप्रस्थ आ जाता है, वानप्रस्थ में वह शिक्षा देने का अधिकारी बनता है क्योंकि उसको जीवन का अनुभव होता है। शिक्षार्थी को शिक्षार्थी बनाना है, वैज्ञानिक बनाना है उसी को एक महानता की वेदी पर ले जाना है। जब एक शिक्षार्थी को वानप्रस्थी शिक्षा देता हैं त्याग और तपस्या में परणित होता हुआ वह अपने विचार देता है कि "हे ब्रह्मचारी! मेरा अनुभव है, मैंने ब्रह्मचारी व्रत को धारण किया है, गृह आश्रम में मेरी निष्ठा रही है, यह मेरा अनुभव है इसको स्वीकार करो ।" अपने अनुभव के विचार जब आचार्य देते हैं, ऋषि–मुनियों के चित्रावलियों के चित्रण कराता है और ब्रह्मचारी उनका अनुकरण करता है, उस ब्रह्मचारी के हृदय में कितनी विशुद्वता आ जाती है, महत्ता आ जाती है, क्योंकि महत्ता, राष्ट्रीयता आचार्य का अपना स्वयं का अनुभव होता है वह ब्रह्मचारी को प्रदान करता चला जाता है। गृह आश्रम को त्याग करके मेरी माता जब आगे चलती है, वह ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा देती हैं। "हे ब्रह्यचारिणी! तू महान बन, पवित्र बन मेरा यह अनुभव है, मेरे अनुभव को स्वीकार कर" जब वह शिक्षा देने के लिए तत्पर होते हैं। नाना प्रकार की पोथियों के द्वारा तो राष्ट्र और समाज दोनों ऊंचे बना करते हैं। इस प्रकार का नियम राजा के राष्ट्र में होना चाहिए।

आधुनिक काल में उसका दुराग्रह किया जाता है। उसका दूसरा रूप लिया जाता है। जो शिक्षार्थी है वह तो युवावस्था में है, ब्रह्मचारी की आयु के साथ का, उसका अपना जीवन का कोई अनुभव नहीं होता। केवल अक्षरों का बोध, किसी महापुरूष का, किसी लेखक का अपना विचार होता है, वह अपनी लेखनी जब बद्व करता है वह उस लेखनी के आधार पर ब्रह्मचारी को शिक्षा देता है। उनसे छात्र का आत्मबल कदापि ऊंचा नही बनेगा। संसार में उससे राष्ट्रवाद कदापि नहीं आएगा क्योंकि इस पोथी को विचार के साथ अपना भी अनुभव होना चाहिए। अपना भी विचार होना चाहिए, केवल अध्ययन ही हमारा नहीं होना चाहिए, उसमें हमारा योग होना चाहिए। जब हमारा योग होता है सैद्धान्तिक रूपों से, उस काल में शिक्षार्थी अपने जीवन का ऊंचा ले जाता है।

हमारे यहां नाना प्रकार के ऐसे **आचार्य** हुए थे। उनमें एक मृत्यु आचार्य हुए और भी जैसे महाराजा वशिष्ट मुनि हुए, महाराज वशिष्ठ मुनि महाराज अपने अनुभव के वाक्य प्रकट करते थे, उद्‌गार देते थे। इन्होंने भगवान राम जैसे शिक्षार्थी को संसार में बनाया। हमारे यहां पनपेतु जैसे आचार्यों ने भगवान कृष्ण को वैज्ञानिक बना दिया। इस राष्ट्र में राजा को अपने यहां सबसे प्रथम विचार–विनिमय करने की आवश्यकता है। ऐसा नियम कदापि नहीं बनाना चाहिए जिससे हमारे राष्ट्र में अराजकता आ जाए इसमें प्रजा की हानि होती है । प्रजा विनाश के मार्ग पर चली जाती है। इसलिए मानव को विचारना है, वैज्ञानिक बनना है, सुन्दर रूपों से वैज्ञानिक बनना है, महानता की वेदी को अपनाना है।

द्रव्य की दाह

आज मैं इन वाक्यों को लेकर जाना चाहता था जब शिक्षार्थी नाना प्रकार की कठपुतलियों में रमण करने लगते हैं तो क्या उनका चरित्र रह सकेगा ? आज वह कैसे अपने जीवन को ऊंचा बना सकेगा ? जब नाना प्रकार की मेरी पुत्रियों को जिनका नग्न नृत्य कराने से ब्रह्मचारी को दिग्दर्शन कराया जाता है, क्या उस ब्रह्मचारी में राष्ट्रवाद या धर्मवाद आ सकेगा? यह असम्भव है। यह तो नास्तिकवाद ही है। हे प्रभु! इस संसार में उस मानव का जीवन बहुत सूक्ष्म होना चाहिए जो मानव ऐसे नियम को बनाने वाले हों। ऐसे सिद्धान्त को धारण कराने वाले हों, जो द्रव्य की वेदी पर अपनी मानवीयता को नष्ट करता चला जा रहा है। जब राजा के राष्ट्र में द्रव्य की दाह हो जाती है कि मेरे राष्ट्र में द्रव्य होना चाहिए, मुझे द्रव्य प्राप्त हो जाना चाहिए, चाहे संसार में प्रजा का चरित्र रहे या न रहे, मेरी पुत्रियों का श्रृंगार रहे या न रहे, परन्तु इस संसार में द्रव्य होना चाहिए तो इस प्रकार की प्रवृत्ति जब राजा के विचारों में आ जाती है, तो मैं प्रभु से सदैव कहा करता हूँ कि ऐसा राष्ट्र अग्नि के मुख में आ जाना चाहिए। ऐसा संसार नष्ट हो जाना चाहिए ऐसे मानव की बुद्धि नष्ट हो जानी चाहिए। इस प्रकार का विचार आज के संसार में मैं दृष्टिपात कर रहा हूं।

धार्मिक पुरूष

आधुनिक काल में जहां हमारी आकाशवाणी जा रही है, हमारा यह विचार, उदगार जा रहा है, मेरे हृदय का जो उद्गार है यह अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है आज मैं जब यह विचार–विनिमय करता रहता हूँ कि धार्मिक पुरुषों की सन्तान क्या कर रही है, यहां मुग्दल गोत्र, कपिल गोत्र और महर्षि भारद्वाज गोत्र नाना प्रकार के गौत्रिय हैं परन्तु उनका गोत्र ही गोत्र रह रहा है उच्चारण करने के लिए। आज जब मैं इन विचारों पर जाता हूँ, भारद्वाज और शाण्डिल्य इत्यादि गोत्रों के पुरुष यहां ऐसी नियमावली बनाते हैं जो उनको श्रवण भी नहीं किया जा सकता। आज मैं यह कहा करता हूँ कि राष्ट्र में **आहार और व्यवहार को अशुद्ध मत करो** तुम्हारा स्थान रहे या न रहे परन्तु **प्रजा का चरित्र रहना चाहिए।** प्रजा का चरित्र, मानवता उसके द्वारा रहनी चाहिए। ऐसा मेरा सदैव विचार रहा है। मै यह विचारता रहता हूँ कि संसार में यह क्या हो रहा है।

महर्षि दयानन्द का उपदेश

महर्षि दयानन्द ने एक वाक्य कहा था 'राष्ट्र में अराजकता नहीं होनी चाहिए और सब प्रजा को सुगठित विचार बनाने चाहिए, आर्यों का समाज होना चाहिए, सुगठित विचार अपने प्रकट होने चाहिए, वाद–विवाद से रहित होना चाहिए, परन्तु मैं क्या करूँ जब मैं महात्मा दयानन्द के उन वाक्यों को विचार–विनिमय करता हूँ तो हर्ष के मारे बहुत दूरी चला जाता हूँ परन्तु जब उनके मानने वालों के विचारों में जाता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा दयानन्द के विचार कहां चले गए? कहां गई वह वेदी? सुगठित होने को वैदिकता और आर्यता कहां चली गई? यहां आर्यता नहीं आनार्यता आ गई है। अनार्यता का परिणाम क्या है? वह भयंकर अग्नि है और कुछ नहीं हो सकता। जहां महात्मा दयानन्द के मानने वालों में सुगठित विचार था, महानता थी, वैदिक परम्परा के विचार थे, वहां ऐसा विवाद उत्पन्न हो गया है, भयंकर अग्नि उनके अन्तकरणः में प्रदीप्त होने जा रही है, वह कैसी घृणा की अग्नि है, जैसे मानव की आत्मा चले जाने के पश्चात अग्नि भस्म कर देती है परन्तु घृणा रूपी जो अग्नि होती है यह मानव के अन्तःकरण को निगलती चली जाती है और ऐसे निगल जाती है जैसे समुद्र में नदियां अर्पित हो जाती हैं। ऐसे मानव का शुकतत्व हनन होता चला जाता है। पुण्य ही नष्ट हो जाता है। हे मानव! आज तू दयानन्द का पुजारी बनना चाहता है तो घृणा न कर। **तू घृणा की वेदी को मत अपना। घृणा से तेरे मानव जीवन का विनाश होता है, आवागमन की परम्परा बनती है।** न जाने आगे चल करके तुम कौन सी योनि में प्रविष्ट हो जाओगे यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

आर्यो का कर्त्तव्य

महात्मा शंकर ने अपने कैसे उत्तम विचार दिए परन्तु उनमें जातिवाद की प्रतिभा ओत–प्रोत हो गई। मुझे यह संसार, यह राष्ट्र स्मरण आता रहा है। राष्ट्र में एक नियम यह होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में इस प्रकार का वास्तव में नियम तो है परन्तु उसको क्रियात्मक में नहीं लाया जा रहा है। इसका मूल कारण क्या है? स्वार्थवाद इसका मूल कारण है अपने को उच्च स्वीकार करना। प्रभु की सृष्टि में मानव, मानव से घृणा करना यह मानव का बड़ा दुर्भाग्य होता है मुझे इस आर्यावर्त का परम्परा का साहित्य स्मरण आता रहता है। दूसरे राष्ट्रों से प्रजा

घृणा को लेकर आती परन्तु यहां के **आर्य पुरुष उनको अपने में अपना लेते थे।** जैसे हमारे यहां नाग–जाति आई, हूण आए, परम्परा से आते चले गए उन सबको हमारे महापुरुषों ने अपने में अपना लिया। एक क्रुक नाम ही जाति आई, उनकी जातियता हमारे ही अपनेपन में आर्यावर्त में परणित हो गयी। भगवान राम के काल में समुद्रों के दूरी से भी नाना जातियां आईं वे सभी इसमें परिणत हो गई।

आज का काल

यह काल कुछ इस प्रकार का आया है कि यहां दयानन्द आ जाओ, कोई आ जाओ, परन्तु आज के समाज का, आज के काल का दुर्भाग्य है जब मानव, मानव से घृणा कर रहा है। यवन अधिक होते चले जा रहे हैं, महात्मा ईसा के मानने वाले अधिक होते चले जा रहे हैं। जो आर्यों का कार्य था वह विदेशी व्यक्तियों ने अपना लिया, वे तो महानता की विचार–धारा को अपनाते हैं परन्तु यह अपनी विचार–धारा को त्याग करके अपने आर्यावर्त और वैदिकता को ऐसे नष्ट करते चले जा रहे हैं जैसे सायंकाल का सूर्य अस्त हो रहा है। यह वैदिकता किस काल तक चलती रहेगी? कुछ काल में यह वैदिकता का सूर्य अस्त हो जाएगा, यदि यही कार्य तुम्हारा चलता रहा तो।

अरे! दयानन्द के विचार वालो ! शंकर के विचार वालो! यदि तुम्हारा यह विचार चलता रहा तो देखो! यह संसार रूढ़िवाद की अग्नि में परिणत होने जा रहा है। अरे नानक के विचार वालो! नानक के विचार कब तक रहेगें इस संसार में? किस काल तक रहेंगें? जब यहां यवनों को ईसा की अज्ञानता छा जाएगी, आर्यता नष्ट हो जाएगी, कब तक रहेंगे तुम्हारे महापुरुषों के विचार भी? ऐसे दग्ध हो जाएंगे जैसे अग्नि ईधन को भस्म कर देती है। आज तुम्हें विचार–विनिमय करना है। आज का मानव यह उच्चारण कर सकता है कि महानन्द जी तो आर्यों की वार्ता प्रकट कर रहे हैं। मैं आर्यो की वार्ता नहीं आर्य अनार्य हो गए, अज्ञानता से उनमें अनेकता आ गई। जो एकता की वेदी पर थे उनमें इस प्रकार की घृणा आ गई है कि एक मानव दूसरे मानव से अपना मिलान नहीं चाहता, विचार देना नहीं चाहता ऐसा यह राष्ट्र बन गया। यह समाज, यह आर्यता किस काल तक जीवित रह सकेगी? विज्ञान की वेदी से नहीं, चन्द्रमा में जाने से तुम आर्य नहीं बनोगे। तुम तो अपने जीवन में दूसरों को अपनाने से बनोगे। दूसरों को अपनाने का प्रयास करो।

एक मानव यवन बन गया है वह यवन ही बना रहेगा, वह मोहम्मद के विचारों का ही बना रहेगा उसके मन में एक दाह है मैं पुनः से आर्य बनूं परन्तु आर्यों में देखो उनमें इतना अजीर्ण हो गया है कि वे उसको अपनाना नहीं चाहते हैं। मैं तो उनको आर्य नहीं अनार्य कहा करता हूं। मेरा केवल अपना जातियत्व यह विचार रहता है कि समाज में एक दूसरे को अपनाने की शक्ति होनी चाहिए। द्रव्य से अपनाओ द्रव्य तो धर्म के लिए होता है। आज संसार में धर्म को पाप में परणित कर दिया है। द्रव्य को धर्म में लाने के स्थान में वह पाप में परिवर्तित हो गया है। राष्ट्र के द्रव्य को धर्म में परणित करना चाहिए। प्रजा का जो द्रव्य होता है वह भी धर्म में परणित होना चाहिए परन्तु प्रजा का जो द्रव्य है वह पाप में परणित है। वह राष्ट्र में जाने के पश्चात राष्ट्रीयता में परणित हो जाता है। उससें एक दूसरे के नष्ट करने वाले यन्त्रों का निर्माण होता है परन्तु जीवन के लिए कोई यन्त्र नहीं बनाया जाता। यह आज का समाज है। मैं कहा तक इन वाक्यों को उच्चारण कर सकता हूँ।

आज संसार में आग्नेय अस्त्रों को बनाया जा रहा है परन्तु मानवता नहीं बनाई जा रही है यह संसार का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से बारम्बार क्षमा पाता रहता हूं एक दूसरे के नष्ट करने वाले यन्त्र तो बनाए जा सकते हैं परन्तु एक दूसरे को प्राण की सत्ता देने की क्षमता होनी चाहिए जिससे महत्ता उस मानव के मस्तिष्क में प्रबल होती चली जाए और ऐसी अग्नि प्रदीप्त होती चली जाए जिस अग्नि के द्वारा आज हम अपने आर्यत्व को अपनाते चले जाएं। महात्मा दयानन्द के हृदय में एक ऐसी दाह थी। ऐसी एक भयंकर अग्नि उनके मस्तिष्क में थी ''आज संसार यदि मेरा राष्ट्र हो जाए तो मैं सबसे प्रथम मोहम्मद के मानने वालों को, अपने उन भ्राताओं को अपने अंग और अपने कंठ से धारण करता चला जाऊं'', वह कहां है उसका विचार? उन महापुरूषों का विचार उनके साथ ही चला गया। यहां तो पद की लोलुपता में भयंकर अग्नि में मानव परिणत होता चला जा रहा है। आज के समाज को विचार–विनिमय करना है।

महात्मा शंकराचार्य के मस्तिष्क में एक भयंकर अग्नि थी, दाह थी, ''मेरा राष्ट्र, मेरा समाज होना चाहिए और धर्म होना चाहिए, वैदिकता होनी चाहिए जिस वैदिकता को अपनाने से हमारे जीवन में एक महानता का दिग्दर्शन

होता'', इसलिए मानव को विचारना है कि आज द्रव्य को धर्म में परिणत कर दो। द्रव्य तुम्हारा पाप से बिंधा हुआ नहीं होना चाहिए। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझे समय प्रदान करेगें तो कल मैं यह उच्चारण कर सकता हूँ कि आज के संसार ने द्रव्य को किस प्रकार पाप से छेदन कर दिया है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव भी इस बात पर विचार–विनिमय करेंगें। मुझे तो इतना समय आज्ञा नही देता है। क्योंकि मैं तो ''पराब्रह्मे श्राधप्रवे कृतम्'' पूज्यनीय गुरूदेव की शरण में आने के पश्चात उनके विचारों के अनुकूल चलना बहुत अनवार्य होता है।

मानव को प्रेरणा

हम अपने मानव जीवन को ऊंचा बनाने का प्रयास करें और उस महान परम्परा को अपनाने के लिए तत्पर होते चले जाएं, जिससे एक महान क्रांति आ जाए, क्षत्रियत्व आ जाये, राष्ट्रीयता आ जायें। राष्ट्रीयता उसी काल में आती है, जब प्रजा में प्रीति होती है, अपनापन होती है। जब प्रजा आहार कहीं का ग्रहण करती है और गुणगान कहीं के गाती है, वह राष्ट्र नहीं होता। एक काल में वह राष्ट्र श्मशान भूमि बनकर के रहता है।

मैनें जो अपना विचार दिया है कि (क) हमारे यहां विज्ञान परम्परा से रहा है। (ख) राजा के राष्ट्र में नियम सुन्दर होने चाहिए। (ग) वानप्रस्थियों को, ब्रह्मचारियों को उपदेश देने चाहिए। शिक्षालयों में वानप्रस्थी होने चाहिए जो अपना विचार दे सकें। क्रियात्मक विचार उनका रहा है। उनका क्रियात्मक जीवन ब्रह्मचारियों को अनुभव करा सकें। पाठन के पुस्तकम् भी उनके द्वारा सुन्दर होने चाहिए जैसे कपिल सिद्धान्त है, कणाद सिद्धान्त है, जैमिनी सिद्धान्त है, व्यास सिद्धान्त है। उन वाक्यों को ब्रह्मचारियों को देना चाहिए ऐसे विचार और भी नाना पुरुषों की लेखनियां बद्ध होती रहनी चाहिए। राजा का राष्ट्र उस काल में पवित्र होता है। इसके पश्चात हमने विचार दिया है कि मानव के द्वारा अपने में प्रीति की दाह होनी चाहिए। मानव तो प्रभु का बनाया हुआ है अपनी जातीयता, सम्पदा मानव के द्वारा कुछ नहीं होती। **मानव को मानव से प्रीति होनी चाहिए, स्नेह होना चाहिए।** कोई ईसा को मानने वाला हो, मोहम्मद के मानने वाला हो, शंकर को मानने वाला हो दयानन्द के मानने वाला हों, महात्मा नानक के मानने वाला हो किसी के मानने वाला हो परन्तु **विचारों में एक वैदिकता होनी चाहिए, आर्यता होनी चाहिए।** अशुद्ध वाक्य नानक के हो उसे भी शान्त कर देना चाहिए, महात्मा दयानन्द का अशुद्ध वाक्य हो उसको भी दमन कर देना चाहिए। शंकर का कोई अशुद्ध वाक्य हो उसको भी दमन कर देना चाहिए। मोहम्मद का अशुद्ध वाक्य हो उसको भी दमन कर देना चाहिए बुद्धिमता से और ईश्वरीय नियम के अनुसार ईसा का कोई वाक्य रूढ़िवाद का हो उसे भी नष्ट कर देना चाहिए। सब जितनी पोथी हैं इनका जो उत्तम विचार है उनमें वैदिक विचार होते हैं उन सब विचारों को एकत्रित करके एक धर्म की परम्परा होनी चाहिए। उसी के आधार पर राष्ट्र और समाज और ब्राह्मण समाज अपने राष्ट्र को ऊंचा बना सकता है।

मुझे स्मरण है महात्मा नानक के बहुत से विचार अशुद्ध हैं परन्तु उन अशुद्ध विचारों को शान्त कर देना चाहिए। मैं यह नहीं कहता उनके भाव तो सुन्दर हैं परन्तु भाषा में अशुद्धियां होती हैं उन भाषा की अशुद्धियों को दूर कर देना चाहिए। रूढ़िवादिता को जैसे महात्मा गोविन्द ने कहा कि तुम मेरे शिष्य बन जाओ परन्तु तुम्हारी जो शिखा है अप्रेत देखों सर्वत्र रहनी चाहिए क्योंकि यवनों से संग्राम होने जा रहा था। ब्राह्मणों की और गऊ की रक्षा करनी थी उस काल में परन्तु गऊओं के मांसों को भक्षण करने वाले महात्मा नानक के शिष्य स्वयं बनते चले जा रहे हैं ऐसा विचार नहीं होना चाहिए। महात्मा नानक के विचारों को भी इस समाज में ठुकराते चले जा रहे हैं। मैं कहां तक यह वाक्य प्रकट करूं? मेरा तो केवल एक ही वाक्य रहता है कि महात्मा नानक का विचार हो, मोहम्मद का हो इन सब के विचारों को एकत्रित करके उन विचारों को एक वैदिकता में, आर्यता में लाकर के बुद्धिमान वैदिक साहित्य के अनुसार उसको विचार–विनिमय करें। कणाद सिद्धान्त हो, जैमिनी ऋषि का हो और वेदान्त दर्शन हो, सबके आधार को लेकर के एक ऐसा नियम राजा के राष्ट्र में होना चाहिए कि यह धर्म मेरे राष्ट्र में होगा।

एक समाज ऐसा होना चाहिए जो रूढ़िवाद को पनपने न दे। यदि राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद पनप गई तो राजा के राष्ट्र में क्रांति आने का संदेह रहता है। आज का वाक् यह हमारा अब समाप्त होने जा रहा है अब मैं अपने विचारो को विराम देने जा रहा हूँ। मैने अपने विचार, अपने वाक्य जो मेरे हृदय में उद्गम थे वह मैंने आज प्रगट किए हैं अब अपने विचारों को विराम देने जा रहा हूं।

पूज्यपाद गुरूदेव

धन्य हो !

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल ! मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज पुनः से विचार दिये। उन विचारों में कितनी ऋषिता थी यह विचार करने का वाक्य है। रूढ़िवाद के ऊपर मेरे प्यारे! बहुत अपना विचार देते रहते हैं। कटुता प्रायः रहती है, वह तो इनका स्वाभाविक गुण है, परन्तु विचारों में एक निष्पक्षता थी। कितनी दाह है इनके हृदय में, समाज के प्रति कितनी वेदना है? महापुरुषों के वाक्यों को विचार विनिमय करने की कितनी वेदना है। वास्तव यह होनी चाहिए। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या कि मानव को परमात्मा का चिन्तन करना है और उदगीत गाना है, ऐसी महान क्रांति को लेकर के उदगीत गाना है, वेदों का नाद लेकर के चलना है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने जो वाक् प्रगट किए उन सब विचारों को एकाग्र करके राष्ट्रवाद को ऊंचा बनाना चाहिए। राष्ट्र में चरित्र की वेदना, और एक दूसरे मानव से घृणा नहीं होनी चाहिए। ऐसा विचार इन्होनें आज दिया। यह विचार वास्तव में बहुत ही सुन्दर, प्रिय आज प्रतीत हुआ। अब कल जैसा भी समय आएगा उसके अनुकूल वाक् प्रगट करेंगे। आज का वाक्य अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि **मानव को उदगीत गाना चाहिए प्रभु का, अपने चरित्र और मानवता को ऊंचा बनाना चाहिए।** आज का वाक् यह अब हमारा समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी—अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद—गुरुदेव—आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : २ अगस्त १९७१
समय : रात्रि ८ बजे
स्थान : महाशय कृष्ण हॉल, जोर बाग, नई दिल्ली ।

८. परमात्मा का जगत ३ अगस्त १९७१

जीते रहे!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद—मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद—मन्त्रों का पठन—पाठन किया। हमारे यहां जो पाठयक्रम है वह महान और विचित्र माना गया है क्योंकि उनमें जो है, उनमें जो महानता का हमें दिग्दर्शन होता है उससे हमारा हृदय, हमारा मानवत्व एक विचित्रता से दृष्टिपात आने लगता है। आज के हमारे इस मनोहर वेद—पाठ में एक—एक वाक्य बड़ा विचित्र आता चला जा रहा था। क्योंकि परमपिता—परमात्मा की महिमा का गुणगान गाना तो वैदिक प्रकाश में एक मुख्य ही महानता और उस विचित्रता का दिग्दर्शन होता रहता है। क्योंकि वह जो ज्योति है वह एक वेद की प्रतिभा में रमण कर रही है जिस प्रकार बेटा, विद्युत से यह विद्युत लोक छायामान हो रहा है। जिन तरंगों से बेटा वायुमण्डल छायामान हो रहा है उन्हीं विचित्र तरंगों में एक मानव दूसरे मानव को विश्लेषण कर रहा है। परन्तु वह जो महान ज्योति है, जिसमें यह सर्व जगत समाहित हो रहा है लोक—लोकांतर उसी महान ज्योति में पिरोए हुए हैं। जिस प्रकार बेटा! मनके और धागा होते हैं और धागे में एक—एक मनका पिरोया हुआ होता है तो वह माला कही जाती है उसी प्रकार यह जो सर्व जगत है यह माला के सदृश माना गया है।

प्रभु की महानता

आज जब हम प्रभु की महानता पर विचार—विनिमय प्रारम्भ कर देते हैं, उसी के आनन्दमय, विज्ञानमय जगत का पान करने लगते हैं तो बेटा! हमारा हृदय आनन्द युक्त हो जाता है और हम अपने में उस ज्योति को भरण कर लेते हैं। जब वह ज्योति हम में भरण हो जाती है तो हमारे जीवन में अंधकार नहीं आता क्योंकि परमात्मा के राष्ट्र में रात्रि होती ही नहीं सदैव प्रकाश होता है वह संवतसरों का स्वामी है। उसके राष्ट्र में संवतसर नहीं होते क्योंकि वह उनका स्वामी है। जब हम विचारने लगते हैं कि वास्तव में परमात्मा के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती तो हमें रात्रि का अनुसरण भी क्यों करना चाहिए? कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता कि हम रात्रि का अनुसरण करने लगें, रात्रि को अपने में धारण करते चले जायें।

रात्रि

बेटा ! रात्रि कहते किसे है? सूर्य अस्त होने को रात्रि नहीं कहते। रात्रि कहते हैं जब मानव के जीवन में अज्ञान व्याय जाता है, संकीर्णवाद आ जाता है, पापाचार आ जाता है वही तो मानव के जीवन का अन्धकार माना गया है। हे मानव! उस अन्धकार को त्यागने का प्रयास कर वह अन्धकार तभी समाप्त होगा जब प्रकाश से हमारा मिलन होगा और जब तक हमारा प्रकाश से मिलन नहीं होगा तब तक हम अन्धकार से दूर नहीं हो सकते। जब तक हम दूसरों की त्रुटियों को दृष्टिपात करना ही नहीं त्यागेंगे तब तक हम प्रकाश से अपना मिलन नहीं कर पायेंगें। आज हम प्रकाश से मिलन करते चले जाऐं, अन्धकार को त्यागते चले गये। यही तो मानव का मुख्य कर्त्तव्य है और इसी अन्धकार (अज्ञान) को त्यागने के लिए संसार में पुनरूक्ति होती रहती है 'पुनरम् मरणम् पुण्यम् जीवनम्' ही लगा रहता है। वह किस लिए? प्रकाश के लिए।

बेटा ! एक विद्युत अपना प्रकाश दे रही है। बहुत से जीवाणु इस प्रकार के होते हैं बहुत सी योनियां इस प्रकार की होती हैं जो इस महान अनुपम ज्योति के लिए जब चलते हैं तो यह बाह्य भौतिक ज्योति में आकर के वह अपने प्राणों को त्याग देते हैं, कि वही वह ज्योति होगी जिसको हम त्याग गये। मेरे प्यारे ऋषिवर ! कितने कीट पतंग होते हैं, कितनी योनियां होती हैं जो उस महान ज्योति के प्रकाश के लिए भौतिक अग्नि में अपने प्राणों को नष्ट कर देते हैं। इसीलिए बेटा! आज हमें विचारना है कि आज हम उस प्रकाश के लिए चलें जिस प्रकाश के लिए हम संसार में आए हैं। संसार में हमें जीवन प्राप्त हुआ है उस परमपिता की ज्योति को जानने के लिए। कितनी ही योनियां इस प्रकार की हैं जो सदैव अन्धकार में रहती हैं क्योंकि वह अपने कर्मों से अन्धकार में चली जाती है। इसीलिए आज हमें विचारना है कि आज हम उस अनुपम वैदिक प्रकाशमयी ज्योति को अपने से दूर न करें। जो बेटा उसको दूरी कर देता है वह सदैव अन्धकार वाली योनियों को प्राप्त होता रहता है जो प्राणम् आकृत त्याग देते हैं।

चित्त

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं आज अपने वाक्यों को अधिक विलम्ब देना नहीं चाहता हूं। आज हमें वैज्ञानिक रूपों को विचार–विनिमय कर लेना चाहिए। यह प्रभु ने कैसा सुन्दर मानव शरीर रचा है। इस मानव शरीर में कितने सुन्दर–सुन्दर तत्व रहते हैं, कितनी सुन्दर–सुन्दर धारायें रहती हैं, और जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार इस मानव शरीर में परणित रहते हैं। मानव, मानव शरीर को त्याग देता है परन्तु संस्कार नष्ट नहीं होते हैं। यह संस्कार मानव के साथ में रहते हैं अन्तःकरण में रहते हैं। जब यह जीवन आत्मा इस शरीर को त्याग देता है तो उस समय यह संस्कार मन, बुद्धि, चित्त अहंकार में समाहित रहते हैं। सूक्ष्म शरीर के साथ में यह चित्त ही जाता है, चित्त में जन्म–जन्मात्तरों के संस्कार होते हैं।

वह कैसा चित्त है? वह कैसी उत्तम भूमि है? जहां अन्तःकरण में करोड़ों जन्मों के संस्कार मानव के सहित होते हैं, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इनके समूह को चित्रण करने से प्रतीत होता है कि चित्त के ही यह चार प्रकार के नामांकन माने गए हैं।

अन्धकार से प्रकाश की ओर

प्यारे ऋषिवर ! आज हम जन्म–जन्मात्तरों की आभा में जाना नहीं चाहते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी के कुछ वैज्ञानिक रूपों को भी प्रकट करना है। उनके ऊपर भी मुझे कुछ अपना संक्षिप्त प्रकाश देना है। चन्द्रमा से मानव के जीवन का बहुत ही सम्बन्ध रहता है सुर्य मण्डल से भी बहुत सम्बन्ध रहता है कोई लोक ऐसा नहीं, कोई सौर मण्डल ऐसा नहीं जिससे मानव का सम्बन्ध नहीं रहता हो। हम प्रायः न जानते हों। अज्ञानता के कारण इस भौतिक पिंड में हमारा उतना व्यापक ज्ञान नहीं हो पाता परन्तु हमारे जीवन का सम्बन्ध इससे प्रायः रहता है। इसलिए हमारे ऋषियों मुनियों ने यह कहा है कि योगी बनों। **योगी कहते किसे है?** जो ''योग प्रवाह असतं रूद्राः'' योगी उसे कहते हैं जो अपनी ज्ञान–इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इनको जान लेता है और जान करके इनको एकाग्र स्थित हो जाता है। स्थित हो कर मन और प्राण का समन्वय करने का नाम बेटा! योग कहलाया गया है। इस योग को जानना है। यह केवल शब्दों में ही नहीं। शब्दों में तो केवल हम ने एक क्षण में ही उच्चारण कर दिया परन्तु जब हम क्रिया में लाते हैं, इसको जानने का प्रयास करते हैं तो हमारे जन्म–जन्मात्तर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु करना चाहिए। जब मानव अपनी प्रवृत्तियां को संयम में लाता है उस

समय बेटा! हमें साफ–साफ साक्षात्कार हो जाते हैं। जब तक हम इनकों नहीं जानते तब तक हमारा जीवन अन्धकार में रहता है इसलिए हमें अन्धकार को त्याग करके प्रकाश से मिलान करना है। प्रकाश से अपने जीवन का समन्वय करना है।

ऋषि–मुनियों का विज्ञान

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मुझे यहां नाना प्रकार ही वार्तायें स्मरण आती रहती हैं जब मैं वैज्ञानिकों की उड़ान में जाता हूँ। हमारे यहां नाना वैज्ञानिक हुए। यहां महर्षि भारद्वाज विज्ञान में बड़े महान पारंगत कहलाए जाते थे। उनकी अन्तरिक्ष में बड़ी उड़ान रही है। इससे पूर्व भी महर्षि शाकल्य जी हुए हैं। उनकी भी विज्ञान में बड़ी उड़ान रही है। इस प्रकार हमारे यहां सतोयुग में महाराजा गरूड़ हुए हैं। उनकी भी बड़ी उड़ान रही है। हमारे यहां यह कहा जाता है कि विष्णु का जो वाहन है वह गरूड़ कहलाया जाता है। परन्तु देखो गुरूड़ की उड़ान लोक–लोकान्तरों में विचरण करती रहती थी। मुझे बेटा! स्मरण आता रहता है। सफलतायें भी स्मरण आती रहती हैं। मुनिवरो देखो! गरूड़ नाम विज्ञान को तो कहा ही जाता है। मैंने यह वाक्य वैदिक साहित्य से कई काल प्रकट कराया है। आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है बेटा! गरूड़ की सूर्य लोक में क्या, ध्रुव मण्डल में क्या इन सर्वत्र लोकों मे इनकी उड़ान रही है परन्तु वह उड़ान कितनी विचित्र रहती है यह विचरना है। उन्होनें सबसे प्रथम उस उड़ान के ऊपर विचार–विनिमय किया था कि हम किस प्रकार अपनी उड़ान उड़ सकते हैं जिससे हम लोक–लोकान्तरों को जानते रहें। ऋषि–मुनियों के मस्तिकों में, उनके हृदय में, ऐसी विशाल उड़ान प्रविष्ट रहती थी। चन्द्र क्या, मंगल क्या, बुध क्या, शनि क्या नाना लोक–लोकन्तरों में हमारे महान आचार्यों का गमन रहा है। यंत्रों के द्वारा भी उनका प्रायः गमन होता रहता था।

महर्षि भारद्वाज का विज्ञान

राजा रावण के राज्य में इतना विशाल विज्ञान था कि जिसकी प्रतिभा का मेरे लिए वर्णन करना असम्भव हो जाता है। मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि आज का संसार तो चंद्रमा की यात्रा करने के लिए तत्पर हो रहा है। मैं यह कहा करता हूँ कि मानव को यात्री बनना चाहिए परन्तु यात्री ही नहीं अपने वैदिक विचार भी विचार–विनिमय किये जाने चाहिए जिससे यह प्रतीत हो जाए कि लोक–लोकान्तरों में किस प्रकार का धर्म है। अथवा किस रूप में रहता है। यह उसी काल में हमें प्रतीत होगा जब कि हमारे हृदय–स्थल के विवेकी उदगार, वैदिक उदगार वहां वायुमंडल में त्याग करके चले आये। एक समय जब राजा रावण के पुत्र नारांतक मंगल की यात्रा करने में सफलवत हो गए तो उस समय रावण ने अपने पुत्र से एक वाक्य कहा था कि हे पुत्र ! तुम मंगल की यात्रा में सफल हुए हो, मंगल की यात्रा कितनी है? उन्होनें कहा कि हे प्रभो ! जैसा चन्द्रमा में मेरा एक रात्रि और एक दिवस में गमन हो जाता है, इसी प्रकार मंगल में मेरा दो रात्रि और दो दिवस में गमन हो जाता है। उन्होनें फिर कहा कि भाई ! वहां किस प्रकार का उदगार होता रहता है? उन्होनें कहा कि हे भगवन् ! मेरा जो उदगार है जो मैंने वैदिक–साहित्य के आधार पर महर्षि भारद्वाज के द्वारा जाना है उसी उदगार को प्रायः मैं मंगल पर त्याग कर चला आया। जब द्वितीय काल में वहां पहुंचे तो यह प्रतीत हो गया कि वास्तव में वहां पार्थिव मण्डल जैसे ही प्राणी रहते हैं, विचरण करते हैं, आहार–व्यवहार करते हैं, इस प्रकार की धारा का मुझे प्रतीत हो गया। ऐसा उन्होंने निर्णय कराया। महर्षि भारद्वाज उनके गुरूजन होते थे। लंका में जितना भी विज्ञान गया वह महर्षि भारद्वाज के द्वारा पहुंचा, यह उन्हीं की देन थी। आज बेटा ! जब हम उस साहित्य को दृष्टिपात करने लगते हैं, उनकी आभा को महर्षि भारद्वाज के जीवन को, उनकी विज्ञानशालाओं को दृष्टिपात करने लगते हैं तो एक विचित्रता ही विचित्रता प्रतीत होने लगती है।

महर्षि भारद्वाज से एक समय रावण पुत्र नारांतक ने एक वाक्य कहा कि हे भगवन्! आप हमारे पूज्य हैं, मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप की जो आभा है, जो विज्ञान है यह चन्द्रमा तक सीमित रहता है, मंगल तक सीमित रहता है शुक्र तक सीमित रहता है और भी किसी लोक–लोकान्तरों की यात्रा कर सकते हैं अथवा नहीं? उन्होनें कहा तुम सर्वत्रता में ही भ्रमण कर सकते हो। शुक्र की यात्रा क्या तुम बृहस्पति की यात्रा भी कर सकते हो परन्तु तुम्हें अपनी धाराओं को, अपने वातावरण को भी उसी प्रकार का बनाना होगा जो वहां का वातावरण होता है। यदि वातावरण मानव के विपरीत हो गया तो मानव की मृत्यु प्रायः हो जाती है। द्वितीय लोक–लोकान्तरों में जाने से मानव की मृत्यु इसलिए होती है, क्योंकि वहां का वातावरण, वहां का वायु–मण्डल,

वहां का प्राण वायु, वहां का परमाणुवाद इतना दूषित हो जाता है कि इस पार्थिव–पिंड को यह जो लिंगमय शरीर माना है, यह उन परमाणुओं को अपने में समाहित नहीं कर सकता इसीलिए प्रायः मानव की मृत्यु हो जाती है क्योंकि वह परमाणु इतने शक्तिशाली हैं, इतने महान हैं अथवा यह भी विचार किया जा सकता है कि वह इतने शक्तिशाली नहीं हैं जो इन परमाणुओं में मिश्रित हो करके इन दोनों परमाणुओं का मिलान हो कर इन दोनों की शक्ति एक ही तुल्य, एक ही आत्मिक विचरण करती चली जाए। ऐसा हमारे यहां प्रायः महर्षि भारद्वाज ने अपने शिष्यों–गणों से निर्णय कराया।

कुम्भकरण का वाणी से सम्बन्धित यन्त्र

मेरे प्यारे ऋषिवर ! एक समय रावण के विधाता कुम्भकरण जो लंका में छः मास तक विज्ञानशालाओं में शिक्षा प्रदान करते, हिमालय की कंदराओं में विराजमान थे, श्रृंग–भानु ऋषि महाराज, जो पापड़ी मुनि महाराज के पौत्र होते थे, उनके द्वार पर पहुंचे। वह नाना प्रकार के उन परमाणुओं के लिए संलग्न हो रहे थे जिन परमाणओं में नाना अप्रेत, एक सुकुमानी नेत्रों को विराजमान करता हुआ अपने ही नेत्रों के समीप नाना प्रकार के परमाणुओं का चित्रण करने वाला पत्र निर्माण किया था। उन्होंने कहा कि यदि एक परमाणु के साथ एक–एक यन्त्र का निर्माण हो जावे तो आप की वाणी प्रत्येक यंत्र में विराजमान हो जाएगी? उस समय ब्रह्म बालक, भारद्वाज शिष्य कुम्भकरण ने कहा कि ऐसा नहीं। मैंने प्रायः गुरूओं से ऐसा पाया है, अनुसन्धान भी किया है कि यदि हम एक–एक परमाणु पर यंत्र की स्थिति कर देते हैं, भौतिक यंत्रों को निर्माणित करते हुए तो वाणी जिस यंत्र से सम्बन्धित होगी उसी यंत्र में उसका प्रवाह होता चला जाएगा। ऋषियों ने ऐसा भी कहा है कि मानव के मस्तिष्क में जितनी नस, नाडियां हैं, नाना लोक–लोकान्तरों में नाना तरंगों के परमाणु मानव के मस्तिष्क में आता हुआ उसी प्रकार के यंत्रों का निर्माण करके वही परमाणु वायु–मण्डल में जब तरंगित कर देते हैं, विद्युत के आश्रित हो करके जब उस में परिणत हो जाते हैं तो वही वाक्य यंत्रों में आरम्भ होने लगता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं अधिक वाक् प्रगट करने नहीं जा रहा हूँ। वाक् उच्चारण करना हमें यह है कि हम आज चन्द्रयान का निर्माण करते हैं तो यह निर्माण तो बहुत ही सुन्दर है **परन्तु जो निर्माण हमारे ऋषि–मुनि चाहते हैं, वह निर्माण नहीं हो पाता,** वह सुन्दरता नहीं आ पाती जो ऋषि–मुनि अपने शिष्यों से कहा करते थे।

वाणी का पान

एक समय मैंने अपने पूज्यपाद–गुरूदेव से एक प्रश्न किया कि हे प्रभो ! आपकी इस वाणी के प्रभाव में आ करके मृगराज भी मौन हो जाते हैं हिंसक प्राणी हिंसा को त्याग देते हैं, इस वाणी का सम्बन्ध द्यु–लोक से रहता है। क्या प्रभो! आप इस वाणी का यान बना करके लोक–लोकान्तरो में रमण कर सकते हैं? उस समय मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कहा था कि हे पुत्रवत! मैं वाणी का यान बना लेता हूँ। इसका यान किस प्रकार बनता है? जब हृदय में विचार आता है तो यह विचार मस्तक में जाता है, उसमें होता हुआ वाणी के मुखारविन्द में आ जाता है, वही मानो ! एक यंत्र बन गया। विचार जहां से वाणी का स्त्रोत चलता है उस स्त्रोत को हम हृदय–स्थल में ही हृदय को पवित्र बनाना प्रारम्भ कर देते हैं, वाणी को वहीं मौन कर लेते हैं, उस को मस्तक में लाते हैं उस में जो तरंगे उत्पन्न होती हैं उन तरंगों को जान करके उनके ऊपर सवार हो करके इस परमाणुवाद पर अपना इतना अधिपत्य कर लेते हैं कि हिंसक परमाणु भी उस वाणी के परमाणु में आ करके निगला जाता है। ऐसा हो जाता है जैसा अग्नि में अन्न तपा करके उस अन्न में उपजाऊ शक्ति नहीं होती इसी प्रकार हमारे यहां एक अमोघ शक्ति हो जाती है। उस वाणी के वाहन के द्वारा हम संसार का वशीकरण कर लेते हैं, हिंसक प्राणियों का वशीकरण कर लेते हैं। इसी प्रकार हमारा सर्वत्र का एक ही विचार रहता है कि संसार का वशीकरण कर लेना चाहिए। संसार को एक महान ज्योति का दिग्दर्शन कराना चाहिए जिससे चन्द्रयान का मंगलयान का, शुक्रयान का, सब का एकीकरण हो करके समाज अपने–अपने कर्तव्य का पालन करने में अपनी–अपनी धाराओं में, अपने हृदय प्रकाश में रमण करता हुआ रात्रि का जो संदेह रहता है वह समाप्त हो जाता है

कर्तव्यवाद

मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं वाक् उच्चारण करता हुआ कहां चला गया हूँ मेरे प्यारे! तुम मुझे प्रेरणा दे रहो हो आज का मानव चन्द्रमा की यात्रा में कितना संलग्न हो करके अपना कार्य कर रहा है। बेटा ! मैं इसका विरोधी नहीं हूँ हम तो यह वाक्य उच्चारण करते हैं कि जब मानव समाज में कर्तव्यवाद आ जाता है तो चन्द्रयान की भी

मानव को विचार धारा नहीं आती, क्योंकि कर्त्तव्यवादी जो प्राणी होता है उसकी उड़ान चन्द्रमा से भी ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती रहती है। वह उड़ान ऐसी विशाल होती है जहां बेटा! मेरी प्यारी माताओं के श्रृंगार की सुरक्षा होती है। वहां यह समाज, यह राष्ट्र, यह जगत विचित्रता में सदैव भ्रमण करता है।

विज्ञान एवं मानवता

मेरे प्यारे ऋषिवर ! राजा रावण के यहां कितना विज्ञान था, चन्द्रयान थे, मंगलयान थे, शुक्रयान थे परन्तु चरित्र नहीं था उनके द्वारा बेटा ! तुम्हें प्रतीत है लक्ष्मण के द्वारा कितना चरित्र था, कितना विज्ञान था। विज्ञान भी बहुत था, परन्तु चरित्र भी बहुत था। मुनिवरो! गृह त्यागने के पश्चात रघुवंश में उत्पन्न होने वाले भगवान राम ने संसार से मिलन करने की प्रेरणा की। अपने हृदय में उस शक्ति को धारण किया कि संसार से मिलन किया जाए। यह जो संसार एक दूसरे की अग्नि में प्रदीप्त होने जा रहा है, इससे मिलान किया जाए। एक दूसरे के हृदय का हृदय से मिलान होना चाहिए। बेटा ! यह सबसे प्रथम पठन–पाठन की प्रक्रिया थी, उनके द्वारा ! उसके पश्चात वह छः माह तक ऋषि भारद्वाज आश्रम में परणित हुए (निवास किया)। उसी आश्रम में महाराजा लक्ष्मण ने उस रेखा को जानने का प्रयास किया जो रेखा हमारे यहां ऊंचे–ऊंचे महापुरूषों में ही प्राप्त होती है। वह किस प्रकार की रेखा है जिस रेखा में यह जो नाना प्रकार का परमाणुवाद है इन परमाणुओं की, इन अणुओं की धारा यन्त्र से दूरी न जाए वह यन्त्र इनकी अग्नि को ऐसे निगल जाता था जैसे वर्षा काल में मुनिवरो! पृथ्वी, जल को अपने में शोषण कर जाती है। इसी प्रकार वह जो भयंकर अग्नि यंत्रों से उगली जाती थी, उस विशाल अग्नि को वह अपने में शोषण कर जाता। जिसको **''सोमतिति''** नाम की रेखा कहा जाता था। बेटा! उसको भगवान कृष्ण भी जानते थे और लक्ष्मण भी जानते थे। पंचवटी पर रावण आ पहुंचा तो पंचवटी के अन्तर्गत उन्होंने एक रेखा का निर्माण किया और यह कहा हे मातेश्वरी! इस रेखा से तुम बाहर नहीं होना। कितना विज्ञान था? इस विज्ञान की हम कल्पना नहीं कर पाते। जो आंगन में रहने वाला वह भस्म न होता परन्तु जो बाहर से आने वाला प्राणी उस रेखा के अन्तर्गत आते ही भस्म हो जाता था। कितनी विशालता थी, उसमें वह क्या विज्ञान था उसको हमें विचारना है, उसको अपने क्रियात्मक में लाने का प्रयास करना चाहिए। वही तो हमारा जन–जीवन कहलाया गया है, वही तो वेद का एक महान विचार है जिसको लाना है। महर्षि भारद्वाज उस रेखा को जानते थे, महर्षि शांडिल्य भी जानते थे, महर्षि दधीचि भी उसी रेखा को जानते थे। हमारा कौन सा ऋषि ऐसा था जिन्होंने उस रेखा को नहीं जाना,परन्तु वह विज्ञानता वहीं तक कृत (सफल) रहती जहां तक उस रेखा की प्रतिनिधि मानवता में परिणत होती रहती।

मैंने आज बेटा कई समय में इन वाक्यों की चर्चायें की हैं कि आज हमें वैज्ञानिक बनना चाहिए। परन्तु कैसा सुन्दर वैज्ञानिक? लक्ष्मण जैसा वैज्ञानिक, जिन्होनें छः माह में इस रेखा को जाना। रेखा उन परमाणुओं की बनी हुई थी, अग्नि के परमाणुओं को निगल जाए और जल की धाराओं को निगलने की उसमें शक्ति थी। जिसको हमारे यहां बृहस्पति कहते हैं उसमें जल जैसे पृथ्वी मंडल में पार्थिव तत्व प्रधान है इसी प्रकार बृहस्पति मंडल में जल प्रधान होने के नाते उनकी जो तरंगें हैं वायुमण्डल में भ्रमण करती रहती हैं। द्यु–लोकों में वे धराऐं रमण करती रहती हैं। वे धारायें सब एक ही आंगन में विचरण करने वाली होती हैं। **'सोमना कृतिक'** नाम का एक यन्त्र होता है जिसमें यह विशेषता होती है कि वायु मण्डल में जल परमाणुओं को एकत्रित करने की उसमें शक्ति होती है और जल तत्व के परमाणुओं को एकत्रित करके जो उसमें दूसरा भाग जो यन्त्र का होता है उसमें परमाणुओं को अपने में धारण करने की शक्ति उस में होती है और जो तृतीय भाग था उसमें वायु के परमाणु इसी प्रकार पांचों परमाणु जब यन्त्रों के द्वारा एकत्रित किये जाते हैं तो उनमें वह रेखा इस प्रकार विद्युत कृतियों के द्वारा बनती है। उसमें लगभग अग्नि और वायु तत्व प्रधान अधिक होते है। वायु अग्नि तत्व परमाणु अधिक होने के नाते अंतरिक्ष की उसमें पुट होती है। पुट होने के नाते उन तीनों परामाणुओं का मिश्रण होकर के और पार्थिव तत्व और अप्राह वैसी विद्युत लेकर उनका पात बनाकर के उस रेखा का अंगिकृत किया जाता है। मैं आज विज्ञान की चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता हूं। न उसके निर्माण की चर्चा प्रकट करने जा रहा हूं केवल तुम्हें संक्षिप्त परिचय करा रहा हूँ। उस रेखा में यह विशेषता होती है कि यदि आज परमाणुवाद प्रारम्भ हो जाता है तो उस रेखा में, उस यंत्र में इतनी शक्ति होती है कि उन तीक्षण परमाणुओं को ऐसे निगल जाता है जैसे वर्षाकाल

में जल को पृथ्वी निगल जाती है। इसी प्रकार ''अप्रतम ममवेता ब्रह्म व्यापहि स्पत्रका''। वेदों में बेटा! इसका प्रायः विधान भी आता है।

मुझे स्मरण है, महात्मा दधीचि ने अपने जीवन में एक पोथी का निर्माण किया था। वह पोथी विज्ञान के आधार पर थी। परमात्मा की कृपा से उसको दृष्टिपात करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता रहा है। उस पोथी में चन्द्रयान और बृहस्पतियान दोनों यानों के निर्माण की परिक्रिया थी। आज मैं अधिक चर्चायें प्रकट करने नहीं आया हूं विज्ञान की उन धाराओं को प्रायः वर्णन करना नहीं चाहता हूं क्योंकि विज्ञान की धाराओं मुझे आज अभीष्ट नहीं है। वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि आज हम चन्द्रमा में चले जाए। नाना प्रकार के यन्त्रों का हम निर्माण करते रहते हैं क्योंकि विज्ञान तो हमारा जन्म सिद्ध अधिकार होता है। हमें वैज्ञानिक बनना चाहिए। एक माता के गर्भस्थल से प्यारे पुत्र का जन्म होता है वह विज्ञानशाला में आ जाता है। यह जो जगत है, यह जो संसार है, यह परमपिता–परमात्मा का एक विज्ञान भवन है। इसमें प्रत्येक मानव विज्ञान के युग में भ्रमण कर रहा है। विज्ञानशाला में आ जाता है। कृषक के गृह में उत्पन्न होता है तो कृषि विज्ञान उसके द्वारा आ जाता है और भी नाना प्रकार के यन्त्रों के गृह में आ जाता है तो यंत्रों का निर्माण करने लगता है इसी प्रकार के विज्ञान उस का जन्म सिद्ध अधिकार होता है। माता के गर्भ में होता है, पृथक होता है, माता की लोरियों का स्वतः ही पान करने लगता है। यह उस बालक का विज्ञान है। इसी प्रकार ऊर्ध्वगति होती है। उनका शोधन करने लगता है, उनको चुनने लगता है। मानो अपने उदर को भी वैज्ञानिक रूपों से ही परिणत करने लगता है, भ्रमण करने लगता है। आगे चलता है आगे वह चन्द्रयान प्रकाश के लिए रमण करता है। एक योगी बन जाता है। यह जो जगत है यह परमपिता–परमात्मा की विज्ञानशाला है और वैज्ञानिक बनने के लिए प्रत्येक मानव जगत में आता है। वैज्ञानिक बनना चाहिए। अनुभव करते रहना चाहिए प्रत्येक प्राणी को। जो मानव एक परिक्रिया में संलग्न रहता है वह अपने विज्ञान में विमुख (दूर) हो जाता है, और जो मानव इसमें कुछ न कुछ अनुसन्धान करता रहता है, विचार–विनिमय करता रहता है वह विज्ञान में ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो जाता है। मैंने आज से पूर्वकाल में प्रकट कराया कि हमारे यहां ऋषिमुनियों की इस सम्बन्ध में बहुत विशाल उड़ान रही है।

वशीकरण

देखो! वशीकरण का भी विज्ञान होता है, परमाणुवाद होता है, मन का जो विज्ञान है वह बहुत ही विशाल होता है क्योंकि परमपिता का विज्ञान बहुत ही सुन्दर है। एक समय पुलस्य ऋषि महाराज के पौत्र कुम्भकरण ''ब्रह्मव्यापम्'' महर्षि भृंगी आश्रम में प्रविष्ट हो गए। महर्षि भृंगी जी ने अपने आसन को बहुत दूर क्षेत्र में जाकर के स्थिर कर लिया स्थिर करने के पश्चात आदि अभैनू ऋषि महाराज ने कहा कि महाराज! तुम वैज्ञानिक बने हो क्या तुम भी अपने आसन को ऊर्ध्वगति को प्राप्त करा सकते हो? उस समय उन्होंने कहा कि भगवन्! आप को प्रतीत है कि मैं तो राजा रावण के राज्य का एक सूक्ष्म सा वैज्ञानिक हूँ, महर्षि भारद्वाज आश्रम का एक सूक्ष्म वैज्ञानिक हूँ परन्तु ये परमपिता–परमात्मा के राष्ट्र के वैज्ञानिक हैं मैं इनकी तुलना किस प्रकार कर सकता हूँ। **जो परमात्मा के राष्ट्र का वैज्ञानिक बन जाता है वह तो मुनि बन जाता है।** जो भौतिक–विज्ञानवेत्ता होता है वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे ऋषिवर यह वाक्य तुम ने जान लिया होगा कि भौतिक विज्ञान, परमाणु विज्ञान के गर्भ में मृत्यु का स्त्रोत होता है परन्तु जो मानव पंडित बन कर के ऋषि बनता है, ऋषि बन करके जो मुनि बनता है वह अपनी प्रवृत्तियों पर संयम करता है उन का वशीकरण करता है, उस शाकल्य को एकत्रित करके लोक–लोकान्तरों को अपने मन में ही ध्यानावस्थित होकर के परिणत हो जाता है, उनको दृष्टिपात कर लेता है वह प्रभु के राष्ट्र का वैज्ञानिक होता है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! देखो कितना सुन्दर वाक्य उन्होंने कहा कि ये परमात्मा के राष्ट्र का वैज्ञानिक है। आज हमें दोनों प्रकार के राष्ट्रों को विचारना चाहिए। आत्मा का राष्ट्र भी विचारों और भौतिक जो राष्ट्र है उसके ऊपर भी कल्पना करते रहो।

बेटा! मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने तो आज नहीं आया हूँ कि मैं विज्ञान की वार्ता ही प्रकट करता रहूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि दोनों विज्ञानों का मानव को समन्वय करना चाहिए, दोनों का समन्वय करते हुए हम परमपिता की महानता, को जानते हुए, अखंड ज्योति को जानते हुए इस संसार–सागर से पार हो जाएं। बेटा! मैं आज विज्ञान के युग में अधिक नहीं जाना चाहता हूं। न विज्ञान की क्रियात्मक चर्चाएं करने का कोई ऐसा मेरा सौभाग्य है। परमपिता–परमात्मा की महिमा को सदैव जानते रहो। उस अंखड ज्योति को जो

हमारे शरीर में, हृदय में, मस्तिष्क मे प्रदीप्त हो रही है उसको ही जानने का प्रयास करोगे तो हम सर्वत्र संसार का शीघ्र दर्शन कर सकते हैं।

यह है बेटा ! आज का हमारा वाक्। आज मैं अधिक वार्त्ता प्रकट करनें नहीं आया हूँ। वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें नाना प्रकार के यन्त्रों को भी जानना चाहिए परन्तु मनुष्यत्व को भी तो जानना चाहिए। उसी मनुष्यत्व की प्रवृत्तियों में मानव सदैव रमण करता रहता है। कल समय मिलेगा कल तो मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ चन्द्रयान की चर्चाएं करेंगे। आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। **आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय है कि हम प्रभु की महिमा का गुणगान गाते रहें।** आज मैंने अपने प्यारे ऋषि के कुछ प्रश्नों का उत्तर, उनकी प्रेरणा के आधार पर कुछ विज्ञान की चर्चाएं प्रकट की हैं। कल मेरे प्यारे महानन्द जी संक्षिप्त विज्ञान की चर्चा प्रकट करेंगें। आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारा विज्ञान पर तो जन्म सिद्ध अधिकार होता है। वैज्ञानिक प्राणी को बनना चाहिए। परमात्मा का जो जगत है ये विज्ञानशाला है। इसी प्रकार जब हम इस जगत को विज्ञानशाला दृष्टिपात करेंगे तो हम अपने विज्ञान में सफलता को प्राप्त होते हुए इस संसार–सागर से पार हो जायेंगे। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।
पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।
पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : 3 अगस्त 1971
समय : रात्रि 8.30 बजे।
स्थानः महाशय कृष्ण हाल, जोर बाग, नई दिल्ली

६. भौतिक आध्यात्मिक विज्ञान का समन्वय ४ अगस्त १६७१

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां जो पठन–पाठन अनुपम प्रक्रियाएं हैं वह सदैव पवित्रता में परणित होती रहती हैं। क्योंकि परमपिता–परमात्मा तो विज्ञानमय है, वह आनन्द में रमण करने वाला है। उस मनोहर देव की महिमा का गुणगान हम प्रायः गान रूपों में उसका वर्णन करते रहते हैं क्योंकि परमपिता–परमात्मा का नाम गायन रूपों में ही परणित किया जाता है। हमारे ऋषिमुनियों ने कहा है, गान होना चाहिए परन्तु गायन किस प्रकार किस का हो? उसी का हो जिसका उद्गीत होता है। **उदगीत किसे कहा जाता है?** जिसका उदय होता है उसी का उद्गीत होता है। संसार में कौन उदय होता है? उदय होने वाला मेरा प्यारा प्रभु ही होता है। परन्तु वह सदा रहने वाला है उसका उदय होने का वाक्य मिथ्या हो जाता है। परन्तु इसमें विचार यह है कि उदय होने का अभिप्राय क्या है? वह सर्वत्र रहने वाला है, सर्वत्र कण–कण में उसकी ज्योति व्याप रही है परन्तु उसको उद्गीत इसलिए कहा जाता है कि उस मानव की वाणी में सत्यता की एक महानता ओत–प्रोत हो जाती है तो बेटा! उस वाणी का वह उद्गीत कहलाया गया है, उस वाणी का उद्गीत होता है। मानो कि वह सर्वत्र है परन्तु उस वाणी का उद्गीत है। वही गान गाता है जो सत्यवादी होता है। **ऋषिजन कहते हैं कि सत्य में ही महान प्रभु रमण करने वाला होता है।** जिस मानव के द्वारा सत्यता एक महान गुण हो जाता है। तो बेटा! वहां जो प्यारा प्रभु है उसका उद्गीत होता है और वह उस वाणी के महान सर्ग में, उसका उसी के द्वारा उदय होने लगता है तो मानव का उदय होने लगा है। उसके प्रकाश के आंगन में ही तो उदय होता है। जिस प्रकार स्वप्न अवस्था होती है, उस समय यह **मन आत्मा के प्रकाश में उदय हो जाता है।**

उदगीत से मानव का उदय

मुनिवरो ! शरीर में नद नहीं होते, परन्तु नदों का निर्माण हो जाता है। समुद्र नहीं होते, समुद्रों को निर्माण हो जाता है। संसार के नाना प्रकार के भोग विलास और राष्ट्र भी होते हैं। यह परमात्मा के प्रकाश में ही तो उद्गीत गाता है। इसी प्रकार यह जो वाणी है इसका सम्बन्ध हृदय से हो जाता है तो यह मेरे उस प्यारे प्रभु का उद्गीत गाता है क्योंकि उदगीत जिसका गाता है वह उस मानव का उदय हो रहा है, प्रभु का उदय नहीं, परन्तु उस मानव का ही उदय हो रहा है वह जो उदय हो रहा है वह उस उद्गीत के द्वारा और उद्गीत मन के द्वारा, वाणी के द्वारा, गान रूपों में वह गाया जाता है इसीलिए प्रभु को गाना चाहिए। गान रूपों में उसकी प्रतिभा का वर्णन करना चाहिए। जितना वेद का पठन–पाठन है, उसमें जो नाना प्रकार के सुर हैं सब उद्गीत कहलाए गए हैं। **वेद का वही उच्चारण करने का अधिकारी होता है, जिसकी वाणी में सत्यता होती है** और यदि सत्यवाद नहीं होता, सत्य की प्रतिष्ठा नहीं होती मानव के द्वारा तो वेद का उच्चारण करना उसके लिए व्यर्थ हो जाता है। उसका उदगीत वह सुन्दर रूपों में नहीं गा पाता। वह केवल पक्षी की भांति एक रटत अब्रेत विद्या हो जाती है। **नाम गान का अभिप्राय है कि अपने को प्यारे प्रभु में तनमय करने का गान है वह उद्गीत कहलाया गया है।** मैं आज उदगीत की विवेचना तो करने नहीं आया हूं। आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है? हम अपने प्यारे प्रभु का गान गाते चले जायें।

प्रभु का विज्ञान

वेद का वाक्य हमारा क्या कह रहा है कि हम नाना प्रकार के उस विज्ञान को जिस विज्ञान में प्रभु सदैव रमण करता रहता है, सर्वत्र कण–कण में उसकी प्रतिभा हमें दृष्टिपात आ रही है। आज हम अपने उस देव की महिमा का गान गाते हुए विज्ञान की नाना धाराओं को जानने लगते हैं। जितनी भी धारायें हैं संसार में, जितना भी विज्ञान है, उसका जो स्त्रोत है वह मेरा प्यारा प्रभु चेतनामय ही तो माना गया है। यह जो परमात्मा का हमें सुन्दर जगत दृष्टिपात आ रहा है, नाना सौर मंडलों वाला यह जो जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। नाना सूर्यों

वाला जगत जो हमें दृष्टिपात आ रहा है, नाना गंधर्व लोकों वाला जगत जो यह हमें दृष्टिपात आ रहा है, वह कितना महान है। नाना प्रकार के लोक–लोकान्तर वायु–मण्डल में, ध्रुव–लोक में, रमण करते रहते हैं, अन्तरिक्ष में उनकी प्रतिष्ठा होती है, परन्तु कैसा मेरा प्यारा प्रभु विचित्र कलाकार है कि एक लोक दूसरे लोक से मिलान नहीं करता। जब समय आता है तो एक मंडल एक दूसरे से मिलान करता है। एक दूसरे लोकों में एक दूसरे लोकों की प्रतिष्ठा हो जाती है। वे प्रतिष्ठित हो जाते हैं। उस समय वह पंच–भूत एक आंकचन शक्ति में परिवर्तित हो जाते हैं। उस काल को हमारे यहां **प्रलय** रूप ही तो कहा गया है।

आज हम नाना प्रकार के लोक–लोकन्तरों की कल्पना प्रकट करने लगते हैं, नाना चन्द्रमाओं की कल्पना करने लगते हैं, नाना सूर्यों की कल्पना करने लगते हैं, परन्तु एक अपने प्यारे प्रभु की सुन्दर कल्पना नहीं करते जिसके अन्तर्गत ये सर्व–मंडल अपनी–अपनी प्रक्रिया कर रहें हैं। हमें अपने प्यारे प्रभु को भी तो जानना चाहिए, उस पवित्र आभा को भी तो जानना चाहिए, जिस आभा के कारण मानव मानव बना हुआ है, प्रत्येक योनि अपने कार्य में रत्त हो रही है वह मेरे उस प्यारे प्रभु की ही तो विचित्रता है। आओ, आज हम अपने प्यारे प्रभु के आंगन में विभोर हो जायें, तनमय हो जायें, अपने को उस में समर्पित करते चले जायें, तो वह मेरा प्यारा प्रभु ऐसे हमें अपने ह्रदय में ह्रदयग्राही बना सकता है। जिस प्रकार माता का पुत्र क्षुधा से पीड़ित हुआ माता अपने ह्रदय से ह्रदयग्राही बना लेती है। इसी प्रकार हम अपने प्यारे प्रभु के उस आनन्दमय, विज्ञानमय, स्त्रोतमय आंगन में जाते हुए अपनी महान प्रक्रिया को, अपने जीवन की महानता को उसको समर्पित करते चले जायें, क्योंकि वह देव कितना विचित्र है लोक–लोकान्तरों का स्वामी है।

जब मैं संसार के विज्ञान में जाने लगता हूं इन लोक–लोकान्तरों की माला के सदृश्य इनकी गणना करने लगते हैं, कि यह सूर्य–मंडल है, यह बृहस्पति है, यह आरूणी–मंडल है, यह अरून्धति–मंडल है, यह वशिष्ठ–मंडल है, सप्त–ऋषि–मंडल है, ध्रुव–मंडल है, जेठाय–नक्षत्र है, माधुरी–मंडल है, सुरीति–मंडल है, पुष्प–नक्षत्र है, स्वाननी है, सोभनी है, माक–केतु है, चाक्राती है, नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों को जब माला के सदृश दृष्टिपात करने लगते हैं। तो यह जो नाना प्रकार के मनके रूपी मंडल हैं तो इनका धागा भी तो कोई न कोई होगा जिसमें लोक–लोकान्तर इतने पिरोए हुए हैं जिस प्रकार यह पृथ्वी–मंडल एक आंगन में, एक अप्रिति में पिरोए हुए हैं, अपने आंगन में भ्रमण कर रहे है। चंद्रमा अपने आंगन में भ्रमण कर रहा है, मंगल अपने आंगन में भ्रमण कर रहा है नाना प्रकार के लोक–लोकान्तर बेटा! एक ऋत और सत्य में प्रतिष्ठा मानी गई है। ऋत और सत्य में जब इनकी प्रतिष्ठा हो जाती है तो वह चैतन्य देव मेरा प्यारा प्रभु है, वहीं तो इन मनकों में धागा बना हुआ है। उसी के कारण यह लोक–लोकान्तर अपना कार्य कर रहे हैं, अपने–अपने आंगन में भ्रमण कर रहे हैं, एक दूसरे की किरणों से, अपनी आभा से एक दूसरे की आर्कषण शक्ति से सर्वत्र जगत अपना कार्य कर रहा है। कैसी उस महान मेरे देव की महिमा है।

वैज्ञानिक बनने की प्रेरणा

आज तुम्हें उन नाना प्रकार के लोक –लोकान्तर में जाने के लिए तत्पर होना है। एक वैज्ञानिक सूर्य–मंडल की कल्पना करता है कि मैं सूर्य–मंडल में जाना चाहता हूँ। **सूर्य–मंडल में अग्नि तत्व प्रधान है** इससे मुझे उस यंत्र का निर्माण करना होगा, जिसमें अग्नि तत्व प्रधानता वाला अपरिचित होना चाहिए, जिससे मैं सूर्य–मण्डल की यात्रा कर सकूं।

जैसे मानव का सूक्ष्म–शरीर होता है, जो पंच–तन्मात्राएं होती हैं उनको अग्नि नष्ट नहीं करती, उनको सूर्य की अग्नि भी नष्ट नहीं करती, चन्द्रमा की जो सोममयी शीतल कान्ति है वह भी शीतल नहीं कर पाती, वे जो तन्मात्राऐं जैसे पृथ्वी मंडल पर हैं इसी प्रकार की सूर्य–मंडल में भी रमण कर रही हैं। जब मानव इस शरीर को त्यागता है तो सूक्ष्म–शरीर के साथ में स्थूल पंच–महाभूत न जाकर सूक्ष्म–तंमात्राएं जाती हैं। सूक्ष्म–तंमात्राओं के द्वारा मानव रमण करता रहता है। मानव इस जगत मे रमण करता हुआ उन्हीं तंमात्राओं के द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार की प्रतिभा होती है। उन्हीं के मध्य में मानव के जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते हैं। परन्तु वे जो तंमात्राएं हैं उन तंमात्राओं वाला जो प्राणी होता है इसी प्रकार स्थूल पदार्थों को न जान करके जब सूक्ष्म तंमात्राओं को मानव जानने लगता है तो उसका जब यंत्र बनता है, तो उस वाहन पर विराजमान होकर सूर्य कि जब यात्रा करता है तो उसको वह सूर्य की अग्नि भस्म नहीं कर पाती।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें विचार–विनिमय करना है कि आज हम इस विज्ञान की कल्पना में चले जाए। वास्तव में यह जो विज्ञान है यह एक प्रकार का काल्पनिक माना गया है। इसमें कल्पना मात्र है। यह मानव को स्वप्नवत है। इसी प्रकार यह भौतिक विज्ञान होता है यह भी एक प्रकार का स्वप्नवत माना गया है। परन्तु वे जो स्वप्नवत प्रक्रियाएं हैं, वे मानवीयता में ही रमण करने वाली नहीं, लोक–लोकांतरों में भी वह स्वप्नवत ही दृष्टिपात आने लगती हैं।

मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा था कि यह जो चन्द्रमा है इस में आज का प्राणी यंत्रों के द्वारा भ्रमण कर रहा है। मुझे यह कोई नवीन वाक्य तो प्रकट नहीं करा रहे हैं क्योंकि हमारे यहां नाना वैज्ञानिक हुए जिनका वहां गमन होता रहा है, रमण करते रहे हैं, उसमें रमण करते हुए शयन प्रक्रियायें भी धारण कर लेते हैं।

मेरे विचार में कुछ ऐसा भी माना गया है कि वहां यंत्रों को स्थित कर देते हैं। वहां वैद्यशाला बना देते हैं। परन्तु वैद्यशाला बना करके विचार यह आता है कि यदि हम चन्द्रमा पर वैद्यशाला बना आएं तो उस वैद्यशाला का उपयोग क्या होगा? कौन उसको क्रियात्मक रूप में ला सकेगा। विचार यह है कि जैसा वहां का प्राणी मात्र होगा उसी प्रकार की वैद्यशाला बनाना उनके लिए उपयुक्त है। यदि हम उस रूप में न लाकर के अपने रूप में परणित कर दें तो उसका उपयोग उन्हीं प्राणियों को हो सकता है जिन प्राणियों के लिए उसी रूप से जिसका निर्माण हुआ है, उसी स्थूलता से हुआ है उन्हीं तत्वों की प्रधानता में उसके लिए उपयोगी होता है। यह सार्वभौम सिद्धान्त है हमारे यहां यह नवीन वाक्य नहीं है।

रहा यह वाक्य की आज चन्द्रमा की यात्रा करने में सफलता को प्राप्त हो जाना तो यह परम्परागतों से ही यह विज्ञान की धाराएं मानव के मस्तकों में विराजमान रहती हैं क्योंकि मानव का जो जीवन है, मानव का जो शरीर है, इसका मेरे प्यारे प्रभु ने निर्माण किया है उसका निर्माण ही इस प्रकार का है। इसकी जो निर्माणमयी वेदी है वह इस प्रकार की है कि वह विज्ञान को अवश्य ही विचार–विनिमय करने लगता है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं आज अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ, वाक् उच्चारण करने का हमारा केवल अभिप्राय यह है कि एक मानव चन्द्रमा की यात्रा करता हुआ चन्द्रयान बनाता है। चन्द्रमा में जा करके यदि अपने पार्थिव प्राणियों को दृष्टिपात करता है और उन्हें पान करने लगता है उनमें अपना गमन करना आरम्भ कर देता है तभी वहां अपनी वैद्यशाला बनाना उनके लिए उपयोगी हो सकता है।

धर्म

रहा यह वाक्य कि प्राणी मात्र का एक ही धर्म है जिसे वेद कहते हैं। हमारे यहां कुछ ऐसा माना जाता है कि सर्वत्र जो धर्म है, धर्म क्या है? मानो **वेद नाम प्रकाश का है। अंधकार को त्याग कर प्रकाश के मार्ग को जाना ही संसार में धर्म माना गया है।** मेरे प्यारे ऋषिवर! उसी को तो धर्म कहते हैं। ऋषियों ने कहा है, योगियों ने कहा है कि मानव का अंधकार को त्यागना और प्रकाश को लाना ही धर्म कहलाया गया है। राष्ट्र हो, समाज हो, मानव हो, ऋषित्व हो, देवत्व हो, उसका एक ही धर्म है जिसको प्रकाश कहते हैं। प्रकाश नाम वेद का ही तो माना गया है वह बुद्धि युक्त है। वह प्रज्ञा युक्त कहलाया गया है। वह परमात्मा के द्वार पर जाने की हमें घोषणा करता है।

प्यारे ऋषिवर! आज हमें उस प्रकाश को अपनाना चाहिए। **प्रकाश नाम सत्य को कहा गया है,** और सत्य में ही वह मेरा प्यारा प्रभु! विज्ञानमय जो देव है वह सत्य में ही रमण करता है। इसीलिये बेटा! वह प्रकाश ही उसका धर्म कहलाया गया है। धर्म की मीमांसा करते हुए हमारे आचार्यों ने बहुत ही सूक्ष्म–सूक्ष्म वाक्य प्रकट किए हैं। परन्तु विचार केवल यह कि ''प्रवाह स्वास्ति रूद्रोः'' धर्म ही मानव का प्रकाश है प्रकाश को जानो। प्रकाश ही सत्यवाद में रमण करता है, और **वह जो सत्यवाद है वही उदगम है, वही आनन्द है, आनन्द में ही प्रभु रमण करने वाला है।**

मेरे प्यारे ऋषिवर ! अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ अपने शब्द उच्चारण करेंगे। वाक् हमारा क्या कह रहा है? हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगाान गाते चले जा रहे थे। हम अपने देव की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे जो विज्ञान में रमण करने वाला है। **जब मैं अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाने लगता हूं, तो हमारा हृदय गद्‌गद् होने लगता है** और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अपने

देव की महिमा का गुणगान गाते रहें। उसकी ही प्रतिभा में हम रमण करते रहें। वही हमारा एक आनन्दमय कहलाया गया है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ शब्दों का प्रतिपान करेंगे जो इनका विचार है।

पूज्य महर्षि महानन्द जी के उद्‌गार

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ! ऋषि मंडल ! मेरे भद्र समाज। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अपना अमूल्य समय प्रदान किया। उनके समक्ष हम यदि कोई वाक् उच्चारण करने लगते हैं तो हम अपने में यह स्वीकार करते है जैसे दिवस रात्रि दोनों का भेद होता है। जब हम यह विचारते है कि इसके पश्चात मुझे क्या उच्चारण करना है तो हमें कोई स्थान ऐसा प्राप्त नहीं होता जिससे हम कुछ शब्दों का प्रतिपादन कर सकें। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव अभी प्रभु की महिमा का और विज्ञान का और धर्म का विश्लेषण कर रहे थे और उन तीनों का समन्वय करने जा रहे थे।

आज का विज्ञान

आज हम यह उच्चारण करने के लिए आ पहुंचे हैं कि हमारा जो जीवन है उसका सम्बन्ध विज्ञान से बहुत ही रहता है इसीलिए विज्ञान को जानना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य होता है। आज का यह समाज, आज का जो जगत है इसको हम विज्ञान का जगत उच्चारण कर सकते हैं, इसको हम तन्मात्राओं वाला जगत उच्चारण करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। आज के मानव की जो उड़ान है वह एक महान है परन्तु इतनी महान नहीं है। आज का मानव चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। चन्द्रमा पर विश्राम कर रहा है। परन्तु यह हमारे लिए कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि यह परम्परा हमारे यहां रहती है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कल के वाक्यों में नाना वैज्ञानिकों का निर्णय कराया । आज का यह जो प्रवाह है यह केवल इस पृथ्वी—मंडल का ही नहीं है। **प्रत्येक लोक—लोकान्तरों में जिसमें प्राणी रमण करते हैं, वे प्राणी सर्वत्र विज्ञान के युग में ही रमण कर रहे हैं।** नाना प्रकार की तन्मात्राओं वाला विज्ञान तो परम्परागतों से एक रस में रमण करने वाला है परन्तु आज का मानव चन्द्रमा की यात्रा, मंगल ही यात्रा, शुक्र में जाने के लिए तत्पर हुआ है। मंगल तक नहीं पहुंच पाया। शुक्र में यन्त्रों का प्रवाह चल रहा है। उसके निकट तो नहीं जा सका है अभी दूरी है, परन्तु यन्त्रों का प्रवाह चल रहा है। इसी प्रकार चन्द्रयान के लिए इस पृथ्वी मंडल का प्राणी यह कल्पना कर रहा है कि आज हम ऐसी धातु को जानना चाहते हैं जिस धातु को जान करके उसको यहां मडल पर लाया जाए और उससे किन्हीं यंत्रों का और भी निर्माण किया जाए।

पूज्यपाद—गुरूदेव की अनुपम कृपा से जब मैं चन्द्रमा की यात्रा के लिए कल्पना करने लगता हूं तो पूज्यपाद गुरूदेव की विज्ञान की वार्ता स्मरण आने लगती है। जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ कि आज का जो वैज्ञानिक है पर्वतों के आंगन में विश्राम कर रहा है, उनका यंत्र कक्ष में भ्रमण कर रहा है। जब मैं यह दृष्टिपात कर रहा हूँ तो चन्द्रमा से ऊपरले जो मंडल हैं द्वापर काल के भीम और घटोत्कच के यंत्र अब तक रमण कर रहे हैं। उससे ऊपर के यंत्र भी रमण कर रहे हैं। उन्होनें इससे ऊंचे अप्रत्यक्ष लोकों की जिसको हमारे यहां **ऋषिक्रातकेतु** यंत्र कहा जाता है जो **सूर्य—मंडल के कक्ष से ऊंचा भ्रमण कर रहा है।** आज मुझे यंत्रों की प्रतिभा तक स्मरण आ रही है। मेरे प्यारे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे बहुत पूर्वकाल में स्मरण कराया था। आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। इसी प्रकार इनका जो आज का विज्ञान है यह मानव उतना तो नहीं पहुंच पाया परन्तु देखो उससे कुछ सूक्ष्म भी नहीं रहा है। यह उच्चारण करने के लिए मैं सदैव तत्पर हूं।

चन्द्रमा व मंगल का भौतिक विज्ञान

आज का जो भौतिक—विज्ञान है वह चन्द्रमा के कक्ष में ही नहीं परन्तु आगे बढ़ा है। आगे इसकी उन्नति और भी होने वाली है। यह चन्द्रमा के कक्ष में भी जायेगा। बृहस्पति के द्वारा भी आज का विज्ञान जा सकता है। मुझे तो ऐसा भी प्रतीत होता जा रहा है कि चन्द्रमा में एक 'मानव—समाज' बनाने के लिए विचारा जा रहा है यंत्रों के द्वारा यहां देखो स्थल अपूत—मानव देखो बना भी सकता है परन्तु आज का समाज आज का राष्ट्रवाद, आज का जो मानव इसी पृथ्वी—मंडल का है वह तो अग्नि के निकट विराजमान हो गया है। मुझे तो सर्वत्र यदि कोई कष्ट है तो यही। आज मैं जब यह उच्चारण करता हूँ कि आज का जो जगत है न तो मंगल की यात्रा ही इसके लिए कोई असम्भव है, सर्वत्र सम्भव है। मैं यह कहा करता हूं कि मंगल की यात्रा करना इसके लिए सुलभ है, वहां से नाना धातु प्राप्त हो सकती हैं। पार्थिव प्राणी रमण करते रहते हैं परन्तु **चन्द्रमा में तो पर्वत हैं, प्राणी**

भी इस प्रकार के जो इन्हें दृष्टिपात नहीं आते क्योंकि यह इन श्रद्धयों से, इस स्थुल यंत्रों से दृष्टिपात करना चाहते हैं। अरे! **यह तो सार्वभौम सिद्धान्त हमारे यहां वैदिकता में माना गया हैं कि जिस मंडल में पर्वत हैं, जल इत्यादि हैं वहां प्राणी का वास भी अवश्य ही रहता है।** रहा यह वाक्य कि प्राणी किस प्रकार से रहता है? यह आज का विज्ञान उसे जान पाये न जान पाये यह तो आगे ही घोषणा करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, न मैं इसको उच्चारण कर सकता हूँ, वहां स्थान बनाने के लिए भी वह सफल हो सकता है और हो जाएगा परन्तु यह जो पृथ्वी–मंडल का प्राणीमात्र है वहां प्रत्येक प्राणी के मन में घृणा की, द्वेष की और स्वार्थ की अग्नि ऐसी प्रदीप्त हो गई है जैसे यज्ञशाला में घृत ही अग्नि प्रचंड हो जाती है। इस समाज का मुझे यदि कोई अप्रत (खेद) रहता है तो यही रहता है। मंगल का प्राणी पृथ्वी–मंडल पर भ्रमण कर लेता है, समुद्रों की यात्रा कर लेता है। वहां का विज्ञान मैंने बहुत पूर्व काल में प्रगट कराया, बहुत ही महान और पूर्णता में परणित रहा है। वहां के विज्ञान की धाराएं विचित्रता में रमण करती रही हैं। ऐसा–ऐसा यंत्र है कि वह एक रात्रि एक दिवस में चन्द्रमा की क्या चन्द्रमा के कक्ष से होता हुआ पृथ्वी मंडल का समुद्रों की यात्रा करके दूसरी रात्रि दूसरे दिवस में अप्रेत को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का जो विज्ञान आज मुझे इस प्रभु के जगत का दृष्टिगत आता है तो मैं तो बड़ा आश्चर्य चकित होता रहता हूँ और मुझे आश्चर्य होता रहता है कि आज का मानव पृथ्वी मंडल की शय्या को त्याग करके चंद्रमा को किस प्रकार शैया बना रहा है। यह तो हमारे सभी का सौभाग्य रहता है परन्तु आध्यात्मिवाद तो यह है नहीं, यह भौतिकवाद है। इस भौतिकवाद के गर्भ में यदि अभिमान न आ जाए तो आध्यात्मिकवाद में इसका परिवर्तन हो सकता है। परन्तु क्या करें भौतिकवाद में प्रकृति और 'मैं' के बाद के अभिमान की मात्रा होती है। यह अपना कृत नहीं है यह परम्परा की ही वार्ता मानी जाती है।

मुझे बड़ा हर्ष होता है मैं पूज्यपाद गुरूदेव को हर्षध्वनि करके यह वाक्य कहा करता हूँ कि पृथ्वी का प्राणी चन्द्रमा पर भ्रमण कर रहा है। हमारे लिए तो आश्चर्य नहीं, हमारे लिए तो यह एक ऐसा अकृत है जो बहुत ही सहज है। अभी तो एक ही भाग में उन्होंने रमण करना प्रारम्भ किया है। **आगे जब भ्रमण करेंगे तो उन्हें वहां जलाशय पुनः प्राप्त होंगे। अभी तो इन्हें पर्वत, वृक्ष आदियों के सौन्दर्य का ही दिग्दर्शन हुआ है, प्रकृति की गोद में ही तो है परन्तु वह प्रकृति की गोद को त्याग करके जब आगे जाकर के अपनी प्रतिभा में पहुंचेंगे तो वहां इन्हें और भी सौन्दर्य दृष्टिपात आएगा।** इस प्रकार का जो विज्ञान है वह बड़ा हर्षध्वनि के योग्य है। देखो तीन अप्रेत–वैज्ञानिक मृत्यु को भी प्राप्त हो गए हैं। मृत्यु भी ऐसे विज्ञान में प्रायः हो ही जाती है क्योंकि जब मानव अपने जीवन की धारा को त्याग करके दूसरे लोक की कल्पना करता है तो उसका जीवन सुरक्षित तो रहता नहीं। वह तो एक प्रभु के आश्रित होकर के, अपनी श्रद्धा के आश्रित हो करके, अपने जीवन की प्रक्रिया को त्याग करके कक्ष में चला जाता है जहां उसे प्रकृति का सौन्दर्य दृष्टिपात आता है। वह जो प्रकृति है वह कितनी महान और सुन्दर मानी गई है। परन्तु इस विज्ञान का लाभ क्या है? इस विज्ञान का लाभ यह कि मानव के मस्तिष्क की उसके हृदय की उड़ान है। कहां तक उसके मस्तिष्क की उड़ान है?

मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव ने मुझे दृष्टिपात कराया। कल ही दिग्दर्शन करा रहे थे कि विष्णु राष्ट्र में जो महाराजा गरूड़ थे नाना लोक–लोकान्तर तक उनकी उड़ान रही। बृहस्पति तक और ध्रुव तक उनकी उड़ान रही। हमारे ध्रुव नाम के आचार्य हुए हैं। उत्तानपाद के पुत्रों का जीवन सदा विज्ञान में परणित रहा है। मुझे स्मरण आता रहता है उनका विज्ञान, जब वे भारद्वाज और सैयमी ऋषि महाराज द्वारा पहुंचे महर्षि रेमुनि और महर्षि सोमभानु ऋषि के द्वारा पहुंचे। उन्होंने उनके द्वारा शिक्षा को अध्ययन किया। उनका विज्ञान इतनी उड़ान में परणित रहा कि ध्रुव–मंडल तक उनकी उड़ान रही।

वर्तमान भौतिक विज्ञान का परिणाम

मानव का जो मस्तिष्क है वह कितना विकसित हो सकता है विचारना तो हमें यह है। इस मस्तिष्क का निर्माण मेरे प्यारे प्रभु ने किया है। मानव निर्माणवेत्ता ने वह अंकुर विराजमान कर दिए। इन अंकुरों को जान कर के उस मानव का मस्तिष्क विकसित होता हुआ लोक–लोकान्तरों की यात्रा करने के लिए तत्पर हो जाता है। इसी प्रकार का विज्ञान हमारे यहां परम्पराओं से मानव का जन्मसिद्ध अधिकार रहा है। मुझे तो सदैव यह दृष्टिपात आता है। मैं कोई अधिक चर्चा आज प्रगट करनें नहीं आया। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। कि आज का विज्ञान और भी गतिशील बनेगा, गतिशील बनता चला जायेगा। **चन्द्रमा पर इन्हें जाकर के सब कुछ**

प्राप्त होगा। जब आगे यह रमण करेंगे तो वहां का प्राणी मात्र इनके दृष्टिपात आए या न आए इसके सम्बन्ध में मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता। परन्तु वाक्य यह कि यह बड़ा हर्ष का वाक्य है मेरा हृदय यदि दुःखी कभी होता है तो इसलिए होने लगता कि आज के मानव में कितना स्वार्थवाद आ गया है। आज का मानव अग्नि की वेदी के समीप विराजमान हो गया है। जिस प्रकार अग्नि की वेदी के निकट समिधा विराजमान हो जाती है और आवश्यकता होने पर समिधा उसमें भस्म हो जाती है, अग्नि प्रदीप्त होती रहती है, इसी प्रकार मुझे तो ऐसा दृष्टिपात आ रहा है। भगवन्! आज का यह जो जगत है, आज का पृथ्वी–मंडल का प्राणी है, किसी भी राष्ट्र में जाओ, किसी भी राष्ट्रीय विचार धारा वाले से चर्चाएं प्रकट करो तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके मुखारविन्द से अग्नि प्रदीप्त हो रही हो इसका मूल कारण क्या है! मूल कारण यह भौतिक विज्ञान है। **इस भौतिक विज्ञान के गर्भ में अभिमान है वह अभिमान अभी पूर्ण रूप से उद्‌गम नहीं हुआ है।** इसका उत्थान नहीं हुआ है। जब उसका उत्थान हो जाएगा जब यह स्वार्थवाद की अग्नि इस प्रकार प्रदीप्त रहेगी, मानव के हृदय से ऐसा परमाणुवाद अंतरिक्ष में ओत–प्रोत रहेगा तो कुछ काल में यह समाज अग्नि की उस ज्वाला से भस्म हो जायेगा ऐसा मुझे दृष्टिपात आता है। मैंने कई कालों में यह चर्चाएं प्रकट की हैं आज भी इन चर्चाओं की पुनःरूक्ति करने जा रहा हूँ क्योंकि यह समाज जैसा मुझे दृष्टिपात आता है वैसा ही उच्चारण करना मेरे लिए शोभनीय है। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को इन वाक्यों को निर्णय करता रहता हूँ कि भगवन्! आज का समाज, आज का राष्ट्रवाद उस राष्ट्रीयता को न जानता हुआ स्वार्थ की वेदी पर भस्म होने जा रहा है। हे भगवन्! आज का यह जो महान जगत है, यह ऐसा जगत है कि इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। जहां मानव मानव का भक्षण करके मग्न होता है। जहां मानव मानव ही रक्षा करने के लिए तत्पर होता है वहां का मानव प्रिय होने लगता है। हर्ष ध्वनि करता है। मानव आज तेरी यह क्या दशा बनती चली जा रही है? आज तू कौन से कक्ष में भ्रमण कर रहा है? न तो चन्द्रयान का ही कक्ष यह कहलाता है। मानव एक दूसरे के रक्त का पियासा है, एक धर्म की प्रतिभा को न जान करके, धर्म की अग्नि को न जानता हुआ अधर्म के मार्ग पर चलता हुआ उसी को वह धर्म स्वीकार करता है। इस अग्नि को शान्त करने के लिए किसी के द्वारा कोई स्थान नहीं है। कोई स्थान है तो उसे मानव कर नहीं पाता।

अशुद्ध परमाणु शान्त करने का मार्ग

यदि राष्ट्र में प्रत्येक मानव, संसार का प्रत्येक मानव यज्ञ करना प्रारम्भ कर दे तो इसके जो परमाणु है वह अशुद्ध परमाणुओं को निगल करके शुद्ध वातावरण को परणित कर सकते हैं। यदि मैं आज वैज्ञानिकों के द्वारा जानता हूँ वैज्ञानिकों से यह प्राप्त करने लगता हूँ कि क्या यह जो तुमने नाना प्रकार के अग्नि अस्त्रों का निर्माण किया है, परमाणुवाद का निर्माण किया है इसके शान्त करने का कोई मार्ग है? तो वैज्ञानिक कहते हैं इसका कोई मार्ग नहीं। यदि कोई सूक्ष्म सा हमें प्राप्त होता है तो गो रस, गो द्रुत अग्नि में प्रदीप्त करने से ही वही परमाणु उत्पन्न हो करके इन परमाणुओं को निगल सकते हैं अन्यथा कोई ऐसी शक्ति नहीं, कोई ऐसा कर्म नहीं जो इसको निगल सकते हों। या इनको सूक्ष्म बनाया जा सकें इस प्रकार का विचार वैज्ञानिक युग में प्रायः आता रहा है। परन्तु आज के जगत ने गो रस को अग्नि में प्रदीप्त करने को पाखंड स्वीकार कर लिया है, पाखंड उच्चारण करता है। जब राष्ट्र का राष्ट्रीय विचार धारा वाला पाखंड उच्चारण करता है तो उसके मस्तिष्क में पाखंड की ज्योति जागरूक, पाखंड की अग्नि ऐसे प्रदीप्त हो रही है कि एक समय वह आएगा कि पाखंड की अग्नि उच्चारण करते समय उसी को निगलती चली जाएगी। ऐसा मुझे प्रायः दृष्टिपात आता रहता है। **मानव आज तुझे सात्विकता और महानता को अपनाना है तो यज्ञों का करना ही तुम्हारे लिए सर्वत्र श्रेष्ठ माना गया है।** इससे अग्नि का शोधन, देवत्व का शोधन होता है। मैं कोई अधिक चर्चा प्रगट करनें नहीं आया हूँ। मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि आज का समाज आज का चन्द्रयान बहुत ही सुखदमय मुझे दृष्टिपात आ रहा है। परन्तु मैं भविष्य की चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। भविष्य की चर्चा भविष्य वाला ही जानता है, वह प्रभु ही जानता है। मैं तो अपने पूज्यपाद–गुरूदेव से आज्ञा पाने के लिए आया हूँ। मैंने तो संक्षिप्त परिचय यह दिया कि आज का समाज, आज का विज्ञान तो जहां जा रहा है, उसमें मानव को जाना चाहिए। स्थान भी बनेगा। परन्तु देखो – "ब्रह्म व्यापे बृणे अस्ति" आज उसी प्रकार यह समाज अग्नि की वेदी पर जो विराजमान हो गया है उससे प्रतीत होता है कि यह यान इत्यादि सर्वत्र उनका विकास शान्तमय हो जायेगा ऐसा भी किसी–किसी काल में

शंका उत्पन्न हो जाती है। मैं अपने विचारों को शान्त कर रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। वे मुझे आज्ञा दें और मेरे से जो कटु शब्दों का प्रतिपादन हो जाता है उसके लिए क्षमा करते ही रहते हैं। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद—गुरूदेव

(हास्य) मुनिवरो! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने जो सूक्ष्म विचार दिये हैं वह वास्तव में तो बड़े ही प्रिय लगे परन्तु जब यह वाक् उच्चारण करते हैं कि यह संसार अग्नि की वेदी पर विराजमान हो गया है तो उनके वाक् कटुतामय दृष्टिपात होने लगते हैं। यह आगे समय—समय पर प्रभु की प्रतिभा अपना कार्य करती रहेगी। रहा ये वाक्य कि चन्द्रमा पर जाना, मंगल में जाना, बृहस्पति में जाना और भी इत्यादि जैसे अकृतम मानवतमा च प्रभे लोकः' जिस प्रकार शुक्र में जाते है तो शुक्र में भी हमें बेटा! पार्थिव प्राणी ही प्राप्त होते हैं और मंगल में भी और भी नाना लोक हैं परन्तु आज इन लोकों की गणना करना हमारे लिए शोभ नहीं। उच्चारण करना केवल यह है कि मानवीय विज्ञान परम्परा से ऊंचा बनता रहा है। परन्तु जब भौतिकवाद में आध्यात्मिकवाद की पुट नहीं होती, धर्म की मर्यादा नहीं होती, आध्यात्मिक—विज्ञान नहीं होता तो उस विज्ञान को कोई निगलने वाला नहीं होता क्योंकि भौतिक—विज्ञान आध्यात्मिक—विज्ञान का भोजन होता है। आध्यात्मिकवाद का भोजन क्या है? भौतिक विज्ञान। **भौतिक—विज्ञान आध्यात्मिक—वाद का भोजन है।** इसीलिये हमारे ऋषि—मुनियों ने यज्ञों को बहुत ही प्रधानता दी है और यह कहा है कि मानव को यज्ञ करना चाहिए क्योंकि यज्ञ के द्वारा आध्यात्मिक—वाद से उसका मिलान होता है। इसीलिए भौतिक—विज्ञान उस आध्यात्मिक—वाद का भोजन बन करके इस प्रवाह को शान्त किया जाता है। हमारे यहां विज्ञान परम्परागतों से ही था। रावण के यहां बहुत प्रबल विज्ञान रहा था। भगवान—राम बहुत ही विशाल वैज्ञानिक थे। उनकी सेना में नल और नील बड़े महान वैज्ञानिक थे। इसी प्रकार और भी नाना वैज्ञानिक थे। भगवान कृष्ण का विज्ञान, भीम, घटोत्कच और भी जैसे महाराजा अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन हुए, अर्जुन हुए और भी नाना जैसे द्रोणाचार्य उनका विज्ञान बहुत ही विशाल रहा था। जब संग्राम होता था तो उन्होंने अपने यन्त्रों को चन्द्रमा के कक्ष से भी ऊपरी भाग में त्याग दिया। वे आज भी भ्रमण कर रहे हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं। यह परम्परागत उसी प्रकार का विचार रहता है। यन्त्रालयों की परम्परागतों में भी प्रायः इसी प्रकार की धाराएं रमण करती रही हैं। यन्त्रों के द्वारा संग्राम को दृष्टिपात करना उनको कहीं से कहीं स्थान करना वह सदैव ही हमारे यहां रहा है। हमारे तो वैदिक—साहित्य में इसकी मौलिकता प्राप्त होती रही है और हमारा जन्म—सिद्ध अधिकार होता रहता है। इस सम्बन्ध में मेरे प्यारे महानन्द जी ने भी प्रतिपादन किया है वे वाक् बड़े विचारशील है। रहा यह वाक् कि यह संसार अग्नि की वेदी पर विराजमान हो रहा है बेटा! यह होता रहेगा, समय आता रहेगा, संहार होता रहता है आगे हम भविष्य की चर्चाओं में क्यों जाएं? प्रभु ही जाने उसको, प्रभु के ऊपर त्याग देना चाहिए। यह मानव का कर्त्तव्य होता है। भविष्य को प्रभु जानता है उसका दायित्व उसके ही द्वारा होता है। इसलिए हमें यह वाक् उच्चारण करना शोभनीय नहीं होता ।

रहा चन्द्रमा में कि चन्द्रयात्री वहां शयन करते हैं तो यह बहुत ही सुन्दर है। परन्तु अपनी कक्षा में रमण कर रहे हैं, यह भी बहुत सुन्दर है। यह तो समय आयेगा, समय—समय पर यह जगत और विज्ञान हमें निर्णय देता रहेगा। इसी प्रकार बेटा! अपनी धारणा बना लेनी चाहिए। ऐसा यन्त्र भी प्रायः भारद्वाज आश्रम में बनता रहा है जिन यन्त्रों के द्वारा मानव लाखों वर्षों के जो शब्द द्यु—लोक में रमण करते हैं उन शब्दों को ग्रहण किया जाता है, उन शब्दों को आकर्षित किया जाता है क्योंकि शब्द समाप्त नहीं होता। वह शब्द द्यु—लोक में रमण करता रहता है। जब द्यु—लोक में रमण करता रहता है तो यन्त्र बनाते। उसको **'शब्दावली—केतु—भूमक'** नाम का यन्त्र कहा जाता है। इस यन्त्र में ऐसी विशेषता, ऐसे यन्त्र निर्धारित होते हैं जिनमें जैसे मानव के शरीर में मेरे प्यारे प्रभु ने करोड़ों जन्मों के संस्कारों को स्मरण करने के लिए यन्त्रों का निर्माण किया गया है इसी प्रकार मानव उस यन्त्र को बनाता है, उसको हृदय से बनाता है। उसमें केवल वायु की तन्मात्राओं से उसमें विशेषता लाकर के उन शब्दों को वास्तव में यन्त्रों में ग्रहण करने लगता है।

जिस प्रकार हमें प्रायः यौगिक—साहित्य में प्राप्त होता है। जिस प्रकार योगिजन यौगिक वाक्यों को, वेद—ध्वनि को मस्तिष्क में अध्ययन करते हैं, मस्तिष्क में उसको अनहद रूपों में उन ध्वनियों को, उन स्वरों को

अपने में लाने का प्रयास करते हैं तो करोड़ों जन्मों के संस्कार, वह जो किया हुआ कृत्य है, अनहृद ध्वनि में उसका साक्षात्कार हो जाता है। आत्मा का वहां चित्रण होता है, आत्मा के प्रकाश में उनके चित्त में दिग्दर्शन कर लेते हैं, इसी प्रकार उसी के तुल्य हम भौतिक यन्त्र बनाते हैं तन्मात्राओं के द्वारा। तो तन्मात्राओं में वह दृष्टिपात आने लगता है। बेटा! यह तो विज्ञान है। **मैं विज्ञान के युग में जब जाता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र विज्ञान हमारे नेत्रों के समक्ष भ्रमण कर रहा है।** यह वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए विज्ञान में अपने प्यारे प्रभु को जानते हुए हमें वैज्ञानिक बनना चाहिए। आध्यात्मिकवाद का भी विचार–विनिमय करना चाहिए। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–**धन्य हो !**

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक – 4 अगस्त 1971
समय – रात्रि 8.30 बजे
स्थान – महाशय कृष्ण हाल, जोर बाग, नई दिल्ली।

१०. वेद तथा यज्ञ की महत्ता १६ अक्टूबर १९७१

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां जो पाठ्यक्रम है वह परम्परागतों से ही परम–पवित्र माना गया है। बेटा! हम परम–पवित्र उसे कहा करते हैं जिसमें इस परमपिता की मनोहर आभायें, ज्ञान और विज्ञान सदैव हमें दृष्टिपात रहता है। आज यहां हम उस यज्ञ स्वरूप की महिमा का गुणगान करते चले जा रहे थे।

बेटा! यज्ञ स्वरूप कौन है? जब हम यज्ञ स्वरूप ही कल्पना करते हैं और हम उसे वैज्ञानिक रूपों से अंकित करने लगते हैं तो वह मेरा प्यारा प्रभु हमें यज्ञ स्वरूप प्रतीत होने लगता है। वह कैसा सुन्दर यज्ञ स्वरूप है बेटा! जिसकी आभा का पृथ्वी–मंडल से ले करके सूर्य–मंडल अथवा चन्द्र–मंडल, गन्धर्व–लोक, इन्द्र–लोकों तक हमें दर्शन होता है। जब हम उसकी आभाओं का इनमें दिग्दर्शन करते हैं तो हम यह कहा करते हैं कि वह प्रभु कितना महान है, कितना यज्ञ स्वरूप है। उसकी आभा में यह सर्वत्र प्राणी मात्र नृत्य कर रहा है।

हास्य.... कैसा प्रिय वह मेरा प्रभु है। जब हम अपने हृदय को स्वच्छ और निर्मल बना लेते हैं तो वह जो मेरा देव है अपने आंगन में प्रायः धारण कर लेता है। मेरे प्यारे प्रभु को जो हृदय है वह इतना विशाल है, इतना नितान्त है कि मानव का हृदय स्वच्छ हो जाता है, समन्वय हो जाता है। वह कितना सुन्दर दृश्य होता है जब एक मानव के हृदय का मिलान प्रभु की उस महान चेतना से अथवा उसके हृदय से मिलान होता है। जिस प्रकार माता अपने प्यारे पुत्र को जानती है जब वह क्षुधा से पीडित होता है और माता उसे अपने हृदय से अपने कंठ में धारण कर लेती है और अपनी लोरियों का पान कराती है उसकी क्षुधा को शान्त करने के लिए। जो वेद का विचार है, वेद का हम दीर्घ दर्शन करते हैं। वेदो की जब प्रत्येक मन्त्र, शब्द की आभाओं पर हम विचार–विनिमय करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि वास्तव में वेद है क्या? **वेद तो बेटा! एक प्रकाश है,** महानता से उसमें ओत–प्रोत है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! बहुत पुरातन काल हो गया जब **मैं अपने पूज्यपाद–गुरूदेव के चरणों** में नाना प्रकार की उस वैदिक–विद्या का प्रायः अध्ययन करता रहता था। वह समय आज भी ऐसा स्मरण आने लगता है जैसे आज भी मैं उस महान देव पूज्यपाद–गुरूदेव के चरणों में ओत–प्रोत हूं। वह दृश्य स्मरण आता है जिसमें मृगराज भी उस शिक्षा को पान करते थे। उस काल में मानव का हृदय इतना स्वच्छ हो जाता था। **वेद के अनुकूल हृदय योगियों का हुआ करता है** जो मूल विक्षेप आवरणों से पृथक हो जाते हैं। वैदिक प्रकाश से उनका हृदय प्रकाशित रहता है क्योंकि आत्मा तो प्रायः पिपासु रहती है।

आत्मा तो बेटा! मृगराजों में भी रहता है। उस महान हृदय स्वच्छ को ब्रह्मविद्या को, पवित्र विद्या को, पान करने के लिए किसका हृदय नहीं चाहता। मानव का हृदय ही नहीं मृगराजों का हृदय भी यह चाहता रहता है।

तो आज बेटा! मैं इन विवेक की चर्चाओं को अधिक प्रकट करने नहीं आया हूं। केवल वाक् हमारा उच्चारण करने का अभिप्राय है क्या कि हम उस महान यज्ञ स्वरूप को विचार–विनिमय करने का प्रयत्न करें।

यज्ञशाल के भाग

बेटा! हमारी यज्ञशाला में चार भाग होते हैं। एक भाग में ब्रह्मा विराजमान होता है। द्वितीय भाग में यज्ञमान होता है। तृतीय भाग में अध्वर्यु होता है और चतुर्थ भाग में उद्गाता होता है। यह मानो यज्ञशाला में चार आसन होते हैं। यह जो चार आसन हैं आज हमें इनको विचारना चाहिए। इनका क्या–क्या कार्य होता है? **यज्ञ में जब विधि महान होती है, अन्तःकरणीय होती है और सुदृढ़ होती है तो उस यज्ञ में मानो देखो उसकी आभा सदैव ओत–प्रोत हो जाती है।** मेरे प्यारे ऋषिवर! हमारे यहां महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, और भी महर्षि मुगदल इत्यादियों ने शांडिल्य जी ने इस यज्ञ के नाना प्रकार के भेदों का वर्णन किया है। जिस प्रकार का रूद्र यज्ञ होता है इसी प्रकार साधारण यज्ञ होता है। **साधारण यज्ञ उसे कहते हैं** जब मानव के समीप कोई उद्देश्य नहीं होता और यज्ञ किया जाता है परन्तु कर्मकाण्ड जो होता है वह पवित्र होना चाहिए। कर्मकाण्ड का अभिप्राय यह है कि कर्म उसी को कहते हैं जब यह चारों आसन पवित्र होते हैं यज्ञशाला में। मुनिवरो बेटा ! मुझे तो बहुत समय हो गया है यज्ञ की प्रदक्षिणा कराए।

आज मैं उस वाक्य की पुनरूक्ति नहीं करने जाऊंगा परन्तु वाक् यह है कि यज्ञ में चार स्थल होते हैं। **सबसे प्रथम ब्रह्मा होता है, उसके पश्चात यज्ञमान होता है, अध्वर्यु और उद्गाता होता है।** उद्गाता तो उदगान गाता है। ब्रह्मा उसका निरीक्षण करता है। अध्वर्यु द्रव्यपति (सामग्री का अधिकारी) होता है और यज्ञमान उसका अधिपति कहलाया गया है। ये चार आसन होते हैं यज्ञशाला में। इसमें विचारना यह है कि यज्ञशाला में यज्ञमान की कितनी कठिन तपस्या होती है।

यज्ञमान

हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि **यज्ञशाला में इतनी अग्नि प्रदीप्त होनी चाहिए** समिधाओं के द्वारा कि जितना शाकल्य हो उसकी ऊर्ध्वगति हो जाए। **यज्ञमान का केवल एक कर्तव्य होता है आहुति देना और संकल्प ऊंचा बनाना और नेत्रों की दृष्टि किसी ओर आंगन को न जाना केवल वह जो ऊर्ध्व अग्नि है उसकी ज्योतियों पर दृष्टिपात करना चाहिए।** यह यज्ञमान का एक मुख्य कर्त्तव्य होता है। **जितने श्रोतागण होते हैं उनका भी ऐसा ही कर्त्तव्य होता है।**

उदगाता

इसके पश्चात जो **उद्गाता** होता है वह उदगान गाता है। उसे अपनी रसना और नेत्रों को शब्दों के साथ में सुगठित करना चाहिए, उनके साथ में मन की आभा तो प्रायः होती ही है क्योंकि शब्द का सम्बन्ध मानव की वाणी से होता है। हृदय का मिलान वाणी से होता है, वाणी का मिलान नेत्रों से होता है और नेत्रों का मिलान प्रायः बेटा! उन अक्षरों से होता है, उन शब्दों से होता है जो शब्द वाणी उच्चारण करने वाली है।

अध्वर्यु

इसके पश्चात अध्वर्यु होता है। यज्ञ में जो द्रव्य होता है वह उसका अधिपति आपति होता है, स्वामी होता है। उसे अध्वर्यु कहते हैं। कितना शाकल्य चाहिये, किस प्रकार का होता होना चाहिए यह सब उसके आंगन में विराजमान होता है। इसी प्रकार आज हमें इन वाक्यों को वास्तव में विचार–विनिमय कर लेना चाहिए। अध्वर्यु ऊंचा होना चाहिए। उसके द्वारा संकीर्णता नहीं होनी चाहिए। विशाल हृदय से जब शाकल्य को प्रदान किया जाता है, हवि अग्नि को प्रदान की जाती है। तो उसमें इतनी महानता ओत–प्रोत हो जाती है कि वह अग्नि नेत्रों तक को ज्योति प्रदान करती है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मुझे स्मरण है एक समय महाराजा अश्वपति के यहां यज्ञ हुआ। वह वृष्टि–यज्ञ था। वृष्टि–यज्ञ में जो समिधा प्रदान की जाती हैं तो वह इतनी स्वच्छ होनी चाहिए कि उसमें किसी प्रकार भी रूग्ण (दोष) नहीं होना चाहिए क्योंकि समिधा अप्रोत कहलाया गया है। समिधा ही तो बेटा ! शाकल्य का बिछौना है। परमाणुवाद का जो आसन है वह समिधा कहलाया गया है। **समिधा का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक वेद–मन्त्र के**

साथ में स्वाहा के साथ में उसका अग्नि से मिलान होना चाहिए। ऐसा हमारे यहां बेटा! कर्मकाण्ड की पद्धतियों में आता रहता है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा करने नहीं आया हूं। वाक्य उच्चारण करना केवल यह कि हमारा कर्मकाण्ड पवित्र हो। हमारा प्रत्येक आसन पवित्र होना चाहिए। आज कोई वाक्य गम्भीर उच्चारण करनें नहीं आया हूॅ। केवल यह कि **यज्ञ को संसार को क्लिष्ट नहीं बनाना चाहिए। नर्क भी नहीं बनाना चाहिए।** यज्ञ को तो यज्ञ स्वरूप ही स्वीकार कर लेना चाहिए।

मानव शरीर भी यज्ञशाला है

हमारा यह मानव शरीर भी तो एक प्रकार की यज्ञशाला है। इसमें **इन्द्रियां 'होता' बनी हुई हैं। प्राण और मन उदगाता और अध्वर्यु के रूप में विराजमान हैं, आत्मा इस शरीर में यज्ञमान** के रूप में विराजमान है और **परमपिता–परमात्मा–ब्रह्मा** के रूप में कार्य कर रहा है। यह शरीर कितनी सुन्दर यज्ञवेदी है, इन्द्रियां होता बनी हुई हैं और आहुति दी जा रही है। मुनिवरों कैसी सुन्दर आहुति है। जैसा विचार होता है, जैसा वातावरण होता है उसी प्रकार की आहुति लेकर के बेटा परमाणुवाद की हृदयरूपी यज्ञवेदी में परणित कर दी जाती है वह उसका शाकल्य है। मुनिवरो! विचारना यह आज हमें है कि जिस प्रकार हमारे शरीर में कोई भी होता कोई भी कृत्य दूरी चला जाए तो वास्तव में देखो हम उससे विहीन हो जाते हैं, हमारी परम्पराएं परिचर्चाएं समाप्त हो जाती हैं। आज हमें यज्ञ स्वरूप की महिमा को विचारना चाहिए। यज्ञ एक प्रकार का विज्ञान है। **बेटा! जितना भी विज्ञान है यज्ञवेदी के आधार पर ही उसका निकास होता है।** मुनिवरो! शाकल्य में प्रत्येक पदार्थ होता है सुगन्धि युक्त, पौष्टिक युक्त समिधाएं नाना घृत वे सब जब अग्नि में आहुति देते हैं तो इस अग्नि से वृष्टि कराई जाती है। इसी यज्ञ से संसार को विजय किया जाता है। वह विजय किस प्रकार किया जाता है? इसको विचारना है। इसका विचार मैं कल प्रकट कर सकूँगा कि यज्ञ से मानव संसार को किस प्रकार विजय करता है । आज तो केवल हम इतना ही वाक्य प्रकट कर रहे है। बेटा ! मुझे महापुरूषों का जीवन स्मरण है।

अन्न का प्रभाव

जब भगवान राम वन को चले गए तो भयंकर वनों में सीता, राम और लक्ष्मण तीनों प्राणी समिधा एकत्रित करते थे और नाना प्रकार की सामग्री, औषधियां एकत्रित करके उनसे यज्ञ करते थे। एक समय भगवान राम से सीता ने आलस्य में कहा, प्रमाद में आकर के कि प्रभु! आज यज्ञ नहीं कर पाते। उन्होंने कहा सीते! ये शब्द तुम्हारे मुखारविन्द से आज मुझे शोभा नहीं दे रहे हैं क्योंकि यह जो तुम्हारा **मुख है यह भी तो यज्ञ वेदी ही है** इनसे अशुद्ध वाक्य उच्चारण करना यह शोभा नहीं देता। हे देवी! आज हमें यज्ञ करना चाहिए क्योंकि **मानव का तो एक ही कर्म है 'यज्ञ'। यज्ञ से ही मानव का मन पवित्र होता है।** देवी! हम संसार को विजय कर सकते हैं तो केवल इस यज्ञ के द्वारा ही कर सकते हैं। ऐसा भगवान राम ने कहा तो सीता लज्जित हो गई।

लक्ष्मण ने कहा प्रभु! माता ऐसा शब्द क्यों उच्चारण कर रही है, इसका मूल कारण क्या है मैं इसको नहीं जान पाया। क्योंकि माता का तो ऐसा विचार किसी काल में बना ही नहीं है। उस समय मुनिवरो! उन्होनें विचार किया। महाराज निशाद के राज गृह में से उनके लिए एक समय कुछ भोजन आया। परन्तु वह जो भोजन था वह उन व्यक्तियों का भोजन था जिनके गृहों में यज्ञ नहीं होता था। तो परिणाम क्या? वे विचार माता सीता के हृदय में समाहित हो गए। उस अन्न का प्रभाव मन पर इतना प्रबल हो गया कि अशुद्ध विचारों का उदगार उत्पन्न हो गया। उस समय बेटा ! लक्ष्मण ने कहा, तो हमें ऐसा अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। उस अन्न का निर्णय किया गया है। निशाद से कहा कि हे निशाद ! तुम्हारे यहां यह अन्न कहां से आया था? उन्होनें कहा प्रभु ! यह जो अन्न मेरे यहां आया यह स्वर्णकार के गृह में से आया। उस अन्न से यह मन दूषित हो गया होगा। इसमें मेरा दोष नहीं है। राष्ट्र गृह में इसी प्रकार का अन्न आया वह अन्न मैंने प्रदान कर दिया है। इस प्रकार का विचार बेटा सीता के जब मन में आया सीता ने लगभग पाँच दिवस तक अन्न का पान नहीं किया केवल जल के आधार पर अपने जीवन को व्यतीत करने के पश्चात छठे दिवस मन का शोधन हो गया। इस मन को शोधन करने का नाम बेटा! सबसे **महानयज्ञ** कहलाया गया।

यज्ञ का महत्व

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को भी अपने दो शब्द उच्चारण करने हैं। मैं तो केवल इतना ही वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि **प्रत्येक**

मानव, प्रत्येक देव कन्या को संसार में यज्ञ करना चाहिए। सुगन्धि करनी चाहिए। दुर्गन्धि ही न करता रहे। क्योंकि नेत्रों द्वारा दुर्गन्धि आती है मानो देखो घ्राण के द्वारा और रसना के द्वारा मुखारविन्द के द्वारा, श्रोत्र के द्वारा, प्रत्येक इन्द्रिय उपस्थ और ग्रीवा के द्वारा इस प्रकृतिवाद को अशुद्ध ही करता रहता है। अरे यदि यज्ञ और सुगन्धि नहीं करोगे तो यह तो वायु मण्डल है, वातावरण है यह अशुद्धियों से ओत–प्रोत हो करके के मानव समाज पतित हो जाता है। इसीलिए बेटा! यज्ञ का ऋषियों ने बड़ा महत्व माना है। आज हमें उस महत्व को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। ऋषियों ने इसका महत्व क्यों माना है? वेद ने ऐसा क्यों कहा कि यज्ञ करना चाहिए? वेद इसलिए कहता है क्योंकि वेद स्वयं यज्ञ स्वरूप माना गया है, क्योंकि वेद में ज्ञान है और विवेक है, विचार है। उन विचारों से गृह पवित्र होते हैं, राष्ट्र पवित्र होते हैं, वायु मण्डल पवित्र होते हैं। इसीलिए बेटा ! वेद नाम भी यज्ञ स्वरूप को ही कहा गया है।

मधुर वाणी

मानव को अपनी वाणी से भी सुगन्धि करनी चाहिए। वाणी किसकी सुगन्धि युक्त होती है? जिसमें बेटा! मधुरत्व होता है, यथार्थ होता है, ज्ञान से सजातीय जो वाणी होती है वह वातावरण को पवित्र बना देती है, हृदय को उदगम् बना देती है। वाणी मधु भी हो और वह वेद से सजी हुई भी हो परन्तु मानव का यदि हृदय पवित्र नहीं है तो उस वाणी का कुछ नहीं बन पाता। इसीलिए बेटा ! उसके साथ में हृदय होना चाहिए क्योंकि यदि वाणी वेद शब्दों से सजी होगी और हृदय से सजी नहीं होगी तो उस वाणी का प्रभाव, उस वाणी का अस्तित्व हमारे ऋषि मुनियों ने न होने के तुल्य माना है। आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुण–गान गाते हुए संसार में इस यज्ञ वेदी पर दृष्टिपात करें क्योंकि यह संसार ही यज्ञ वेदी है। मैंने कई काल में इसकी मीमांसा की है। आज मैं मीमांसा नहीं करना चाहता। आज का हमारा वाक् समाप्त होने जा रहा है। विचार यह कि आज हम यज्ञ कर्म करने वाले बनें।

पति–पत्नी का यज्ञ

भगवान कृष्ण प्रातः सायंकाल यज्ञ करते थे। इतना सुन्दर यज्ञ होता था कि जब प्रातः और सायंकाल अपनी वचनावली अमृत का पान कराते थे तो पक्षीगण भी मौन हो जाते थे। मुझे स्मरण है बेटा! एक समय वह यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ के पश्चात उन परमाणुवाद पर विचार–विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया जो यज्ञ में से परमाणुवाद उत्पन्न हुआ उन परमाणुओं पर अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। नाना प्रकार के यन्त्र, नाना प्रकार की वैज्ञानिक सामग्री भी उनके द्वारा रहती थी। उसी से वह उसका अध्ययन करने लगे। मुनिवरो देखो वह ''यज्ञम् ब्रह्म व्यापः'' क्योंकि यज्ञ जो इसमें संसार का शाकल्य जब ओत–प्रोत किया जाता है, तो वही शाकल्य यज्ञ वेदी को सुन्दर बना देता है। भगवान कृष्ण एक समय यज्ञ पर अध्ययन कर रहे थे उनकी धर्म देवी रूक्मणी जी आ गई उन्होंनें कहा प्रभु आप यह क्या कर रहे है? उन्होंनें कहा देवी ! मैं इस यज्ञ का विचार विनिमय कर रहा हूं । जो मैंने प्रातः सुगन्धि की है उस सुगन्धि में कितनी तरंगें हैं और उनकी कितनी गति इसका मैं अध्ययन कर रहा हूं। उन्होनें कहा प्रभु ! यह भी कोई विचार है? उनका अध्ययन करने से आपका क्या बनेगा? मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे इन हृदयों में, मेरे इन विचारों में कितनी तरंगे होगी? उन्होनें कहा देवी! तुम्हारे हृदय में यह जो तरंगे हैं, इनका भी निवारण किया जा सकता है। इनकी गणना भी की जा सकती है, यदि तुम्हारे इन वाक्यों में अभिमान नहीं होगा, तुम्हारे इन वाक्यों में जब तक अभिमान है तब तक तुम यज्ञ स्वरूप को जान नहीं पाओगी। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! वह रूक्मणी मौन हो गई, चरणों में ओत–प्रोत होकर के उस समय उसका हृदय इतना परिवर्तन हो गया कि वे स्वयं पति के समीप विराजमान होकर के यज्ञ करती थीं और रात्रि–रात्रि व्यतीत हो जाती थी। यज्ञ के अनुसन्धान के विचार–विनिमय करने वाला वही तो बेटा! पति–पत्नी का सुन्दर यज्ञ होता है। गृह को सुन्दर उसी काल में बनाया जाता है जब पति–पत्नी यज्ञ के ऊपर, उसके परमाणुवाद पर, सामग्री शाकल्य पर बेटा! नित्य प्रति विचार–विनिमय करते हैं। वह विचार और वह सुगन्धि का जब दोनों का मिलान होता है, दोनों का समन्वय होता है तो बेटा ! वह एक महान यज्ञ होता है उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता। हमारे ऋषि–मुनियों ने उसको बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। अब मैं बेटा! अपने वाक्यों को समाप्त कर रहा हूँ।

पूज्य महर्षि महानन्द जी के उद्‌गार

मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव ! अथवा ऋषि–मण्डल! मेरे भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरूदेव जिस हृदय से हमें यह पवित्र शिक्षा प्रदान कर रहे थे, उसके पश्चात अपना कोई वाक्य प्रकट करना हमारे लिए शोभनीय नहीं है परन्तु जब इनकी आज्ञा हुई तो हमें भी कुछ सूक्ष्म अपना विचार प्रकट करना है। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव के समीप अपने दो शब्दों को उच्चारण करना चाहता हूँ। मैं आज सबसे प्रथम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना विचार देना चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने पुरातन काल के यज्ञों का वर्णन किया, भिन्न–भिन्न यज्ञ होते हैं जैसे 'रूद्र यज्ञ' होता है, 'विष्णु' और ब्रह्म' यज्ञ होता है। मैं यज्ञों का वर्णन नहीं कर रहा हूं परन्तु उन यज्ञों का कर्मकाण्ड भी भिन्न–भिन्न होता है।

यज्ञ का स्वरूप

आज मैं संसार को दृष्टिपात करने लगता हूँ तो इस मृत मंडल में जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ एक यज्ञ भी दृष्टिपात करता हूँ। यह यज्ञ आधुनिक काल के कर्मकांड की दृष्टि से तो सजातीय है परन्तु परम्परा का जो कर्मकाण्ड है उसका मैं वर्णन नहीं करने आया हूँ। विचार क्या? वह कर्मकांड, वह विचार बहुत ही ऊंचा है। आज तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है आगे आने वाला जो समय है, जगत है उसमें यज्ञ रूढ़ी बनकर न रह जाए। यज्ञ ही रूढ़ी बनकर रह गया तो यह वेद का ह्रास हो जायेगा, ऐसा न हो जाए। वास्तव में ऐसा सम्भव तो नहीं है क्योंकि समय–समय पर महापुरूषों का आगमन होता रहा है। महापुरूषों के आगमनों से वह रूढ़ी नहीं बनती अथवा रूढ़ी बनने में कोई आश्चर्य भी नहीं क्योंकि समय–समय पर महापुरूषों ने जिस आदेश को समाज को दिया उस आदेश से समाज दूरी हो गया। जब दूरी हो जाता है तो मानो वह रूढ़ी बन जाता है। इसलिए महापुरूषों ने जो आदेश दिया है उन आदेशों से दूरी नही होना चाहिए। अपने कर्मकाण्ड को निश्चित बना देना चाहिए। मैं भविष्य का विचार प्रकट करना नहीं चाहता परन्तु रूढ़ी न बन जाए। रूढ़ी को नष्ट करने के लिए मानव का एक समाज होना चाहिए और वह यज्ञों के ऊपर अनुसन्धान करने वाला हो। जिससे हम संसार को यह संन्देश दें सकें कि उस वेदी के नीचे आ करके तुम्हारे जो नाना प्रकार के दूषित अणु एकत्रित कर लिए हैं उन अणुओं का विनाश हो सकता है, यह यज्ञ की सुगन्धी से ही हो सकता है।

यहाँ संसार में विज्ञान समय–समय पर आता रहा है। समय–समय पर उस विज्ञान ने प्रगति की है। आज का संसार प्रगति कर रहा है कोई वैज्ञानिक चंन्द्रमा पर शयन करने जा रहा है, कोई करने के लिए तत्पर हो रहा है। कोई शुक्र की कल्पना कर रहा है, कोई पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्य में कोई स्थान बनाने का विचार कर रहा है। ऐसे विचार वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में नवीन नहीं है क्योंकि यह परम्परा से मानव के मस्तिष्कों में, महापुरूषों के मस्तिष्कों में, राष्ट्र के मस्तिष्कों में यह प्रायः विचार आता रहा है।

रहा यह वाक्य कि जो मानव धर्म है उसका ह्रास हो रहा है। परन्तु यह धर्म का ह्रास नहीं है क्योंकि धर्म किसे कहते है? आज कोई वैज्ञानिक यह नहीं कह रहा है कि मानव को चरित्रहीन हो जाना चाहिए। कोई वैज्ञानिक यह नहीं कह रहा है कि कर्म नहीं करना चाहिए। कोई वैज्ञानिक यह नहीं कह रहा कि आज तुम प्रभु को स्वीकार न करो। परन्तु आज का वैज्ञानिक इस वाक्य को उच्चारण कर रहा है कि आज हम इस प्रकृति के गर्भ से संसार में सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार आज मानव इस प्रकार के विचार में आ गया है कि आज हम जो विचार दे रहे है, वैज्ञानिक विचार है यही सर्वोपरि विचार है।

हमारे ऋषि–मुनियों ने यह कहा है कि यह जो विज्ञान है, परमाणुवाद है, चन्द्रयान है, नाना प्रकार के यान हैं, यह परमाणुवाद जहां यह समाप्त होता है वहां आध्यात्मिकवाद का, धर्म का, प्रारम्भ हो जाता है। जब आध्यात्मिक युग में जाने का मानव प्रयास करता है उस समय यह दृष्टिपात आने लगता है। जब हम उस युग में चले जाते हैं जिस युग में आत्मा को उन्नत बनाया जाता है जिसमें यौगिक अपनी प्रक्रियाओं को जानने लगता है जिस काल में यज्ञ की सुगन्धि ही सुगन्धि समाज में ओत–प्रोत हो जाती है, परमाणुवाद को यज्ञ की सुगन्धि निगल जाती है।

परमाणु का अन्तिम परिणाम– मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव ने कई समय वर्णन कराया, आज मैं भी उन वाक्यों का वर्णन कराने आ गया हूँ कि आज का जो मार्ग है वह मार्ग क्या है? वेद का जो मार्ग है उसको प्रत्येक मानव को अपनाना है। **वह समय निकट आ रहा है जब इस महान यज्ञ की वेदी के नीचे यह सर्वज्ञ विज्ञान आने वाला है।** आज जब हम इस राष्ट्र भूमि से दूसरे राष्ट्रों का भ्रमण करते हैं इस सूक्ष्म शरीर के द्वारा, तो हमें ऐसा प्रतीत

होता है कि यह जो परमाणुवाद आज हमने निश्चय किया है एकत्रित किया है, इसका अन्त परिणाम क्या होगा? तो उस समय यह विचारते हैं कि इसका परिणाम केवल अग्नि ही होगी। इसका परिणाम और क्या बनेगा, केवल अग्नि के सिवाय। तब वह कहते हैं कि इस अग्नि को शान्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए इस अग्नि को निगलने के लिए कौन सा यत्न होना चाहिए जिससे हम स्वयं अपने–अपने जीवन की सुरक्षा कर सकें।

जब यह विचारते हैं तो वह जो गो घृत है, उसमें ऐसा कोई तत्व है जिसमें इस परमाणुवाद को निगलने की शक्ति है। परन्तु अब तक उसका कर्मकाण्ड नहीं आया। उसका जब कर्मकाण्ड आता है तो इस भारत भूमि में, भारद्वाज वाली भूमि में आकर के उस विद्या को पान करने वाला यह समाज बनेगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है। मैं आज भविष्य की चर्चा नहीं प्रकट कर रहा हूं। यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूं क्योंकि यज्ञ एक ऐसा ही कर्म है जो सुगन्धि देता है। दुर्गन्धि नहीं देता। केवल सुगन्धि ही सुगन्धि देता है। समाज के लिए जहां यह होने वाला है वहां ऐसा भी किसी काल में **प्रतीत होता है कि कुछ ही समय रह रहा है जब यह समाज, यह जो जगत अपने कर्मों की अग्नि में भस्म होने वाला है।** ऐसा भी प्रतीत होता है क्योंकि यह जो नाना प्रकार का यन्त्रवाद है, यह जो नाना प्रकार की मानव के प्रति घृणा का एक वातावरण अपने हृदय में ओत–प्रोत कर लिया है, इस **घृणा का परिणाम भी अग्नि ही होता है।** एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को नष्ट करना चाहता है, एक मानव दूसरे मानव को निगलना चाहता है यह क्या है? स्वार्थ की अग्नि प्रत्येक मानव के हृदय में ओत–प्रोत हो गई है। वह जो स्वार्थ रूपी अग्नि है वह किसी अन्य मानव को नष्ट नहीं करती उसी मानव को नष्ट का देती है जिस मानव के हृदय में वह अग्नि बलवती हो गई है।

विज्ञान यहाँ से दूसरे राष्ट्रों में गया

इसीलिए आज हमें उस वेदी पर जाना है जिस वेदी पर मानव विज्ञान ओत–प्रोत होता है। वैदिक–साहित्य में संसार का ज्ञान और विज्ञान ओत–प्रोत रहता है। आज जब मैं यह विचारता हूं कि यह विज्ञान दूसरे राष्ट्रों में कहां से गया ? **भारद्वाज वाली भूमि में से ही दूसरे राष्ट्रों में यह विज्ञान चला गया।** यह विज्ञान किस प्रकार गया है? यह वेद के द्वारा गया है। **आज से लगभग 800 वर्ष पूर्व** एक मानव दूसरे राष्ट्रों से आए। उन्होंने यहां हिमालय प्रहुत केतु कन्दराओं में एक पुस्तक प्राप्त की जो मीमांसा दर्शन का आधा भाग और महाराजा घटोत्कक्ष और भीम का कुछ भाग था, जो सूर्य और परमाणुवाद के ऊपर एक पोथी विराजमान थी। वह पोथी दूसरे राष्ट्रों मे चली गई। उस पोथी से विकास हुआ। उसमें प्रथम मानो पृथ्वी को यहां कोई किसी रूप में स्वीकार कर रहा था, कोई किसी रूपों में स्वीकार कर रहा था। उन्होंने कहा यह जो पृथ्वी है यह एक गोलाकार है इसको हमें स्वीकार कर लेना चाहिए।

आज से ९ॉॉ वर्ष पूर्व ही कितने ही वैज्ञानिक इस अग्नि के मुखारविन्द में चले गए। सबसे प्रथम वैज्ञानिक को अग्नि के मुख में परिणत कर दिया और किसने किया ? ईसा के मानने वालों ने उसको अग्नि के मुख में अर्पित कर दिया। इसी प्रकार विज्ञान पनपता रहा अन्त परिणाम यह हुआ कि ईसा के मानने वालों के सामने विज्ञान इस प्रकार आ गया कि उन्हें यह स्वीकार करना ही हुआ।

वैदिक साहित्य अग्नि के मुखार–विन्द में अर्पित

इसी प्रकार अज्ञान प्रायः मानव में आ सकता है परन्तु वह विज्ञान कहां गया? जब मैं यह दृष्टिपात करता हूं तो मुझे यह दुख होता है। महाभारत काल के पश्चात महावीर के मानने वालों पर आश्चर्य आता है जिन्होंने साहित्य अग्नि के मुखारविन्द में अर्पित कर दिया। मुझे प्रतीत है जब यहां इतनी–इतनी सुन्दर पोथियां थीं सूर्य विद्या पर नाना प्रकार की पोथियां विराजमान थीं। महाराजा भीम ने एक पोथी का निर्माण किया था महर्षि व्यास मुनि की सहायता से, सोममुनि ऋषि की सहायता से, जैमिनी मुनि की सहायता से जिसमें लगभग दो हजार पृष्ठ थे। जो सूर्य विज्ञान के ऊपर एक पोथी विराजमान थी वह पोथी कहां गई? जैन काल में वह पोथी अग्नि के मुखारविन्द में परणित हो गई। मैंने कुछ समय हुआ उस स्थान[1] का वर्णन किया था जिस स्थान में पाण्डवों का यज्ञ चलता था जब उन्हें वन प्राप्त हुआ था। उस स्थान में वे विराजमान रहे। उसके पश्चात अज्ञातवास को महाराजा विराट के यहां चले गए थे। उसका मैंने कुछ समय हुआ वर्णन किया। वहां एक पुस्तकालय था जिसमें पोथियों की पोथियाँ विराजमान थीं। हनुमान के समय की पोथियाँ भोज–पत्रों पर थीं परन्तु जैन समाज ने अग्नि के मुख में परणित कर दिया उन पुस्तकों को। वह इतना ऊंचा पुस्तकालय था उसमें लगभग लाखों की गणना में

पुस्तक विराजमान थीं। वह मीमांसा–दर्शन के आधार पर क्या, उसमें 800 के लगभग तो वेद शाखाए विराजमान थीं, जिसमें पिपप्लाद शाखा, सोमकेतु शाखा, रेणकेतु शाखा, श्रंग शाखा, मनीनी शाखा नाना प्रकार की शाखाएं अग्नि के मुखारविन्द में परणित हो गईं। जब मैं इन वाक्यों को स्मरण करने लगता हूं तो इस संसार के उन बुद्धियों पर आश्चर्य आता है कि समाज में कितना अज्ञान छा गया और वह अज्ञान क्यों आया ? क्योंकि उन्होंने विचारा कि वैदिक–साहित्य का जब तक विनाश नहीं होगा तब तक हमारा प्रसार नहीं होगा। केवल यह भावना मानव के हृदय में थी। इसी भावना मात्र से संसार में क्या–क्या नहीं होता ? यह अग्नि ही मानव को कहीं का कहीं पहुंचा देती है। राष्ट्र को भी कहीं का कहीं पहुंचा देती है।

मुनिवरो ! आज के राष्ट्र पर भी मुझे बड़ा आश्चर्य आता रहता है। परन्तु मैं राष्ट्र की चर्चा आज प्रकट नहीं करूंगा। केवल यह कि आज मैं इन वाक्यों को इसलिए प्रकट कर रहा हूं कि मुझे स्मरण है वह जो पुस्तकालय था उसमें एक यज्ञ के ऊपर **मीमांसा–दर्शन** के आधार पर महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की पोथी थी जिसको हमारे यहां **गौ–पथ** के नाम से वर्णन किया जाता है। शतपथ नाम की पोथी अब भी प्रायः प्राप्त हो जाती है परन्तु उसका आधा भाग ही हमें प्राप्त हो पाता है। उसमें कितने ही प्रकार के यज्ञों का वर्णन था। किस सर्वत्र अग्नि के मुख में चला गया। आज का समाज, आज का जो बुद्धि जीव प्राणी है परन्तु उसने वह जो सूक्ष्म सा साहित्य जो रह गया है उसको भी विचार विनिमय करना त्याग दिया है। क्यों त्याग दिया है ? क्योंकि स्वार्थ की मात्रा अधिक जागरूक हो गई है। स्वार्थ तो होना चाहिए परन्तु अकिंचत अधिक जो स्वार्थ है वह मानव के जीवन का ह्रास कर देता है, धर्म और मानवीयता का विनाश कर देता है धर्म का विनाश हो जाता है ।

'आंवला जिला बरेली के पास, रामनगर ग्राम का इतिहास जो पुष्प नं0 15 (प्रवचन–माला भाग 5) में दिया गया है।

धर्म

धर्म किसे कहते हैं? आज प्रत्येक मानव यह विचारता है कि मैं तो धर्म निरपेक्ष हो गया हूं। धर्म–निरपेक्ष कहते किसे हैं ? अरे! यदि धर्म–निरपेक्ष है तो यह राष्ट्र का निर्माण क्यों किया तुमने ? इसका क्या अभिप्राय है जब धर्म तुमसे दूरी है ? राष्ट्र और धर्म दोनों एक दूसरे के सहायक बने रहते हैं। देखो एक दूसरे को सहायक नहीं बनाओगे तो तुम्हारा क्या बनेगा ? समाज में जो मानव धर्मनिरपेक्ष की एक घोषणा करता है वह मानव इस धर्म को जानता ही नहीं। यदि तुम्हारे यहां सत्य को सत्य उच्चारण नहीं किया जाता तो तुम्हारा राष्ट्र सुन्दर नहीं और यदि तुम्हारे यहां सत्य को सत्य कहते हैं तो धर्म तुम्हारे साथ है, धर्म तुम्हारे आंगन में पनपता रहता है। मानव ने यह विचारा नहीं कि आज हम किस दिशा को जा रहे हैं ? कौन से आसन को हमने अपनाना प्रारम्भ कर दिया है ? मैं तो यह उच्चारण किया करता हूं कि आज जो मानव धर्मनिरपेक्ष की घोषणा करता है वह धर्म को जानता ही नहीं क्योंकि जो धर्म को जानता हुआ होता तो यह धर्मनिरपेक्ष की घोषणा अशुद्ध है। नितान्त अशुद्ध है। क्योंकि हमारे यहां राष्ट्र का निर्माण तो होता ही उस काल में है जहां धर्म की रक्षा की जाती है। धर्म की रक्षा करने के लिए, मानव की रक्षा करने के लिए, राष्ट्र का निर्माण होता है और **जहां धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती हो वहां राष्ट्र क्या है ? वहां निर्माण क्या है?**

वर्तमान–राष्ट्रीय प्रणाली

मुझे एक वाक्य और प्रतीत हो रहा है भगवन् ! आज तक आपने ऐसा नहीं श्रवण किया होगा कि आज के समाज में, राष्ट्र में एक राजा को चुना जाता है परन्तु उसमें एक बुद्धिमान जो चारों वेदों का पंडित है, महान ऋषि और तपस्वी है और एक मूर्ख व्यक्ति है दोनों का मूल्य जिस राष्ट्र में एक तुल्य हो उस राष्ट्र में तो अग्नि वास्तव में प्रदीप्त हो जाती है। यह प्रायः होता रहता है। मानव का, मानव के शब्दों का, मानव की मानवता का, एक वेद पाठी का कोई मूल्य नहीं होता और मूर्ख से मिलान किया जाता है, उनका एक ही मूल्य होता है जिस राष्ट्र की दृष्टि में, अरे वह राष्ट्र नहीं वह एक समय शमशान भूमि बनकर रह जाती है। ऐसा मुझे प्रायः दृष्टिपात आता रहता है। भगवान मनु की परम्पराएं और भी बहुत–सा साहित्य मुझे स्मरण आने लगता है जो वास्तव में प्रायः ऐसा होता रहा है। मैं आज इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूं क्योंकि वेद हमें यही तो घोषणा करता है।

आज कोई मानव कहता है कि यही नवीन आविष्कार सुन्दर है, परन्तु जितनी नवीनता है यह सर्वत्र वेदों में से ही प्राप्त होती है, सर्वत्र बुद्धिमानों के मस्तिष्कों से प्राप्त होती रहती है इसीलिए आज हमें उन वाक्यों पर दृष्टिपात करना चाहिए। जहां ऋषियों के उन ऋणों को अपने द्वारा एकत्रित किया जाता है वह राष्ट्र और समाज अपराधी बन जाता है। यह राष्ट्र और समाज को कैसे उन्नत बनाया जाता है आज का प्राणी इस वाक्य को विचारता ही नहीं है। इन वाक्यों को विचार–विनिमय करना आज के प्राणी ने शान्त कर दिया है। आज का प्राणी तो धर्म निरपेक्ष की घोषणा करता है इसीलिए वेद के वाक्यों को विचार करना उसके लिए दुष्कर हो गया है। आज इन वाक्यों को जो विचारेगा वही राष्ट्र और समाज को पवित्र बना सकता है। अशिक्षित समाज का बुद्धिमान से मिलान किया जाता है वह कोई राष्ट्र नहीं होता, न वह राष्ट्रीयता होती है वह तो केवल कुछ समय के लिए होती है उसके पश्चात उसका ह्रास हो जाता है। उसका ह्रास जातीयता में आ जाता है, स्वार्थवाद में आ जाता है। व्यापकता से राष्ट्र का विचार नहीं किया जाता समाज में।

समाज रूढ़ी में चला गया

जिस महापुरूष ने प्रचार किया उस महापुरूष की वाणी यहां रूढ़ी बनकर के रह रही है। क्यों बन करके रह रही है? स्वार्थवाद के कारण । महात्मा शंकर ने वेद की घोषणा की। वेदान्त की घोषणा की। उन्होंने कहा कि आज हम व्यास जी के विचारों को विचार विनिमय करें। वेदान्त का प्रसार करें। परन्तु देखो वह रूढ़ी बनकर के अपने जीवन को कृत कर रहा है। इसी प्रकार देखो महात्मा, देखो महर्षि उच्चारण करना मेरे लिए बहुत प्रिय है, महर्षि दयानन्द का जब पर्दापण हुआ उन्होंने अपने जीवन में कितना तप किया। हिमालय कन्दराओं में भ्रमण किया प्रभु के मिलान के लिए परन्तु उसके मानने वाला समाज आज रूढ़िवादी बनता चला जा रहा है। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है। **महापुरूषों का जो मार्ग है वह प्रायः कठिन है** इसलिये समाज स्वार्थवाद में आकर के रूढ़ी बनता चला जा रहा है यह जो रूढ़ी है मुझे तो इसका भय रहता है परन्तु धर्म का भय नहीं है क्योंकि धर्म तो सदैव धर्म के स्थान में धर्म पनपता रहता है। कोई न कोई महापुरूष आता है, धर्म का प्रसार करता है चला जाता है। परन्तु मानने वाला जब रूढिवादी बन जाता है सत्य को सत्य नहीं विचारता। **यज्ञ भी आज रूढ़ि बनता चला जा रहा है व्यापकता से दृष्टिपात नहीं किया जाता।** तो उस समय बुद्धिजीवी हृदय में एक वेदना जागृत होती है । इसीलिए मैं इस वेदना को आज पुनरूक्ति देना चाहता हूं कि हे मानव! तू रूढिवादी न बन, क्योंकि **प्रभु का राष्ट्र रूढ़िवादी नहीं होता।** प्रभु के राष्ट्र में तो सदैव चेतना को, प्रकाश को प्रकाशित करता रहता है। वहां व्यापकवाद होता है। वहां रूढ़िवाद नहीं होता। वहां संकीर्णवाद नहीं होता। जिस चेतना में प्रत्येक मानव पनप रहा है आज उस चेतना के ऊपर भी विचार–विनिमय करना चाहिए। वेद में भी रूढ़िवाद नहीं होता क्योंकि वेद ईश्वर का ज्ञान विज्ञान कहलाया गया है इसलिए उसमें रूढ़ि नहीं है। उसका जो विचार है उसको भी रूढ़ी न बनाते चले जाओ। अन्यथा तुम्हारा संसार में क्या बनेगा ? तुम रूढ़िवादी बनकर के दूसरों के प्रति घृणा उत्पन्न करके तुम स्वयं घृणित हो जाओगे। घृणित होकर के तुम्हारी परम्परा नष्ट हो जाएगी। इसीलिए आज हमें विचार–विनिमय करना चाहिए। आज हमें इन वाक्यों को बारम्बार विचारना चाहिए। आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं।

मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव मुझे कल समय देंगे तो मैं और भी अपने वाक् प्रकट कर सकूंगा। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि समाज को रूढ़िवादी नहीं बनाना चाहिए अपने विचारों को रूढिवादी नही बनाना चाहिए क्योंकि रूढ़िवाद ही समाज का विनाश कर देता है इसीलिए राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि के मुख मे चले जाते हैं। **महापुरूषों की वाणी को रूढ़िवादी नहीं बनाना चाहिए।** अब मैं अपने पूज्यपाद–गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा ।

पूज्यपाद–गुरूदेव

(हास्य) धन्य हो !

मुनिवरो ! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपनी कुछ वेदनाएं प्रकट की हैं। इन वेदनाओं को हम तो अच्छी प्रकार जान नहीं पाते इनके हृदय में क्या वेदना है? परन्तु इन वाक्यों में जो सारगर्भित वाक् है वह तो थे परन्तु इसके साथ कटुता की तो प्रतिभा रहती ही है। कल हम और भी सुन्दर वाक् प्रकट करेंगे। आज का वाक् अब

यह समाप्त होता जा रहा है। **आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें संसार में सुन्दरता को ग्रहण करना चाहिए और अशुद्धियों को त्यागना चाहिए यह हमारा आज का वाक् कह रहा है। हमें सदैव अपने जीवन के आदर्शों को ऊंचा बनाना है।** कल महानन्द जी के विचारों पर कुछ टिप्पणियां की जाएंगी । आज का वाक् यह समाप्त । अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी—**धन्य हो!**

पूज्य महानन्द जी—अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद—गुरुदेव—आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : १६ अक्टूबर १६७१
समय : रात्रि ८.३॥ बजे
स्थान : आर्य समाज मन्दिर, कृष्ण नगर दिल्ली। (अथर्ववेद पारायण—महायज्ञ)

११. यज्ञमान अपनी ऊर्ध्व गति बनाएं २५ फरवरी १६७२

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद—मन्त्रों का गुण—गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद—मन्त्रों का पठन—पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम—पिता—परमात्मा की महिमा का प्रायः गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमात्मा हमारे निकट रहने वाला है, संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें वह प्रभु विराजमान न रहता हो। क्योंकि वह विचित्र है, महान है, सर्वत्र और प्रकृति के कण—कण में ओत—प्रोत है। तो आज हमें यह विचारना है कि हम परम—पिता—परमात्मा को सदैव, इस संसार को ही संसार का जो उज्ज्वल स्वरूप है वह उस परम—पिता—परमात्मा की आभा का ही सुन्दर दृश्य माना गया है।

परमात्मा की प्रतिभा

जब मुनिवरो! देखो हम इस जगत् को स्थूल रूपों में दृष्टिपात करने लगते हैं तो स्थूल रूप में भी यह जगत् उस परमपिता—परमात्मा के गृह के तुल्य मुझे दृष्टिपात आता है। कोई वस्तु ऐसी नहीं, कोई स्थल ऐसा नहीं जहां परमात्मा की प्रतिभा न रहती हो। परमपिता—परमात्मा की उज्ज्वलता का स्वरूप इस प्रकृति के कण—कण में दृष्टिपात न आता हो। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का यह हमारा वेद—पाठ क्या कह रहा था? आज का हमारा वेद—पाठ कह रहा था, ''हे यजमानों! तुम अपनी ऊर्ध्वगति बनाओ। कैसी ऊर्ध्वगति हो? तुम्हारी वाणी से लेकर प्रत्येक इन्द्रिय की गति ऊर्ध्व होनी चाहिए। क्योंकि **यजमान की जो इन्द्रियां होती हैं वे यज्ञ के होता का कार्य करती हैं।''** हमारे ऋषि मुनियों ने होता कहा है। ''इन्द्रियों को ही नहीं, **विचारों को भी समिधा रूपों में परणित किया है।''** हे होताजनों! हे यजमान! आज तेरी इन्द्रियों का जो विषय है वह यज्ञशाला में समिधा का कार्य करता है। समिधा का कार्य क्यों कहा? समिधा क्यों कहते हैं? क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है प्रत्येक इन्द्रियों का जो देवता है उन देवताओं को इन इन्द्रियों के विचार पूर्वक जब हम **ज्ञान आहुति** देते हैं तो उस **आहुति का जो सूक्ष्म रूप है, वह देवताओं को प्राप्त होता है।** उस आहुति के सूक्ष्म रूप के साथ में यजमान का विचार, यजमान की धाराएं और होताओं का जो संकल्प है वह उस आहुति के साथ में रमण करता रहता है।

पवित्र आहुति ''द्यु'' लोक को पवित्र करती है

हमारे ऋषि मुनियों ने यज्ञ के ऊपर बहुत बल दिया और यह कहा कि यही तो यज्ञ की समिधा है। यह द्यु—लोक की समिधा मानी जाती है। क्योंकि वह जो स्वाहा है वह जो शब्द है उस शब्द में जो तरंगें हैं उनका सूक्ष्म रूप बन करके द्यु—लोक में परणित हो जाता है। द्यु—लोक में वह रमण करने लगता है। तो आज हमें विचारना है, आज हम उस यज्ञमय अपने जीवन को बनाने का प्रयास करें। क्योंकि जो **सात्विक यजमान** होता है उसके गृह में किसी प्रकार का भी आडम्बर नहीं होता। वहां अच्छाइयों का और ज्ञान का खंडन नहीं होता। जिन यजमानों के यहां अन्धकार आ जाता है और वह अच्छाइयों का, सुन्दरता का खण्डन कर देते हैं। ऋषि तो यहां तक कहते हैं कि ''उसे (तो रूढ़िवादी यजमान को) यज्ञशाला में भी विराजमान होने का भी अधिकार नहीं होता,'' परन्तु यहां ऐसा न होने के कारण विचार क्या कि हम 'यज्ञम् ब्रह्म,' इसलिए वेद कहता है ''यजमानो! तुम अपनी

गति को ऊर्ध्व बनाओ। तुम अपनी गति को द्यु–लोक में ले जाओ। द्यु–लोक का अभिप्राय क्या? जैसे द्यु–लोक में यह जगत्, यह मानव की आभाएं रमण कर रही हैं, पक्षपात से रहित जो विचारधारा हैं जब वह अन्तरिक्ष में रमण करेंगी तो यह द्यु–लोक पवित्र बनता चला जाएगा।'' आज हमें इस द्यु लोक को पवित्र यजमानों के द्वारा बनाना है।

चन्द्र एवं सूर्यादि मण्डलों में भी यज्ञ किए जाते हैं

मुझे एक विषय बहुत ही परम्परा से स्मरण आता रहता है बेटा! हमारे यहां ऐसा कुछ माना जाता है सूर्यमण्डल है, चन्द्रमण्डल है, मंगल है और भी प्रभु के इस राष्ट्र में नाना प्रकार के मण्डल हैं। महानन्द जी ने मुझे प्रेरणा दी है कि यहां पृथ्वी–मण्डल पर यज्ञ हो रहा है तो इसी प्रकार के यज्ञ सूर्यमण्डल में, चन्द्रमण्डल में, बुध में, मंगल इत्यादि लोक–लोकान्तरों में बुद्धिमानों की वेद की आभा के द्वारा होते रहते हैं। क्योंकि वेद नाम प्रकाश का है। जिस प्रकार का प्राणी है, उसी प्रकार का वेदों में ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। जैसे सूर्यमण्डल है उसमें अग्नि प्रधान है तो अग्नि प्रधान वाले लोक में उसी प्रकार की समिधा अग्नेय प्राणी यज्ञ में देते हैं।

सूर्य–लोक में 'जातवेद' नामक अग्नि में यज्ञ होता है

उसमें अग्नि कौन सी प्रदीप्त होती है? जिसमें यज्ञ करते हैं, जिसमें वह समिधा भस्म होती है। तो कहा जाता है वह अग्नि **'जातवेद'** नाम की अग्नि है। 'जातवेद' नाम की अग्नि कौनसी होती है? जातवेद नाम की वह अग्नि होती है जो 'जा' और 'त' मिल करके जिस अग्नि का निर्माण होता है। मुनिवरो! देखो 'जा॰ 'त' 'अमृवी प्रवे अस्तः', ऐसा वेद कहता है। वह जो यज्ञशाला है वह भी अग्नेय है और उसमें भस्म कौनसी सामग्री? ऋषि कहते हैं एक समिधा है। अग्नेय ही विचार है उसी प्रकार का प्राणी, उसी प्रकार की लेखनीबद्ध करके 'स्वाहा' कह रहा है। कैसा यह विचार है? आज मैं यह विचार कर रहा हूं कि 'जातवेद' नाम की अग्नि कौन सी है? बेटा! **'जातवेद नाम की अग्नि वह है जो विचारी जाती है।'** वह कौन सी अग्नि है? जिसे विचार रूपों से प्रदीप्त किया जाता है? मेरे प्यारे ऋषिवर! जब एक विद्वानों का ब्रह्मयज्ञ हो रहा है, जब ब्रह्मयज्ञ होता है, तो वहां मृत्यु के ऊपर विचार–विनिमय होता है। कहीं द्युलोक के सम्बन्ध में विचार–विनिमय होता है। जैसे मंगलमण्डल है, वहां पार्थिव तत्व प्रधान है, उसी प्रकार की समिधा उसी प्रकार की सामग्री। वहां इसी प्रकार की लौकिक अग्नि में यज्ञ किया जाता है।

प्रत्येक इन्द्रिय को ब्रह्ममय मानकर, विषयों की सामग्री बनाकर, मन और प्राण दोनों की समिधा बनाकर, ब्रह्म विचार नामक यज्ञ करो। ब्राह्मणों! तुम लोगों के अज्ञान को नष्ट करने के लिए भ्रमण करो

हमारे यहां, राजा जनक के यहां, और भी राजा–महाराजाओं के यहां ब्रह्मयज्ञ चलता रहता था और वह जो ब्रह्मयज्ञ है वह कितना सुन्दर है? जहां ब्रह्मविचार होता हो, जहां ब्रह्मवेदना का प्रतिपादन किया जाता हो, उसको 'ब्रह्मविचार' कहते हैं। ब्रह्मविचार का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय उस ब्रह्म में पिरोयी हुई होनी चाहिए। जब मुनिवरो! प्रत्येक इन्द्रिय को हम ब्रह्म में पिरोयी हुई स्वीकार कर लेते हैं तो वहां प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को सामग्री बनाया जाता है। वहां मन और प्राण रूपी दो समिधा होती हैं। मुनिवरो! दोनों जो हृदय में प्रदीप्त रहती हैं। इन्द्रियों का विषय इनमें सामग्री बन करके आहुति प्रदान करता है। आहुति दी जाती है वह भस्म हो जाती है। तो इसीलिए वह जो विचार रूपी अग्नि है जो मानव के हृदय में प्रदीप्त रहती है, उस अग्नि को मुनिवरों! कोई अनाधिकारी नहीं बन सकता। उस अग्नि से ऊंचा भी कोई प्रकाश नहीं होता। ऐसा कहा जाता है वह विचार। इसीलिए वेद कहता है यजमानों! तुम ब्रह्म के आदेश के अनुसार, आज तुम उद्गाता के अनुसार इनके आदेशों का पालन करके तुम अपनी गति को ऊर्ध्व बनाओ। कैसे बनाओ? हे ब्राह्मणो! तुम संसार में विचरण करो। हे विद्वानों! हे महान् व्यक्तियों! तुम संसार में भ्रमण करो। जिससे वह संसार जगत्मय (गतिमय) बन जाए, ब्रह्ममय बन जाए। प्रजा में अन्धकार न रहे। ऐसा सदैव वेद का यह विचार कहता है। परन्तु जब वेद यह कह रहा है कि ब्राह्मणों तुम भ्रमण करो, अपना तुम उपदेश दो। परन्तु देखो, यजमान की ऊर्ध्वगति बनाओ। पुरोहित बन करके बनाओ।

यजमान! होता यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व कम से कम एक वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करें

तो यजमान कौन होता है? यह हमारे यहां बेटा! मुझे परम्परागतों से स्मरण रहता है। मुझे जब यज्ञ कराने का किसी काल में अभ्यास था। आज तो मैं अपने आपत्तिकाल को भोग रहा हूं। परन्तु उस काल में हमें यह अभ्यास रहता था। यज्ञ कराने हैं तो यज्ञशाला में हम तो बेटा! उसको अधिकार देते थे, जो एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहता था और ब्रह्मचारी कौन होता है? जो ब्रह्म में अपनी प्रवृत्ति को लाने वाला हो। एक वर्ष तक वह यजमान किसी प्रकार के क्रोध की उसमें मात्रा भी न आए। काम की वासना तो दूरी रही। परन्तु क्रोध की मात्रा भी न आती थी और देखो, उसका नीचे पृथ्वी पर विश्राम रहता था। कन्दमूल फलों का वह पान करते थे, गौ दुग्ध का पान करते थे। वह भी सूक्ष्म एक वर्ष तक। इस प्रकार की चर्चा, इस प्रकार का विचार उसकी प्रत्येक इन्द्रिय ब्रह्म में पिरोयी हुई हो। अहा! यजमान! जो यज्ञशाला में विराजमान हो करके कामना करता है वह उसकी पूर्ण होती है। बेटा! वही पूर्ण होती है।

यजमान के गृह के अन्धकार (अज्ञान तथा रूढ़िवाद) से ब्राह्मण और वेद का अपमान होता है

ऐसा भी कहीं–कहीं प्राप्त हुआ है कि आज हम जिस प्रकार का याग करना चाहते हैं उसी प्रकार का राजा–महाराजा हो। जो धर्म है, मानवता है किसी भी मानव को, ब्राह्मण को धर्म से पतित नहीं कर देना चाहिए। जो धर्म और दर्शनों से पतित कर देता है, विमुख कर देता है वह ब्राह्मण केवल अपने स्वार्थ और उदर की पूर्ति मात्र में ही जीवन में अन्धकार लाता रहता है। ऋषि कहते हैं वह ब्राह्मण नहीं, उसको हम और ही कुछ उच्चारण किया करते हैं तो बेटा! विचार क्या? कि आज हमें यह विचारना है कि हम उस अनुसन्धान वेदी पर विराजमान हो जाएं जिस वेदी पर यजमानों के लिए आदेश है। हे यजमान! तू अन्धकार को अपने गृह में न आने दे। यदि तेरे गृह में अन्धकार आ गया तो देखो, यह ब्राह्मण का और वेद का अपमान है। जब तेरे गृह में वेद का अपमान होगा तो यजमान तुझे यज्ञशाला में जाने का अधिकार नहीं रहता। ऐसा बेटा! मुझे परम्परागतों से ही नहीं, इसका प्रचलन इसके अनुयायी हम रहते रहे हैं।

पवित्र विचारों के साथ यज्ञ करने पर यज्ञ सफल होता है

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते थे कि संसार में विचारों का यज्ञ करो। **सबसे पूर्व विचारों का यज्ञ करने के पश्चात् जब कर्मकांड हो करके यज्ञ किया जाएगा तो वे कामनाएं सफल होंगी।** अहा! मेरे प्यारे महानन्द जी भी कुछ इस सम्बन्ध में उतावले हैं कि मैं भी कुछ अपने शब्दों का उच्चारण करूं। परन्तु विचार यह है कि मैं यह उच्चारण कर रहा हूं संसार में यज्ञमयी ज्योति होनी चाहिए। जब यह संसार यज्ञमयी–ज्योति को लाने का प्रयास करता है तब उसको यज्ञ कहते हैं। क्योंकि **भौतिक–यज्ञ से आध्यात्मिक–यज्ञ होता है** और भौतिक यज्ञ से ही भौतिक विज्ञान की उत्पत्ति होती है। भौतिक विज्ञान इसी के आश्रित रहता है।

यज्ञशालाएं अनेक कोणों की बनाई जाती थीं। यज्ञों द्वारा वृष्टि होती थी और रोगों का निवारण होता था

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! जब हम किसी काल में महर्षि भारद्वाज आश्रम में प्रकट होते थे। तो महर्षि भारद्वाज मुनि अपने शिष्यगणों के सहित यज्ञशाला में यज्ञ की रचना को करके वे दृष्टि में रखते थे कि वे सुगन्धि–दायक औषधियों का पान करना, **विचारों से उन औषधियों को पवित्र बनाना उसके पश्चात् उसकी आहुति देना।** आहुति देने का अभिप्राय यह कि आहुति 'स्वाहा' कह करके अग्नि को समर्पित कर देना है। अग्नि क्या है? जो इस संसार में प्रदीप्त हो रही है उस अग्नि के द्वारा प्रार्थना बद्ध हो करके, जो कार्य किया जाता हो। अह! 'यज्ञम् ब्रह्मव्यापक प्रवे।'' पूज्यपाद कहा करते थे कि 'यज्ञ अस्वति' कहलाई जाती है।

भारद्वाज मुनि के आश्रम में जब यज्ञ होता तो इस प्रकार के परमाणु यज्ञशाला में उत्पन्न होते थे। क्योंकि यज्ञशाला अष्टकोण होती है बारह कोण भी होती है देखो छब्बीस कोण भी होती है, 99 कोण की भी यज्ञशाला होती है वेद में उसका प्रचलन है। हमारे यहां और भी कर्मकाण्डों के नाना प्रकार के भेद हैं। क्योंकि यज्ञशाला इस प्रकार की होती हैं।

जहां वृष्टि हो जाती हो जिस प्रकार का 'यज्ञम् ब्रह्मे आस्वान' होता है। इस प्रकार बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है वृष्टि यज्ञ कराने का ऋषि मुनियों को अभ्यास रहा है। वृष्टि यज्ञ का अभिप्राय यह है कि उसमें उसी प्रकार की समिधा हो। समिधा का अभिप्राय यह समिधा विचारों की समिधा। वृक्ष की समिधा चन्दन की समिधा और भी नाना प्रकार की समिधा हो। ऐसा मुझे स्मरण है यहां एक रोग होता है जिसे यक्ष्मा कहते हैं। हमारे यहां

जब यज्ञ करते थे तो वे नाना प्रकार के रोग भी शान्त हो जाते थे। कौनसा ऐसा रोग है जो यज्ञ से समाप्त नहीं होता। ऐसा मुझे स्मरण है मुनिवरो! एक वर्ष तक **यक्ष्मा** के रोगी को यज्ञ करना चाहिए ब्रह्मचारी रह करके। किस प्रकार का वह याग है? मैं उसका सूक्ष्म वर्णन किये देता हूं उसमें 'क्रिकल' की 'कीर' की समिधा हो और 'ग्लो' हो, 'स्वनि' हो, 'श्वेताम्बरी' हो, 'चन्दन' हो इसी प्रकार 'अपामार्ग' हो 'आश्वतकेतु' नाम का वृक्ष होता है जो प्रायः हिमालय कन्दराओं में प्राप्त होता है। उसकी समिधाओं को एकत्रित करके उसमें 'आस्वाद' नाम की औषधी होनी चाहिए। 'गौधृत' होना चाहिए और भी नाना प्रकार की सुगन्धित पदार्थ हो और भी ऊँची–ऊँची औषधियां नाना प्रकार की वनस्पतियां। ऑ१ वनस्पतियों को औषधियों को एकत्रित करके यज्ञ सामग्री बनाई जाती है और एक वर्ष तक लगभग उसमें गोधृत के द्वारा, उस सामग्री के द्वारा जो मानव यज्ञ करता है। देखो जो गो घृत होता है उसका लेपन करना। परन्तु यज्ञ वेदी तीन कोण की होनी चाहिए। उसमें अग्नि उतनी होनी चाहिए कि सामग्री जाते ही भस्म हो जाए। परन्तु इस प्रकार का एक वर्ष करने मात्र से यक्ष्मा जिसके हृदय क्लान्त होते हैं वह शुद्ध हो जाते हैं। उस प्रकार का परमाणु जब उसके शरीर में जायेगा तो रोग समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार का कर्मकाण्ड हमारे यहां परम्परागतों से रहा है। इस सम्बन्ध में मैं आयुर्वेद को नहीं लेना चाहता हूं।

चन्दन के काष्ठ से यज्ञ करना चाहिए

हमारा विचार यह है कि हम अपने जीवन को ऊँचा बनाने का प्रयत्न करें। हमारा जीवन कैसे ऊंचा बनेगा? कैसे आभायुक्त बनेगा? इसके ऊपर एक महान विचार और महत्ता का एक आदर्श हमारे समीप होना चाहिए। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का विचार यह कि हम यज्ञ इत्यादि कर्म करें और द्यु–समिधा को अपनाने का प्रयास करें। द्यु–समिधा क्या है? उस द्यु–समिधा को मैंने बहुत पूर्व काल में दिया। मानो सूर्य –मण्डल में एक वृक्ष होता है जो **अग्निय वृक्ष** है। जिसे **'श्वाताम्बरी आभाकृति'** वृक्ष कहते हैं। जिसमें पुण्य आत्मा भी जिस समिधा से यज्ञ करते हैं। जातःवेद नाम की अग्नि में उस वृक्ष की समिधाओं का विचार और उसमें स्वाहा दिया जाता है। नाना प्रकार की अग्नियां होती हैं। चन्द्र–मण्डल में एक वृक्ष होता है जिसको **'श्वातकेतु'** नाम का वृक्ष कहते हैं। वह और 'अस्वादि', 'श्वातकेतु' ये वृक्ष होते हैं। जिनके द्वारा चन्द्र –मण्डल के प्राणी प्रायः यज्ञ करते हैं और वह अग्नि को समर्पित कर देते हैं। इसी प्रकार चन्द्र–मण्डल में **'समी, स्वामी चन्द्रकिनान, आधुनि, प्राणाग्रह'** यह नाना प्रकार के वृक्ष जो चन्द्र–मण्डल में होते हैं उनके द्वारा प्रायः यज्ञ किया जाता है। मैं यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूं कि नाना प्रकार के वृक्ष भिन्न–भिन्न मण्डल में होते हैं परन्तु एक ऐसा सुगन्धिदायक एक वृक्ष होता है जो सूर्य–मण्डल को त्याग करके प्रायः सभी लोकों में प्राप्त होता है। जिसको हमारे यहां **'चन्द्रविहीन केतु'** नाम का वृक्ष कहते हैं। उसको लोक में 'चन्दन' भी कहते हैं और चन्दन की 'स्वादि' होती है। परन्तु देखो, वह अग्नेय लोकों को त्याग करके और प्राय' सर्वत्र लोकों में प्राप्त होता है। अब वह विचार आता है क्या यह हम केसे जानें? परन्तु यह कैसे सिद्ध हो? क्या यह उन लोकों में प्राप्त होता है? परन्तु यह हमारे यहां प्रायः वैज्ञानिकों से भी प्राप्त होता है। प्रायः आध्यात्मिकवेत्ताओं से भी प्राप्त होता है। तो मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा।

आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर करके लोक–लोकान्तरों का भ्रमण करने वाले बनो

उच्चारण करने का विचार यह है कि आज हम नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों में भ्रमण करने वाले बनें। विचारक बनें और अपनी आभा को ले जाने का प्रयास करें। हे पत्नी सहित यजमानो! तुम पति–पत्नी यज्ञशाला में विराजमान हो करके अपने ब्रह्मचर्य को अपनाते हुए अपने ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति बनाओ। वह ब्रह्मचारी कितना ऊर्ध्व होता है? हमारे यहां जो योगीराज होते हैं, जो योग को जानते हैं, योग की समिधा को जानते हैं, योग में मुनिवरो! एक यज्ञशाला होती है। जिसमें समिधाएं प्रदीप्त होती हैं। सामग्रियों की आहुति दी जाती हैं। हमारे इस मानव शरीर में एक ब्रह्मरन्ध्र नाम का स्थान होता है। वास्तव में मस्तिष्क की नाना प्रकार की धाराएं आचार्यों ने मानी हैं। जैसे मुनिवरो! देखो, 1) मस्तिष्क 2) लघुमस्तिक 3) सोम मस्तिष्क और भी नाना प्रकार के मस्तिष्क हैं। परन्तु वह जो ब्रह्मरन्ध्र है उसके पिछले कुछ विभाग में एक यज्ञशाला होती है। त्रिकोण इस प्रकार का एक स्थल होता है परन्तु उस स्थल में इस प्रकार की नस नाड़ियां होती हैं जहां, 'इंगला' ('इडा' नामक नाड़ी जो कि 'मूलाधार' रीढ़ की हड्डी के अन्तिम भाग के बाएं भाग से आरम्भ होकर ब्रह्मरन्ध्र में समाप्त होती है।) और पिंगला ('पिंगला' नामक दूसरी नाड़ी जो कि 'मूलाधार' रीढ़ की हड्डी के अन्तिम भाग के दाएं भाग से आरम्भ होकर

इडा के साथ ही समाप्त होती है।) नाम की रीढ़ से (1) 'श्वातचन्द्र केतु' (2) 'मंगलकेतु' और (3) 'सूर्यकेतु' तीन नाड़ियां चलती हैं। वे रीढ़ के इस विभाग से होती हुई रीढ़ के साथ–साथ क्योंकि उनका सम्बन्ध मानव के ब्रह्मरन्ध्र के स्थल में उन नाड़ियों से सम्बन्ध होता है। तो वहां एक मुनिवरो! मानव के नख से लेकर के और वह ग्रीवा से, उपस्थ इन्द्रियों से नाभि केन्द्र से, हृदय केन्द्र से, वह घ्राण चक्र को पार करता हुआ और मस्तिष्क देखो, जिसको **त्रिकुटि** कहते हैं उसके द्वार से होता हुआ ब्रह्मरन्ध्र के पिछले विभाग में एक स्थल होता है जहां उन नाड़ियों का सबका सम्बन्ध होता है। तो वहां से यह नाना प्रकार की नाड़ियां निकलती हैं। वह **'परिकांचनन धृतिः'** नाम का आसन होता है जिसको **'परिभि'** नाम का आसन भी कहते हैं हमारे यहां इसको हम **'पदम आसन'** भी कहते हैं, **'सिद्ध आसन'** भी कहते हैं साधारण वाणी में परन्तु जब हम उसका प्रतिपादन करते हैं तो इस ब्रह्मचर्य को 'प्राण' और 'मन' की एकता लाकर के उन नाड़ियों का एक तारतम्य लगा देते हैं, इससे ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बन करके वह जो मस्तिष्क है, ब्रह्मरन्ध्र है उसके निचले भाग में जो स्थल होता है उसमें वह ब्रह्मचर्य की गति स्थिर हो जाती है और वह चन्द्र–लोक नाना प्रकार के लोक–लोकान्तर वाली वाक नाड़ियों जो ब्रह्मरन्ध्र में हैं उनकी इतनी ऊर्ध्व गति हो जाती है कि वह योगी अपनी आत्मा की विशेषता को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाने मात्र से ही लोक–लोकान्तरों का दिग्दर्शन कर लेता है। मुनिवरो! नाना प्रकार की असम्भव को भी सम्भव बना लेता है।

योगी सिद्ध कौन होता है?

योग के सम्बन्ध में मुझे परमपिता–परमात्मा की अनुपम कृपा से प्रायः परम्परागतों से बड़ा अभ्यास रहा। आज तो बेटा! हम इस आपत्ति काल के नाते कोई वाक्य उच्चारण करने के लिए तत्पर नहीं। परन्तु विचार यह कि योग किसे कहते हैं? **योग उसे कहते हैं** जो नस नाड़ियों के चक्र को जानता हुआ और ब्रह्मरन्ध्र में देखो ब्रह्मचर्य की ओ३म् रूपी धागे के साथ जिनका ब्रह्मचर्य ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है वह योगी सिद्ध होता है और वह इस संसार में जीवन मरण से मुक्त हो जाता है। क्योंकि उसका ब्रह्मचर्य का जो तारतम्य है उपस्थ इन्द्रियों का तारतम्य जब ऊर्ध्व हो जाता है।

योगी सिद्ध किसे बनाते हैं?

मेरे आश्रम में बेटा! परम्परागतों से एक बालिका रहती थी परन्तु उस बालिका ने एक ही वाक्य कहा था, बहुत पुरातन काल में। महाराज! मैं अपने जीवन को ऊर्ध्व बनाना चाहती हूं। कैसी ऊर्ध्वगति? यह सिद्धि कैसे प्राप्त होती है? यह जो नाना प्रकार के पशुओं के घृत हैं उनके पान करने से वह वस्तु प्राप्त नहीं होती। वह वस्तु एकान्त स्थान में जब नाना प्रकार की वनस्पतियों का, नाना वृक्षों के पंचांग को ग्रहण किया जाता है और उसी से अपने शरीर को बनाया जाता है उसके पश्चात् गो–घृत भी वनस्पतियों का रस है द्यु–लोक में जिसकी प्रतीत्ति रहती है। इसी प्रकार उसका ब्रह्मरन्ध्र से प्रायः सम्बन्ध होता है तो वह जो ऊर्ध्व गति है, ब्रह्मचर्य की जब ऊर्ध्वगति हो जाती है तो उस योगी सिद्ध आत्मा का संसार में नाना प्रकार के भोग–विलासों की जो इच्छाएं हैं, वासनाएं हैं वह ऐसे दग्ध हो जाती हैं जैसे मुनिवरो! देखो, जल के प्रहार से अग्नि का वेग समाप्त हो जाता है।

प्राण और मन के संयोग और नियन्त्रण से ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति होती है

आज मैं यह क्या वाक्य उच्चारण करने चला हूं? मेरे प्यारे महानन्द जी बड़े उतावले हैं शब्दों के लिए। परन्तु विचार क्या है? मैं यह क्या उपदेश देने लगा? मैं यौगिक क्षेत्र में चला गया हूं। विचार यह है कि प्राण के द्वारा ही ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति होती है। ब्रह्मचर्य ऊंचा बनता है। हमारा जब वह पुरातनकाल रहा, मेरी पुत्रियां यह कहा करती थीं कि हम उस यज्ञशाला को जानना चाहती हैं जिसमें ब्रह्मयज्ञ होता है। जिसमें ब्रह्मचर्य का यज्ञ होता है। वनस्पतियों के रसों का यज्ञ होता है। मुनिवरो! इसलिए वेद का ऋषि कहता है, हे यजमानो! द्यु लोक में तुम अपनी प्रवृत्ति को ले जाओ। हे यजमान पत्नी! तुम अपनी ऊर्ध्वगति को द्यु–लोक में ले जाओ। उस सूर्य मंडल की ऊर्ध्वगति में ले जाओ जिससे तुम्हारे जीवन की आभाएं महत्ता में रमण करती रहें। विचार क्या बेटा! आज हम उस दर्शन में जाना चाहते हैं जो दर्शन हमारे जीवन को ऊर्ध्व बनाता है। जिसकी आभा इस संसार में परिणत रहती है।

शुद्ध आसन, शुद्ध आहार, शुद्ध व्यवहार, शुद्ध चलन से व्यक्ति योगी बन पाता है

मुझे स्मरण है बेटा! जब बाल्यकाल में योगी बनाया जाता है जब शिष्य को आचार्य कुल में योगी कुल में, जब योग्याभ्यास करने के लिए ब्रह्मचारी आता है तब उसको योगी बनाया जाता है। योग के लिए उनकी आभा उसको विकृतता (सुधार) एक मानवीयता से सम्बन्ध होती है। उसकी जब ऊर्ध्वगति बनाई जाती है तो उसके लिए वैसा आसन, वैसा उसका आहार, वैसा ही व्यवहार वैसा ही उनका चलन होता है। **बारह वर्ष तक योगी को अभ्यास करना चाहिए।** योगाभ्यास के लिए उसको नाना प्रकार की वनस्पतियों का पान करना चाहिए। तब उसके पश्चात् योगी सिद्ध होता है और वह योगी जीवन–मरण की मुक्त अवस्था को प्राप्त होने के लिए प्रयत्न करता रहता है।

महाराजा शिव के समान ऊर्ध्वगति वाले बनो

बेटा! आज मैं यह वाक्य क्या उच्चारण करने जा रहा हूं विचार यह कि ऋषियों ने कहा है, वेद कहता है हे यजमान! तुम अपनी ऊर्ध्वगति को बनाओ। हे होता जनो! तुम होता बनो। कैसा होता? तुम्हारी धुर्वगति (नीचे को) नहीं होनी चाहिए। ऊर्ध्वगति होनी चाहिए। ऊर्ध्वगति किसे कहते हैं? जहां ब्रह्मरन्ध्र में नाना प्रकार की विशेष नाड़ियां हैं उसे **दिव्यदर्शन** कहते हैं। **दिव्य–चक्षु** भी कहा जाता है। हमारे यहां मुनिवरो! कैलाश पर्वत पर महाराजा शिव हुए जिनकी अहिंसा परमोधर्म में बड़ी गति थी। अहा! जिनके द्वारा हिंसक प्राणी भी उनके चरणों को छूते थे। यह क्या है? यह मानव की आभा का दिग्दर्शन है।

उनका **तीसरा नेत्र** क्या है? वह जो ऊर्ध्वगति जो यज्ञशाला है वह जो सुन्दर सा स्थल है उसमें जब ब्रह्मचर्य ऊर्ध्वगति होकर के भ्रमण करता है और वह ऊर्ध्वगति से द्यु–लोक को प्राप्त होता है। उस काल में उसकी एक आभा का प्रायः सुन्दर दिग्दर्शन होता है। वह आचार्य, वह ब्रह्मचारी, वह ऋषि ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता हुआ इस संसार में एक महत्ता की उज्ज्वलता को धारण करता रहता है। तो मैं यह वाक्य इसलिए उच्चारण करने जा रहा हूं। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को संसार में ऊंचा बनना चाहिए। जितना भी पति पत्निवाद है जितना भी सामाजिक वाद है यह तो लौकिकता वाला वाद है परन्तु परम गति का वह जो एक स्थान है वह और ही है। देखो आत्मिक स्थान में न कोई किसी की पत्नी होती है न कोई किसी का पति होता है। क्योंकि उस ईश्वर के राष्ट्र में अंधकार नहीं होता। उसके राष्ट्र में जाने से किसी प्रकार का अन्धकार और किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द नहीं रहता है। वहां एक दूसरे के प्रति धारणा स्वतंत्र रहती है, विचारशीलता रहती है। क्योंकि वहां वे प्राणी जाते हैं जो इस लोक को त्याग करके लोक में सफल हो जाते हैं। वह परमात्मा के राष्ट्र में चले जाते हैं और परमात्मा का वह राष्ट्र कैसा है? परमात्मा का राज्य वहाँ कैसा है? जहां मुनिवरो! प्रकाश ही प्रकाश रहता है। अंधकार नहीं रहता। इसलिए आज का हमारा यह वाक्य कह रहा है मुनिवरो! कि तुम अपनी गति को ऊर्ध्व बनाओ। महान बनने का प्रयास करो। जिससे तुम्हारा जीवन सुन्दर बने। महत्ता वाला बने।

ब्रह्मवेत्ता वशिष्ठ ऋषि 'सुप्रजन्य–ब्रह्मचारी' थे

परन्तु देखो, हे यजमानो! संसार में जितनी ऊर्ध्वगति होगी उतना ही तुम्हारा गृह स्वर्गमय होगा, आनन्दमय होगा और जितनी तुम्हारी गति धुर्व (निम्न) होगी, भोग विलासों में होगी उतना ही गृह तुम्हारा नारकीय बनेगा। उसमें नरक का वास हो जायेगा। कलह का स्थल बन जाता है। इसलिए वह एक ऐसा स्थल होना चाहिए, ऐसा गृह हो जहां अपने संकल्प के साथ में यज्ञ होते हों। मुझे स्मरण है क्या महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जिनको ब्रह्मवेत्ता कहते हैं, उन्होंने अपने जीवन में दो पुत्रों को उत्पन्न कर अरून्धति से यह कहा कि तीन ही पुत्र उत्पन्न करने हैं। उन्होंने अपने जीवन में तीन समय अरून्धति और वशिष्ठ एकान्त स्थल में वास किया। मानो तीन पुत्र उत्पन्न किये। उसके पश्चात् वे सुप्रजन्य ब्रह्मचारी रहे जिनको 'इन्द्र' नाम का ब्रह्मचारी कहते हैं। 'आदित्य' ब्रह्मचारी और उनको ब्रह्मवेत्ता कहा जाता है। ऐसे ऋषियों को ही ब्रह्मवेत्ता कहा जाता है। परन्तु देखो, महानन्द जी के विचारों के कथानुसार आज का समाज कहां है। आज का समाज महानन्द जी के कथानुसार मेरे इन विचारों से बहुत दूर है। आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार केवल यह है "आज हमें अपने जीवन को ऊर्ध्व बनाना है" कैसे ऊर्ध्व बनाना है? जिससे हमारी इस पृथ्वी से लेकर के सूर्य मण्डल तक हमारी गति हो जाए। हमारा जीवन इतना ऊर्ध्व बन जाना चाहिए। तो आज हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है?

कि संसार में मानव के आने का अभिप्राय यह कि **भोग–विलासों को त्यागकर गृह को स्वर्ग बनाना राष्ट्र को स्वर्ग बनाना।** यज्ञ इत्यादि कर्म करना। यह सर्वत्र मानव का कर्त्तव्य है।

ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा मानव द्यु–लोक को प्राप्त होता है

यहाँ दूरित (दुर्गुणों) के लिए मानव नहीं आता। इस वाणी से यथार्थ उच्चारण करने के लिए मानव आता है। इस वाणी से मानव सदैव वाक्य अशुद्ध उच्चारण करता रहता है। अरे! परमात्मा अगले जन्मों में उस मानव की वाणी को छीन लेते हैं। इसलिए हे मानव! तुम अशुद्ध वाक्य न उच्चारण करो क्योंकि अशुद्ध वाक्य तुम्हारे मानवीयता को नष्ट करने वाले हैं। क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय तुम्हारी यज्ञमय होनी चाहिए। कैसी यज्ञमय कि प्रत्येक इन्द्रिय से शुभ कामना शुद्ध तरंगें उत्पन्न होनी चाहिए। शुद्ध शब्द हों, महत्ता वाले शब्द हों, विचार वाले शब्द हों।

इसी प्रकार हमारी जो घ्राण इन्द्रिय है वह सदैव यज्ञ की सुगन्धि को पान करती रहे। इसी प्रकार हमारी त्वचा सदैव संसार में स्नेह युक्त और ज्ञान युक्त स्पृश्यता को ग्रहण करती रहे। इसी प्रकार रसना में शुद्ध वातावरण वाला अन्न हो। शुद्ध वाक्य हो। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय अपना–अपना कार्य जब शुद्ध रूपों से उसका व्यवहार रहेगा तो प्रत्येक इन्द्रिय यज्ञमय बन जायेगी और यज्ञमय बनके उसकी इसी यज्ञ तक नहीं मानो देवताओं के यज्ञ में द्यु–लोक में वास रहता है। **इसलिए द्यु–लोक की जो समिधा है वह मानव का विचार है।** ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा जब विचारों को उच्चारण किया जाता है अग्नि (ज्ञान) से सना हुआ जो विचार होता है वह मानव को द्यु लोक को प्राप्त करा देता है। आज मैं अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार देना यह है कि मेरे प्यारे महानन्द जी का अब समय नहीं रहा। कल ये अपना राष्ट्रीय विचार प्रकट करेंगे। परन्तु मैंने कई काल में अपना राष्ट्रीय विचार दिया कि राजा कैसा होना चाहिए? जैसा वेद कहता है। जैसा वेद ने कहा ब्राह्मण के द्वारा राजा का चुनाव हो राष्ट्र का निर्माण हो। उस राजा के यहां चरित्र और मानवता होनी चाहिए।

बेटा! आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि **हम अपने जीवन को ऊर्ध्व बनाए, द्यु–लोक की समिधा बन करके रहें।** संसार में अपने विचार को ऊर्ध्व बनाए जिससे गृह में किसी प्रकार का भी विवाद न हो। ऐसे विचार मधुर वाक्य द्वारा हों, स्नेहयुक्त हों ज्ञान युक्त हों, सुगन्धियुक्त हों। इनके साथ–साथ आज का विचार यह समाप्त विचार होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त हो जायेगी।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : 25–फरवरी–1972
समय : दोपहर 3 बजे।
स्थान : लाखा मण्डप, बरनावा।

१२. यज्ञ यज्ञमान का सौभाग्य १७ अक्टूबर १९७१

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। यह पवित्र वेद–वाणी हमें किस मार्ग के लिए प्रेरित करती चली जा रही थी। आज हमें इस प्रेरणा के अनुसार अपने वाक्य को प्रारम्भ करना चाहिए। हमारा वेद–पाठ आज कहीं यज्ञ के सम्बन्ध में अपना प्रकाश दे रहा था, कहीं चन्द्र–मंडल और नाना–मंडलों की चर्चाएँ आती चली जा रही थीं।

जहां हम यज्ञों के सम्बन्ध में अथवा लोक–लोकान्तरों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना किया करते हैं तो वहां हमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज हम परमपिता–परमात्मा की अर्न्तमयी उस महान ज्योति का दर्शन कर रहे हों जिस ज्योति का दर्शन करने के पश्चात मानव का जीवन ज्योतिर्मय ही दृष्टिपात आने लगता है। तो सबसे प्रथम आज हमें उस महान आनन्द के लिए और उस परम ज्योति के लिए विचार–विनिमय करना चाहिए जिस ज्योति के लिए प्रायः समाज तथा मानव प्रयास करता चला आया है। आदिकाल से ही नाना प्रकार का विचार हमारे मस्तिष्कों में रहा है। यहां ऊंचे–ऊंचे महापुरूषों की प्रतिभा में वह विज्ञान निहित रहता है जिस विज्ञान के लिए

मानव सदैव लालायित रहता है और उन चमत्कारों को मानव अपनी दृष्टि में लाना चाहता है। आज हम उन चमत्कारों की तो चर्चा प्रगट नहीं करेंगे। केवल वाक् यह उच्चारण अवश्य कर पाएंगे कि हमारा जो जीवन है वह एक महानता में परिणत होना चाहिए।

पूज्य महर्षि महानन्द जी की प्रेरणायें

जैसा मुझे महानन्द जी का कुछ संकेत, इनकी प्रेरणाऐं मुझे बारम्बार प्राप्त होती रहती हैं। इनका संकेत जब मुझे प्राप्त होता है तो मुझे कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता कि हम क्या उच्चारण करने लगें। वेद का जो विज्ञान है अथवा ज्ञान है वह नितान्त (पूर्ण) है। मानव के हृदय में इतना क्रियात्मक आना चाहिए जिससे हृदय इतना पवित्र हो जाऐं कि हम वेद के उन वाक्यों को श्रवण करना ही नही क्रियात्मक में लाना अपने लिए सहज स्वीकार करें। यदि हम वेद का अनुकरण नहीं करते अपने जीवन में उनको धारण नहीं करते तो वेद का पंडित मानो अक्षरों का बोधि
(बोधक) भी वह वैदिक नहीं कहलाया जाता। तो इसिलए हमें अपने जीवन को उसके अनुकूल बनाने का प्रयास करना है।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे विज्ञान की चर्चाओं के सम्बन्ध में प्रेरणा दे रहें हैं। वायु परमाणुओं की प्रेरणा दे रहे हैं। **यौगिक प्रेरणाऐं** इनकी बारम्बार प्रकट होती रहती हैं। मैं यह सदैव उच्चारण करता रहता हूँ कि हमारे यहाँ यह जो विज्ञान है यह एक प्रकार का वन है जिसमें जाने के पश्चात मानव को वास्तव में कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता। कोई समय था जब इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार विमर्श होता रहा है। उत्तर प्रश्नावली में भी बहुत कुछ इस सम्बन्ध में टिप्पणियां भी करते रहे हैं। आज भी हमारा यह वाक् प्रारम्भ होने जा रहा है।

आश्चर्यमय जगत

मैं चन्द्रमा के सम्बन्ध में अपनी कल्पना करने लगता हूँ, मंगल मंडल के सम्बन्ध में अपनी कल्पना करने लगता हूँ, पंच–महाभूतों के सम्बन्ध में भी अपनी कल्पना की जाती है तो बेटा! एक आश्चर्यमय ही जगत दृष्टिपात आने लगता है कि यह एक दूसरे के कितने सहायक हैं। बेटा जब हम विचार करते हैं कि अन्तरिक्ष है उस अन्तरिक्ष में कितने प्रकार के परमाणु जागरूक रहते हैं। सन्निधान मात्रा से ही वह परमाणु नृत्य करने लगता है। उसी नृत्य के आधार पर एक दूसरा सहायक बन जाता है। जैसे अग्नि परमाणु हैं, जल परमाणु हैं, पार्थिव परमाणु हैं, और वायु परमाणु हैं, अन्तरिक्ष परमाणु हैं बेटा! महतत्व के सन्निधान मात्र से ही उनका स्वभाव जागरूक हो जाता है जिस प्रकार यज्ञशाला में अग्नि मन्द हो रही है परन्तु घृत ही आहुति देने मात्र से अग्नि के परमाणुओं में विशाल गति ओत–प्रोत हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि उसमें अग्नि के परमाणु अधिक होने के नाते उसमें वायु की अधिक महत्ता होने के नाते अग्नि पूर्व से जागरूक हो जाती है।

सन्निधान

मेरे प्यारे महानन्द जी से मैंने कई काल में प्रकट करते हुए कहा था कि आज हम उस गति को जानना चाहते हैं जिस गति में प्रत्येक मानव की आभा नृत्य करने लगती है। मैं किसी वाक्य को गम्भीरता में ले जाना मेरा स्वभाव नहीं बना रहता है परन्तु मैं सदैव सन्निधान मात्र की चर्चा प्रगट करना चाहता हूं। महतत्व के सन्निधान मात्र से ही प्रकृति का स्वभाव जागरूक हो जाता है। प्रकृति अनादि रूपों में परणित रहती है। जिस प्रकार मानव के शरीर में आत्मा के केवल सन्निधान मात्र से ही इन्द्रियों का जो स्वभाव है उन तत्वों से मिलकर वह अपना–अपना स्वभाव जागरूक हो जाता है। वह स्वभाव अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के आधार पर होता है। जैसे प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्व मन माना गया है वह मन वायु में भी विचरण करता है, अग्नि में भी विचरण करता है और आपो ज्योति जल में भी रमण करता है। वह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्व है। आत्मा के सन्निधान मात्र से मन का स्वभाव जागरूक हो जाता है। वह आत्मा के समीप कहलाया गया है।

यज्ञोपवीत

जैसे यज्ञशाला में यज्ञोपवीत को धारण करने वाले को अधिकार होता है कि आज यज्ञ करने वाले बनें। यज्ञोपवीत का अभिप्राय क्या है ? यज्ञोपवीत को धारण करना भी किसको चाहिए यह भी हमारे यहां आता है। दर्शनकारों ने, ऋषि मुनिवरों ने और विचारकों ने कहा है मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव ने भी मुझे वर्णन कराया कि **यज्ञोपवीत का अभिप्राय है यज्ञ के समीप पवित्र हो करके जाना क्योंकि वह परम पवित्र है।** इसीलिए बेटा यज्ञ के

लिए यज्ञोपवीत बतलाया गया है। यज्ञोपवीत उसे धारण करना चाहिए जो तीनों ऋणों को अपने ऋण के रूपों में स्वीकार करने वाला हो और उन ऋणों से उऋण होने का प्रयास करता हुआ यज्ञशाला में परिणत हो जाए। इसीलिए उसे यज्ञोपवीत कहा जाता है।

मन–वायु

वायु इसी प्रकार हमारे यहां मन का जो स्वभाव है ''मनम् प्रवे अस्ति सुप्रजः'' ऋषि कहते हैं कि आत्मा के सन्निधान मात्र से मन का स्वभाव जागरूक हो जाता है और मन एक ऐसा सूक्ष्म तत्व है इसी की आभा से सर्वत्र जो स्वभाव है वह जागरूक हो जाता है। आज मैं मन के ऊपर अपनी विचारधारा प्रगट करना नहीं चाहता हूं। वाक् क्या है ? **यह जो मन है यह वायु में भी रमण करता है** और वायु की जो गति है वह मन के सदृश्य मानी गई है। मन से कुछ सूक्ष्म (कम) मानी गई है। जिस प्रकार मन की गति होती है इसी प्रकार वायु की गति होती है। अन्तरिक्ष द्वितीय श्रेणी का तत्व माना गया है जिसमें अग्नि और जल के परमाणु अधिकतर मिश्रित रहने वाले होते हैं। इसी के आधार पर ऋषि मुनियों ने कुछ ऐसा माना है ''पवित्र वादः ब्रह्मे लोक प्रभः अस्ति सुप्रजः''। ऋषियों ने कहा है कि हम आज उस ब्रह्म की चर्चा करने वाले बनें जिससे इस संसार की एक अव्याहृत गति बन जाती है इस **अव्याहृत गति** का मूल परिणाम केवल उसकी आभा ही को तो माना गया है बेटा ।

जब हम वायु के सम्बन्ध में विचार करने लगते हैं कि वायु की गति मन के सदृश है। एक यज्ञशाला की अग्नि में जब यजमान संकल्प के साथ स्वाहा देता है तो वह जितना यजमान का संकल्प सुन्दर होगा, महान होगा उतनी उसकी अव्याहृत गति विचित्र होगी। वह वायु में रमण करता हुआ द्यु–लोक को पहुँचाने की उसमें अधिक क्षमता होती है। अधिक क्षमता होने के नाते उसको हमारे यहां अव्याहृत गति वाला ही वायु कहा गया है। वायु की इतनी विशाल गति है कि ''ब्रह्म व्यापक प्रभः'' एक क्षण समय में जिस प्रकार मन की गति मानव के शरीर को अस्वस्थ कर देती है, मानव को रूग्ण भी बना देती है, मानव को चंचल बना देती है इसी प्रकार वायु की भी इसके सदृश इससे कुछ सूक्ष्म गति है। पर मन की गति अधिक सूक्ष्म है। वायु की गति कुछ इससे धीमी है। धीमी होने के नाते इसमें पार्थिवता होने से स्थूल बन जाती है। अग्नि होने के नाते उष्ण बन जाती है। इसमें जैसे–जैसे परमाणुओं का मिलान हुआ उसी प्रकार का नृत्य होने लगता है। अग्नि के परमाणुओं में भी नृत्य स्वाभाविक होता है और जल के परमाणुओं में भी होता है, पार्थिव परमाणुओं में भी गति होती है और इस गति का जो मूल कारण है, उसमें जो गति आती है वायु से प्राप्त होती है। **वायु में जो गति आती है वह अन्तरिक्ष से आती है** इसलिए इसका अन्तरिक्ष ही मानो स्त्रोत माना गया है। ''अन्तरिक्षम् ब्रह्म व्यापः'' ऋषियों ने कहा है यहां वेद का वाक्य भी कह रहा है कि महतत्व के केवल सन्निधान मात्र से इनका स्वभाव जागरूक हो जाता है। मैं आज इन वाक्यों को परमाणुवाद की उन गति में नहीं ले जाना चाहता हूं। इस गति के आधार पर हम अपनी अव्यह्नत गति को जानें।

योगाभ्यास

मुनिवरो इसी प्रकार हम जब योगाभ्यास के क्षेत्र में जाते हैं तो **योगाभ्यास उसी को कहते हैं जहां प्राण की गति को और मन की गति, दोनों का समावेश किया जाता हो।** जहां दोनों के मिलान करने की क्षमता हो उसी को हम योग की परम्परा माना करते हैं क्योंकि मन और प्राण दोनों का ही संसार में विवाद होता है। जहां मन और प्राण दोनों सुचारू रूप से अपनी एक गति में आ जाते हैं उस समय मानव की प्रवृति चंचल नहीं होती । हमारे यहां ऋषियों ने कहा है ''मनः मनः सप्तव प्रवे अप्राणाम निवृत्ति रूद्र भागः'' इसका उत्तर देते हुए ऋषि कहते हैं, ''प्रणाम ब्रह्म व्यापा लोकम् ब्रह्म विम्तुतिहि इदन्नम प्रभः अस्ति माम केतु ह्रदयः'' ऋषि ने प्रश्न किया कि यह जो मन है यह कितना गति वाला है? इसकी गति को कोई भी मानव संसार में एकत्रित नहीं कर सकता? उस समय बेटा ! ऋषि ने उत्तर देते हुए कहा कि इस मन की गति को यदि कोई एकाग्र कर सकता है तो इसका मिलान केवल प्राण के आश्रित होकर ही किया जा सकता है। इसीलिए ऋषि–मुनियों ने कहा है, आचार्यों ने कहा है कि **मन को यदि एकाग्र करना है तो प्राण में इसका समावेश कर दो।** बिना प्राण के समावेश के इसकी गति कदापि भी धीमी नहीं होती। मन और प्राण सर्वत्र ब्रह्मांड में अपना कर्त्तव्य कर रहा है मानो सूर्य–मंडल में क्या, चन्द्र–मण्डल में क्या, आरूणि में क्या, वशिष्ट में क्या, अरूणदति में क्या, रोहिणी में क्या, जेठाय में क्या, शनि में क्या, सोम केतु में क्या, अचंग में क्या, ध्रुव में क्या, सर्वत्र लोक–लोकान्तरों में एक मन

और प्राण ही सुचारू रूप से काम करता है। इसीलिए मन और प्राण दोनों की गति को जो एकाग्र कर लेता है और जिस समय इसके ऊपर सवार हो जाता है तो यह योगी सर्वत्र ब्रह्मांड की गति को अपने में समाहित कर लेते हैं क्योंकि मन और प्राण जो कार्य कर रहे हैं सर्वत्र ब्रह्मांड में।

इसका प्रमाण मैं केवल यह दिया करता हूं कि **विभाजन करने वाला संसार में मन है और विभाजन जिसका किया जाता है वह प्राण कहलाता है।** इसीलिए देखो जितना भी विभाजन है पृथ्वी का ले लो सूर्य–मंडल में लिया जाए, चन्द्र–मंडल की नाना किरणें हैं, वह नाना कार्य किया करती हैं परन्तु उनका विभाजन केवल प्राण के द्वारा, प्राण तो विभाजित होता है और मन उसका विभाजन करता है। **मन ज्ञान का प्रतिनिधि** होने के नाते ऐसा करता है। इसी प्रकार जैसे मानव का एक परिवार है। इस परिवार में पुत्री है, पत्नी है, महामाता है, पिता है, गुरूजन है, इत्यादि सर्वत्र एक पंक्ति में विराजमान हैं। अब मानव अपने परिवार का, कुटुम्ब का परिचय देता है, यह मेरी माता है, यह मेरी पत्नी है, यह महामाता है, यह गुरूजन है तो इस प्रकार का परिचय देता है, तो मन की गति भी परिचय के साथ साथ जैसे चित्र पर पटल होते हैं और वह संसार का चित्रण करते रहते हैं इसी प्रकार अपनी प्रवृतियों में वह प्रवृत्ति अपनी गति करती रहती है, विभाजन होता रहता है। जब पत्नी आती है तो प्रवृत्तियों का विभाजन हो गया। माता आई तो तब विभाजन हो गया इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी कुटुम्ब का परिचय में ही कितना विभाजनवाद होता है। इसी प्रकार नाना प्रकार की किरणों में क्या, चन्द्रमा में क्या, जितने भी लोक–लोकान्तर हैं इनमें मन और प्राण ही कार्य कर रहा है। इसीलिए मन प्राण के साथ में ब्रह्मांड में परम आत्मा कार्य कर रहा है और इस मानव के शरीर में एक आत्मा कार्य करता है, जिसके आधार पर यह संसार नृत्य करता रहता है। आत्मा जब मन और प्राण के ऊपर सवार हो जाता है उस समय यह आत्मा अपने प्रभु से मिलान के लिए चल देता है, प्रभु से मिलान करता है। बिना मन और प्राण को एकाग्र किए हुए आत्मा इन पर सवार हुए बिना प्रभु से मिलन नहीं होता किसी प्राणी का। अब जो मानव प्रभु से मिलान करता है वह संसार में प्रभु के विज्ञान को नहीं जानता होगा क्या ? चन्द्रमा में नहीं जा सकता, क्या ? मंगल में नहीं जा सकता क्या ? वह सूर्य मंडल में सूर्य की किरणों के साथ रमण नहीं कर सकता क्या ? यह योग के आधार पर हमें यौगिक शक्तियों में विचारना चाहिए। हमें इसके ऊपर वास्तव में प्रायः विचार–विनिमय करना चाहिए। आज मैं अधिक विचार देने नहीं आया हूं क्योंकि विचार तो बहुत कुछ विशाल है।

कितना गम्भीर है बेटा! वेदों का ज्ञान। आज हमें इस महान ज्ञान के ऊपर गौरव होना चाहिए क्योंकि प्रभु ने हमें दिया है और इसलिए दिया है क्योंकि ये जीव प्रभु के प्रिय पुत्र है। इस मार्ग से इस प्रकृति के आवेशों को त्याग करके अपनी मानवता को जानते रहें ऐसा उन्होंने संकेत दिया है। आज हमें अपने प्रभु को तो जानना ही चाहिए। हमें योग की प्रतिक्रियाओं में जाना ही चाहिए।

मुझे स्मरण आता रहता है जब मैं अपने पूज्यपाद–गुरूदेव के चरणों में ओत–प्रोत होता रहता था। (योगी को) जो योगाभ्यास करना चाहता है इसे सर्वत्र विषयों का ज्ञान होना चाहिए। आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिए, परमाणुवााद का ज्ञान होना चाहिए, औषधि का ज्ञान भी होना चाहिए क्योंकि बहुत सी औषधियां, वनस्पति इस प्रकार की हैं कि जब योगाभ्यास करते हैं तो मस्तक पर उनका लेपन किया जाता है तो मस्तिष्क शान्त रहता है, मन की गति चंचल नहीं होती। **अभ्यास तो होता ही है परन्तु औषधि भी सहायक होती है।** उन औषधियों का ज्ञान हमें होना चाहिए। हम इस प्रकार भी प्रायः माना करते हैं। जब मेरे पूज्यपाद गुरूदेव योगाभ्यास करते थे तो 36 प्रकार की औषधियों का लेपन उनके मस्तिष्क पर रहता था। वह जो मस्तिष्क पर लेपन रहता था उस लेपन में कितनी सुन्दरता थी मानो कितना उनका हृदय शान्त रहता था क्योंकि **औषधियों में विद्युत होती है।** औषधियों में हृदय की गति को सुचारू रूप बनाने की शक्ति होती है। जिनका हृदय व्याकुल हो जाता है अथवा हृदय गति करता–करता शान्त हो जाता है उसे मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव यह कहा करते थे कि अप्रिही, भूषणानि, क्रान्ति उनवाश्नी, सौमभु, आप्राति, बालछर, सौमकेतु इत्यादि औषधियों का शरीर पर लेपन करना चाहिए। छत्तीस दिन लेपन करने से हृदय चालीस वर्ष के व्यक्ति का उसी गति पर आ जाता है जो हृदय बाल्य काल में था। मैं आज इस सम्बम्ध में अधिक चर्चा प्रगट करना नहीं चाहता हूं। मैं आयुर्वेद के भयंकर वन में क्यों चला जाऊं ? आज मुझे इसमें जाने की इतनी शक्ति नहीं।

आज हम अपने हृदय की उस महानता को जानने का प्रयास करें। मैं उच्चारण कर रहा था कि संसार में वह हमें जानना चाहिए, जिसको जानते हुए हमारे जीवन की गति में एक महानता की ज्योति जागरूक होती है। आज हमें योगी बनना चाहिए, योगाभ्यास करना चाहिए योगाभ्यास किस प्रकार किया जाता है वह मैं बेटा! आज वर्णन करने नहीं आया हूं।

योगाभ्यास करने के लिए पवित्र आसन होना चाहिए, पवित्र अन्न होना चाहिए, पवित्र जल होना चाहिए और वातावरण भी, वायु मंडल भी पवित्र हो। जब हम योगाभ्यास करते हैं तो अन्न की जो सूक्ष्मता है उसे जानना चाहिए। बिना अन्न की सूक्ष्मता के योग नहीं होता। एक समय महात्मा पनपेतु मुनि महाराज ने बारह बर्ष तक भयंकर वन की औषधियों का पान करके ही योगाभ्यास किया। आज मानव यह चाहता है कि मैं संसार की लोलुपता में भी और सुन्दर–सुन्दर ऊंचे से ऊंचे पदार्थों को पान करता हुआ मैं योगी बन जाऊं तो यह असम्भव हो जाता है। परम्पराओं से ऐसा माना है।

अन्न का प्रभाव

एक समय महाराजा प्रजापति के यहां सोमकेतु जी आ पधारे। सोमकेतु जी बड़े प्रबल योगी थे। सोमकेतु ऋषि महाराज का अंगिरस गोत्र में जन्म हुआ था और महर्षि मुगदल जी के वह पुत्र थे। सोमकेतु मुनि महाराज का अनुष्ठान चल रहा था और अनुष्ठान कैसा था? उन्होंने चौबीस वर्ष का अनुष्ठान किया और वह अनुष्ठान ऐसा था कि केवल एक ही पल में निद्रा लेना और नाना प्रकार की औषधियों को पान करना, जल इत्यादि पर निर्भर रहना। इस प्रकार पूरा चौबीस साल तक उन्होंने अनुष्ठान किया। उस अनुष्ठान करते हुए मध्य में एक समय महर्षि महाराजा प्रजापति के द्वार आ गए। महाराजा प्रजापति ने बड़ा सुन्दर स्वागत किया। स्वागत करने के पश्चात जो अनुष्ठान में उनके लिए सुन्दर–सुन्दर फल इत्यादि सोम–लतायें लाई गईं उसका उन्होंने पान किया। मुनिवरो ! उनके राज कोष में जो द्रव्य था उसके फल थे । उन फलों के पान से मन की गति चंचल हो गई। जब मन की गति चंचल हो गई तो प्रजापति से कहा हे प्रजापति ! तुम्हारे इस अन्न, फल इत्यादियों को पान करने से मेरे मन में चंचलता क्यों आ गई ? महाराजा प्रजापति ने कहा इसको मैं भी नहीं जानता।

तो उन्होंने अपनी समाधि के द्वारा अपने उस अन्न को जो पान किया गया था, उसके परमाणुओं को जानने के लिए यौगिक क्रियायें की। यौगिक क्रियायें करने से यह प्रतीत हुआ कि जिस द्रव्य से यह फल आए वह अन्न राष्ट्र में पति हीन कोई कन्या होगी, कोई देवी होगी, उसके हृदय को कष्ट देकर जो द्रव्य तुम्हारे यहां आया उस द्रव्य से ही मेरे लिए यह फल अन्न आदि प्राप्त देय है। परिणाम यह हुआ कि महाराजा प्रजापति ने इसका अपने कर्मचारियों के द्वारा अनुसन्धान किया, निर्णय किया और यह प्रतीत हुआ कि एक वर्ष पूर्व द्रव्य लेना था वह द्रव्य राज का कर था परन्तु इसके द्वारा द्रव्य था नहीं। उसके द्वारा एक स्वर्ण का आभूषण था उस आभूषण को बेचकर प्राप्त द्रव्य को राज कोष में प्रदान किया गया था।

उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि कोई मानव यह कहे कि कोई राजस्थल से विराजमान होकर के मैं योगी बन जाऊ तो असम्भव है।

यज्ञ का स्वरूप

मै आज क्या चर्चा प्रकट करने चला। ऐसी चर्चा प्रकट करने चला हूं जो बहुत पूर्वकाल में इन वाक्यों का विचार करते थे। आज इन वाक्यों को विचार करने का समय नहीं। आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपना कुछ विचार प्रकट करेंगे। हमारे वाक्य केवल इतने ही कि हमें योगी बनना चाहिए और हमें यज्ञ इत्यादि करना चाहिए। ऋणों से तब अवऋण (उऋण) होता है जब वह छः माह अपने राष्ट्र में कर्म करने वाला हो। अश्वमेघ यज्ञ करने वाला हो। वह अश्वमेघ यज्ञ भी न करे तो वह अजयमेघ यज्ञ करने वाला राजा हो। उस समय राजा की प्रवृत्ति शुद्ध और पवित्र होकर के राष्ट्र को सुचारू रूप से चला सकती है। अजय नाम प्रजा का है और मेध नाम मुनिवरो! राजा का है कही–कहीं अजय राजा को भी स्वीकार करते है। मैं बुद्धि मानों के मत भेद वर्णन करना नहीं चाहता हूँ। केवल वार्ता यही के दोनों राजा और प्रजा मिलकर के जब यज्ञ करेंगे तो राजा के राष्ट्र में यज्ञों का अनुष्ठान प्रारम्भ हो जायेगा, प्रजा भी उसका अनुसरण करेगी, प्रजा में वह सुगन्धि होगी, विचारों की सुगन्धि न रहकर के सुगन्धि ही सुगन्धि रहेगी। इसीलिए पूर्व परम्परागतों में राष्ट्र पवित्र हुआ करते थे, मुझे स्मरण है। मैं आज बेटा! इन वाक्यों की पुनरूक्ति देना नहीं चाहता हूं। वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि

हमें यज्ञ करना चाहिए। **यजमान का सौभाग्य होता है जब वह देवताओं का साकल्य अग्नि में प्रदान करता है त्यागपूर्वक। इससे बड़ा मानव का कोई और सौभाग्य संसार में हो नहीं सकता।** मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ संक्षिप्त अपना विचार प्रकट करेंगे।

पूज्य महर्षि महानन्द जी के उदगार

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ! भद्र ऋषि मण्डल! अथवा भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अपने अनुभव के आधार पर अपना एक हमें सुन्दर विचार दिया कुछ इसमें अनुभव है, कुछ वेदोक्त वाक्य है। आज हम इन वाक्यों को किस बुद्धि से मापना चाहते हैं? हमारी जो यह मृत–मण्डल में आकाशवाणी जाती है आज वर्तमान के मानव को इन वाक्यों को श्रवण करने का भी अधिकार नहीं है। मूल कारण क्या है? क्योंकि इनको वही श्रवण कर सकता है जिनका अनुभव होता है और जिनका अनुभव होता है वहीं संसार में कुछ नृत्य कर सकते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी–अभी चन्द्र इत्यादियां की चर्चाएं प्रकट की हैं। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव के वाक्यों पर विचार करना नहीं चाहता हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है कि आज हम प्रत्येक वाक्य को अनुसन्धान की दृष्टि से दृष्टिपात करना चाहते हैं। मेरा तो परम्परागतों से ही यह प्रायः विचार रहता है कि मानव को अपनी मानवीयता का विचार–विनिमय अनुसन्धान की दृष्टि से ही करना चाहिए क्योंकि यदि मानव के साथ में अनुसन्धान नहीं है, विचार नहीं तो उस मानव का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता संसार में।

आधुनिक मानव समाज

आज मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने राष्ट्र की चर्चाएं प्रकट की हैं कि राष्ट्र में अजामेघ यज्ञ होने चाहिएं। पर जब मैं इस आधुनिक काल के मानव समाज पर विचार विनिमय करता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे यहां कणांद और वशिष्ट और महर्षि गौतम इत्यादि का जो जगत था वह कहां चला गया है? उनके जो वंशज हैं वे कहां चले गए? आज यज्ञों को पाखण्ड के रूप में मानव स्वीकार करने लगा है। जब मुझे यह वाक्य स्मरण आता है तो मेरा हृदय तो व्याकुल होने लगता है। यहां कणाद और गौतम ने क्या कहां है? यहां महात्मा दधीचि ने यज्ञ के लिए अपनी अस्थियों को भी अर्पित कर दिया था। वह कितना सुन्दर उनका त्याग था। आज का राष्ट्रवाद तो यह कह रहा है कि यज्ञ करना केवल एक पाखण्ड है क्योंकि इतना अन्न यदि हम उदर में परिणत करेंगे, अन्न से पीड़ित हुए प्राणियों को प्रदान करेंगे तो वह हमें आशीष प्रकट करेंगे। परन्तु जब मैं इन वाक्यों पर आता हूँ कि यह यज्ञ जो है यह तो सुगन्धि हैं। मानव जिसे पान करके दुर्गन्धि करता है आज यदि हम सुगन्धि देते हैं तो वह **सुगंधि ही तो मानव का जीवन कहलाया जाता है।** आज जब हम दूसरों की आलोचना करने के लिए तत्पर रहते हैं तो यह नहीं विचारा जाता कि हम क्या उच्चारण कर रहे हैं। वह केवल जितना जानते हैं उतना ही वह प्रकट करते हैं, क्योंकि आज के जगत में **पदार्थ–विद्या** पर उसका अनुसन्धान नहीं हैं, पदार्थ–विद्या पर उसका विचार नहीं है, राजाओं का भी नहीं है। वास्तव में इसको तो बहुत ही गम्भीरता से विचारा जा सकता है। मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचार दिए परन्तु आज का मानव समाज यह उच्चारण करता रहता है कि हमारा बनेगा क्या? प्रत्येक मानव को यह चिन्ता रहती है कि हमारा बनेगा क्या? मेरी पुत्रियां यह कहा करती हैं कि हमारा क्या बनेगा? परन्तु **तुम्हारा वह बनेगा जो तुम्हारे मन में है, जो तुम्हारे विचार में है वही बनेगा** और क्या बन सकता है। जिस समय यहां रघुवंश था, महात्मा मनु वंश था यहां राष्ट्रीयता में मानव परिणत रहता था। यहां पुरोहितों के द्वारा, बुद्धिमानों के द्वारा यज्ञ इत्यादि सुगन्धि होती रहती थी। अरे ! जहां सुगन्धि होती हो वहां दुर्गन्धी होने लगती है तो वहां होना ही क्या है ? वहां तो केवल दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध होगी। यह तो विचार का विषय है। परन्तु इन विचारों को वास्तव में हमें विचार में लाने का प्रयास करना चाहिए।

ऋषि

जब मैं पुरातन काल के यज्ञों में विराजमान होता था, वह यज्ञ कितनी आभायुक्त (प्रभावशाली) होते थे। ब्रह्मचारी यजमान रहते थे। ब्रह्मचारी पुरोहित रहते थे। ब्रह्मचारी यजमान, उदगाता अर्ध्वयु और होता होते थे। **जो ब्रह्मचर्य से रहता है वह ऋषि कहलाता है।** हमारे यहां दर्शनों के बुद्धिमान हो सकते हैं , हो जाते हैं, वेदों के बुद्धिमान हो जाते हैं परन्तु वे ऋषि नहीं बनते। ऋषि कौन होता है? ऋषि वह होता है जो ब्रह्मचर्य को, ब्रह्म की आभा को चरने वाला होता है। इसीलिए वह ब्रह्मचारी ही , ऋषि कहलाया जाता है। जब मैं इन विचारों को

लेकर के चलता हूं तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। जब मुझे यह स्मरण आने लगता है कि मैं किस दिशा को जा रहा हूं तो उस दिशा के लिए मानव स्वयं ही अपना अनुसन्धान करने लगता है। हृदय उसका उच्चारण करने लगता है।

यज्ञशाला में आशीर्वाद

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने अभी–अभी दर्शनों के बहुत से वाक्य प्रगट किये। दर्शनों के आधार पर एक धारा प्रगट की। मैं उस धारा में रमण करना नहीं चाहता हूं। मैं तो केवल यह वाक्य प्रकट करने आया हूं कि पुरातन काल के यज्ञ से आज हमें संसार की प्रत्येक काल में तुलना नहीं करनी चाहिए। तुलना केवल यह है कि आज मैं यजमान इत्यादियों को सुन्दर यही उच्चारण करने आया हूं कि उनकी आयु दीर्घ होनी चाहिए। जितनी आयु दीर्घ होगी शुभ कर्म करने वालों का, उतना ही शुभ कर्म होता रहेगा। जहां उनकी आयु सूक्ष्म हो जाती है तो शुभ कर्म करने वालों की सूक्ष्मता हो जाती है। इसीलिए यज्ञशाला में हमारे ऋषि–मुनियों ने यजमान के लिए, होताओं के लिए, सबके लिए अपनी वाणी से आशीर्वाद की घोषणा की। वाणी द्यु–लोक को प्राप्त होकर के उस वाणी से यजमान आदि के शरीर पर देवों की अनुपम कृपा हो जाती है। इसीलिए आज मैं कोई अधिक चर्चा करके मैं विज्ञान में नहीं जाना चाहता हूं वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय केवल यही है कि आज हम इन वाक्यों को विचार–विनिमय करने का प्रयास करें। सदैव प्रत्येक गृह में यज्ञ होने चाहिए।

मैने इससे पूर्व काल में कहा है कि **बहुत ही सूक्ष्म समय रह रहा है जब संसार यज्ञवेदी के निचले भाग में आने वाला है,** इसकी पताका के नीचे आने वाला है। मूल परिणाम यह कि यहां यज्ञशाला में चरित्र की घोषणा की जाती है। यज्ञशाला में परमाणुवाद की घोषणा की जाती है यज्ञशाला में मृत्यु से जीवन की घोषणा की जाती है इसीलिए इसकी छत्र–छाया में कौन नहीं आएगा ? यह मैं गौरव के सहित कहा करता हूं। मैंने बहुत पूर्व काल में नाना शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा है।

जातीयता एवम् रूढ़िता

आज का जो समाज है वह चिन्तित है, केवल अपने ही विचारों से क्योंकि अपना विचार ऐसा घृणित बन गया है जातीयता आ जाने के कारण, रूढ़िता आ जाने के कारण। मुझे ऐसा दृष्टिपात आता रहता है ! जैसा पूज्यपाद–गुरूदेव ने कहा था कि वह समय बहुत निकट प्रतीत हो रहा है जब विश्व के एक–एक आंगन में रक्त की धारा बहने वाली है। ''सम्भवा मम्वेति'' मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव ने कल ही मुझे यह प्रगट कराया। आज मैं उन वाक्यों की पुनरूक्ति कर रहा हूं क्योंकि संसार में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण हो रहा है। ऐसे–ऐसे यन्त्रों का निर्माण हो रहा है जिससे राष्ट्र के राष्ट्र भस्म हो सकते हैं। परन्तु उन यन्त्रों का क्या बनेगा? उन यन्त्रों से वो केवल मृत्यु ही तो बनेगी, उन यन्त्रों का और बनना भी क्या है ?

प्रत्येक राष्ट्र अपने अपने स्वार्थ के लिए ओत–प्रोत हो रहा है, स्वार्थ की चर्चा कर रहा है , किसी को जीवन देने की चर्चा नहीं कर रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कहा था कि जहां संसार में दूसरों को जीवन देने की प्रेरणा नहीं होती, मृत्यु देने की प्रेरणा होती है वह जगत,वह राष्ट्र कुछ काल में भस्म हो जाया करता है, वह काल अग्नि के मुख में चला जाता है। यह जो नाना प्रकार के यन्त्रों की अग्नि है आज हमें भयंकर सी प्रतीत हो रही है। **यह जो नाना प्रकार की रूढ़ियों का स्वार्थ है इसका विनाश तो हो जाएगा परन्तु अभी कुछ समय लगेगा जब इसका विनाश होगा।** महाभारत के काल के पश्चात ही यहां नाना प्रकार की अपने स्वार्थ से अधिक रूढ़ियां प्रारभ हो गईं वह रूढ़ियां कहां तक चलीं जगत में।

अज्ञानता से वैदिक साहित्य अग्नि के मुख में चला गया

यहां बुद्ध महाराज ने आकर के वेद के एक अंग का प्रचार तो किया परन्तु सर्वे अंगों को नहीं जाना। न जानने के कारण अज्ञान छा गया। उसके पश्चात यहां और भी नाना प्रकार के महात्मा आए। महात्मा शंकर ने ब्रह्मचारी ऋषियों की परम्पराओं को जानते हुए उन्होंने वेद का प्रसारण किया जैसा मैंने इससे पूर्व शब्दों में कहा। परन्तु जो यहां शंकर से पूर्व आए उन्होंने वैदिक साहित्य को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया और क्यों किया गया ? इसलिए कि यदि इनकी संस्कृति रहेगी तो तुम्हारे ऊपर किसी काल में भी न्योछावर हो (छा) सकते हैं। उसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि वह बौद्ध का प्रचार संसार में छा गया परन्तु जहां प्रचार चला गया वहां का साहित्य अग्नि के मुख में चला गया। वहां का यह समाज आज नास्तिकता की अग्नि में भस्म हो रहा है, वह

केवल नास्तिक ही बनता चला जा रहा है। जहां के महाभारत काल में सोमभूमि , भगदत्त, रोहिणी राजा इत्यादि यहां महाभारत के संग्रम में आए । आज उनके राष्ट्रों की यह दशा है कि वह नास्तिकवाद की अग्नि में चले गए। वेद शास्त्रों की परम्परा तो उनके यहां है सूक्ष्म रूपों से परन्तु उनका साहित्य अग्नि के मुख में जाने के पश्चात जहां **हिमालय कन्दराओं के पार जो राष्ट्र थे उनमें महाराजा भोज से पूर्व ऐसे–ऐसे पुस्तकालय अग्नि के मुख में चले गये।**

महाराजा भगदत्त, महाराजा पितामह भीष्म के द्वारा बारह वर्ष तक विज्ञान की शिक्षा पान करके चीन गए और फिर महाराजा पितामह भीष्म भी वहां गए। वहां नाना प्रकार की शिक्षा और राष्ट्रीयता, विज्ञान का प्रसार करके अपने राष्ट्र में आए। महाराजा भीष्म ने **योगकेतु** नाम की पुस्तक में, **चन्द्र–केतु** नाम की पुस्तक में एक सूर्य विज्ञान के ऊपर, ध्रुव विज्ञान के ऊपर अपना प्रकाश दिया। वह लगभग दो हजार पृष्ठ की पुस्तक थी। एक चार हजार पृष्ठों की एक पुस्तक थी। वह भी बौद्धकाल में अग्नि के मुख में चली गई। उसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि वह रह3ाष्ट्र नास्तिकता की अग्नि में ही चले गए जहां ईश्वर की प्रतिभा का विनाश किया जाता है। केवल अपने स्वार्थ की अग्नि में ही मानव परिणत रहता है, यहां का जो ऋषि–मुनियों का साहित्य था वह अग्नि के मुख में जाने के कारण कुछ महापुरूषों ने इसकी समय समय पर रक्षा की ।

महात्मा–शंकर एवं महर्षि–दयानन्द

महात्मा शंकर ने इसकी रक्षा की। उसके पश्चात देखो यहां शंकर का समय चलता रहा, **महात्मा शंकराचार्य परम्परा की पुनीत पवित्र आत्मा थी।** उनके हृदय में एक वेदना थी। उस वेदना का प्रसारण करके उन्होंने बौद्ध और जैनों के मन्दिरों को खण्ड–खण्ड किया शास्त्रार्थ करके। वह आज भी प्रायः प्राप्त होता है जहां अवशेष प्राप्त होते हैं। पृथ्वी में जहां जैन–काल और बौद्ध–काल की बहुत सी मूर्तियों के चित्रावलियों के खंड–खंड प्राप्त होते हैं वह महात्मा शंकर के काल के ही थे। इसके पश्चात समय आता रहा। यहां स्वार्थवाद की अग्नि पुनः से आ गई। यही अग्नि दूसरे राष्ट्रों में चली गई, दूसरे राष्ट्र में चला गया यह जगत (देश), यह जगत ईसा के और मोहम्मद के उन अज्ञान रूप वाक्यों में चला गया जहां उनका कोई मूल्य नहीं किया जा सकता। न उनकी मूर्खता का कोई वर्णन किया जाता है न मैं वर्णन किया करता हूं। वाक्य यह है कि उनका जो विचार है, उनका जो साहित्य है उस साहित्य में भी उन्होंने इस वैदिक–साहित्य को नष्ट करने का प्रयास किया और बहुत सा साहित्य नष्ट किया गया।

परन्तु यह साहित्य नष्ट नहीं होता क्योंकि यह ऋषि–मुनियों का उदगार है, ऋषि मुनियों का मस्तिष्क है, यह वैदिक विचार है। यहां ऋषि से ऋषि, ऋषि दयानन्द ही बनकर के चले आए जिनका मस्तिष्क वेद की आभा में ही रमण करता रहता था। माता के गर्भस्थल में ही यह जो मानो सोलहवीं कृत रात्रियों में जिसका जन्म होने वाला हो आज मैं जब उनके वाक्य प्रगट करने लगता हूं तो मेरा हृदय इस भयंकर काल में कोई उत्तर नहीं देता। बौद्ध काल के पश्चात और अनेक आए परन्तु जिनके द्वारा पाप का मूलन भी नहीं बना, पाप का अंकुर भी नहीं बना और प्रसार करके यहां से चले गए। आज जब मैं उनके विचार लेता हूं और उनके मानने वालों का विचार लेता हूं तो शंकर की आत्मा अन्तरिक्ष में व्याकुल हो रही है। यदि मैं इस संसार के संकलन को, संघर्ष को भी दृष्टिपात करता हूं। तो महर्षि दयानन्द की आत्मा भी अंतरिक्ष में व्याकुल हो रही है। दोनों ही के विचार कितने पवित्र परन्तु मानने वाले देखो कितनी दूरी चले जा रहे हैं। यह विचार आज हमें पुनः से लाना चाहिए। बुद्धिमानों के मस्तिष्कों को विचारशील बन करके इस विचार को पुनः से ऊंचा बनाना चाहिए क्योंकि आज हम इन महापुरूषों की वार्ताओं को उच्चारण करते हैं, पुनरूक्ति करते रहते हैं । पुनरूक्ति करना मेरा स्वभाव है। आज संसार का बहुत सा साहित्य स्मरण है मुझे। समय–समय पर उन वाक्यों को प्रगट भी कराऊंगा। आज तो केवल मैं यही वाक्य प्रगट करने आया कि हमारे यहां यज्ञ होने चाहिए। मैं तो केवल यज्ञों के लिए आशीर्वाद देने के लिए अपने हृदय से सदैव यह उच्चारण करता रहता हूं कि **संसार में यज्ञ होने चाहिए। प्रत्येक गृह में प्रातःकाल, सायंकाल यज्ञ होने लगे।**

माताओं का आभूषण

यह जो नाना प्रकार की मेरी पुत्रियों ने जो अनायास श्रृगांर स्वीकार कर लिया है। यह जो श्रृंगार है यह संसार के लिए ऐसा कठोर है कि यह उन्हीं के चरित्र को भ्रष्ट करने वाला है। आज जब मैं यह विचारने लगता

हूं कि मेरी पुत्रियों का जहां माता मदालसा, जहां माता गार्गी भयंकर वनों में मृगराजों से वार्ता प्रगट करने वाली थीं, जहां माता सीता अपने मनोविज्ञान से मृगराज को भी प्रेरणा देने वाली हों वहां आज मेरी पुत्रियों ने ईश्वर का विश्वास त्याग करके अनायास जो प्रभु ने वस्तुएं प्रदान की हैं उन पर विश्वास न रह करके एक ऐसे श्रृंगार को अपनाया है। यह श्रृंगार विनाश का कारण बनता चला जा रहा है। इसीलिए आज मेरी पुत्री यदि यह स्वीकार करने लगे कि यह मेरे लिए श्रृंगार है। कदापि नहीं। यह उन्हीं के श्रृंगार को भ्रष्ट करने वाला है। जिस प्रकार मानव क्रोध करता है दूसरे प्राणी पर, वह क्रोध उसके लिए हानिकारक नहीं जिसके लिए किया जाता है परन्तु जो कर रहा है उसके लिए हानिकारक होता है। इसीलिए जब मैं अपनी पुत्रियों से यह कहा करता हूं हे मृतोप्रभः हे पुत्राणि गच्छन्ते, हे माता ! तेरा जो भूषण है वह तो तेरा कंठ है। हे माता ! तेरा जो भूषण है वह तो तेरी पवित्र विद्या है। हे माता ! तेरा जो भूषण है वह तेरा गर्भाशय है। यदि तुमने एक भी कणाद और गौतम को जन्म दे दिया, भगवान राम और कृष्ण जैसी पुनीत आत्माओं को तपस्या से जन्म दे दिया तो माता! तेरे श्रृंगार की पूर्ति हो जाती है। परन्तु इससे पूर्ति नहीं होती जिस समाज में केशों के ऊपर भी विश्वास नहीं रहा। आज मैं अपनी पुत्रियों के ऊपर प्रायः आश्चर्य करता रहता हूं। आज मैं अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूं। यही विचार देने आया हूं कि आज हमें अपने ऊपर विश्वास होना चाहिए। हे मेरी पुत्री! हे ममतामयी मां! जब तू अपने ऊपर विश्वास करने लगती है तो तेरे विश्वास में इतनी महत्ता है कि तेरा चरित्र संसार में कोई भी दूषित करने वाला नहीं होता। जब तेरा आत्म विश्वास तेरे से दूरी चला जााता है तब यह मानने लगती हो कि मेरा जीवन ही मानो यह श्रृंगार है। मेरा जो जीवन है यह अनाधिकार चेष्टा करना है, तो इस अनाधिकार चेष्टा से मानव भ्रष्ट हो जाता है। जिस–जिस काल में मेरी पुत्रियों का आदर होने लगता है, पुत्रियों का श्रृंगार ऊंचा बना है उसी काल में यह संसार स्वर्ग बन गया है और जिस काल में मेरी पुत्रियों ने इस प्रकृति की लोलुपता को अपनाया है और प्रकृति के आवेशों में परिणत हो गई हैं और अपने आत्म विश्वास को त्याग दिया उसी उसी काल में मेरी पुत्रियों के ऊपर इस मानव समाज ने अनाधिकार चेष्टाएं की। इनके श्रृंगारों को भ्रष्ट किया। मेरी पुत्रियों को किसी ने एक ही रीढ़ से स्वीकार किया, किसी ने एक ही पसली से स्वीकार किया। नाना प्रकार की रूढ़ि बन करके इसका निरादर हो गया। परिणाम यह हुआ कि इन्हीं के कारण यह संसार अग्नि के मुख में चला गया। हे मेरी मां! तू कितनी भोली है, कितनी पवित्र है ! तुझे वेद वसुन्धरा कहता है क्योंकि तेरे गर्भ में राम और भगवान कृष्ण जैसे तेरी लोरियों का पान करके संसार में भयंकर वनों की शैय्या बनाने वाला ही तो बनता है। परन्तु तू उस श्रृंगार को क्यों नहीं अपनाती। आज तूने कौन से श्रृंगार को अपनाया है? मां! तू यदि मनोरंजन करना चाहती है तो अपनी प्रवृतियों का मनोरंजन करना चाहिए। अरे यह जो प्रकृति के नृत्य हैं, नग्न जो नृत्य हैं यह मानव समाज के लिए, राष्ट्र के लिए हानिकारक हैं। आज इसके ऊपर कोई मानव दृष्टिपात नहीं कर रहा है। मेरी पुत्रियां नहीं कर पाती परन्तु यह स्वंय अपना इस प्रकार का विचार बना ले तो इस प्रकार का विचार बनाने वाली माताओं का अपने पौत्रियों के, पौत्रों के ऊपर अनाधिकार चेष्टा न करके आधिपत्य हो जाता है।

माता व पुत्र

आज कोई माता यह नहीं कह सकती कि मेरा पुत्र मेरी आज्ञा के अनुसार चलता है। हे माता! तेरा पुत्र तेरी आज्ञा के अनुसार क्यों चलेगा ? क्योंकि तूने अपने पुत्र को अपनी ही वाणी से, अपने कर्म से इसे दूषित कर दिया है। क्यों किया गया ? क्योंकि सबसे प्रथम वाल्यकाल में उसे अनाधिकार चेष्टा प्रदान की गई। वह बालक इतना दूषित हो गया वातावरण में, कि नग्न चित्रों में इतना व्याकुल हो गया है। स्वयं तुम्हारा श्रृंगार तुम्हारे को ही नष्ट कर रहा है। इसीलिए आज हमें इन वाक्यों को पुनः विचारना चाहिए। आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हमें अपने आभूषणों को अपनाना चाहिए। हमें अपनी इस महानता को पुनः से अपनाना चाहिए। "कृतिभूषणम् ब्रह्म व्यापः" मैं बेटा कह करके जब समाज को पुकारता हूं तो मेरा हृदय गद्–गद् होने लगता है। मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव तो यह कहा करते हैं कि ऐसे शब्द न उच्चारण करो। परन्तु जब मुझे यह वाक्य स्मरण आता है तो मेरा हृदय प्रायः गद्–गद् होता है। मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव जब मुझे पुत्र और बेटा कह करके प्रीति देते हैं तो मेरा हृदय गद्–गद् हो उठता है। इसी प्रकार जब मैं समाज को यह उच्चारण करने लगता हूं तो हृदय प्रायः गद्–गद् होता है। मैं अपनी ममतामयी मां और अपनी पुत्रियों से यह सदैव उच्चारण किया करता हूं, आज से नहीं बहुत पूर्वकाल में मैं जब पूज्यपाद

गुरूदेव की शरण में आया उसी काल से मुझे यह भान हुआ, उसी के पश्चात कठोर तपस्या करने के पश्चात मुझे यह अधिकार प्राप्त हुआ और श्रृंगार की चर्चाएं उच्चारण करने का अधिकारी बन गया। वह मानव श्रृंगार के ऊपर कठोर चर्चा प्रगट नहीं कर सकता जो स्वयं श्रृंगार करने वाला होता है। जो स्वयं श्रृंगार करता है वह दूसरों को यह उच्चारण करे कि तुम श्रृंगार न करो तो उसका क्या बनेगा ? उसे अधिकार ही नहीं है। आज मेरी पुत्रियां श्रृंगार करती हैं(परन्तु) अपनी पुत्री को कहती हैं तुम श्रृंगार न करो। यह कैसे हो सकता है। यह कदापि नहीं होगा। यह तब होगा जब माता को स्वयं अपने जीवन पर अपने श्रृंगार पर आधिपत्य होगा। पुत्री को विचार देने की आवश्यक्ता नहीं, वह जो माता का जो रहन सहन है, विचार है, उसी के अनुसार उसका परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार आज हमें इन विचारों को लाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह एक विचार है, एक यज्ञ है, इन विचारों का यज्ञ है। इस राष्ट्र पर मुझे बड़ा आश्चर्य आता है।

द्रव्य का सुदपयोग

राष्ट्र में जहां ऋषि–मुनि वेद का गान गाते थे, साम–गान होते थे। मेरी पुत्रियां साम–गान गाती थीं। **राष्ट्र में एक भाग होता था द्रव्य का इन बुद्धिमानों के लिए कि जिससे राष्ट्र में सदाचार का प्रसार हो।** परन्तु आज वह द्रव्य उनके लिए जाता है जहां नग्न चित्र व नृत्य किये जाते हों उनका क्या बनेगा ? यह अधिकार समाज को नहीं है। जब अधिकार नहीं है तो अनाधिकार जो चेष्टा होती है यही राष्ट्र और समाज को भ्रष्ट कर देती है। आज कोई राजा यह चाहता है कि मेरा राष्ट्र पवित्र हो तो उसकी पवित्रता केवल इसी में है कि वह अपने राष्ट्र में ऐसे नियम को लाने का प्रयास करें। वेद का ही मनोरंजन हो, गान भी हो, आयोजन हो उसमें भी धर्म विचार हो और कर्मों का विचार हो। आज मैं अपने पूज्यपाद–गुरूदेव के समीप यही वाक् प्रगट करने आया हूं कि आज के इस मानव समाज को, मेरी पुत्रियों को, मेरी माताओं को उस श्रृंगार को अपना करके अपने गृह को पवित्र बनाना चाहिए। मानव समाज को पवित्र बनाना चाहिए।

यह वाक् उच्चारण करके अब विराम देने जा रहा हूं। वाक् मेरा क्या कि मैंने कुछ संक्षिप्त परिचय दिया। मैंने कठोर वाक् तो अवश्य ही उच्चारण किए हैं इसमें कोई सन्देह ही नहीं है। परन्तु कठोर वाक् इसीलिए लगते हैं क्योंकि आज का समाज जो कठोर है उन कठोरता को जो मानो मधु स्वीकार किए ही विराजमान है, इसीलिए उन्हें वह कठोर प्रतीत होते हैं क्योंकि जब समाज का विनाश का समय होता है तो वह कठोर को कठोर स्वीकार नहीं करता और सत्य को कठोर स्वीकार करने लगता है। यह जो संसार के नाना प्रकार से श्रृंगार युक्त जगत है अरे यह मानव के लिए घातक है। यह विनाशदायक है इसी को मानव ने एक मधु के तुल्य स्वीकार कर लिया है जब इनकी कोई आलोचना करता है तो वह उसे कठोर प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में मेरे वाक्य कठोर नहीं है। समाज ने कठोर वाक्यों को मधुरता में परिणत कर लिया है इसीलिए सत्य वाक्य कठोर प्रतीत होते हैं। आज मैं इन वाक्यों के साथ अपने गुरूदेव से आज्ञा पा रहा हूं।

मैंने यजमान और यज्ञ की पूर्णाहुति को दृष्टिपात किया। मैं आज उनको यह उच्चारण करने आया हूं कि उनकी आयु दीर्घ हो, विचारशील हों, उनकी यज्ञों में गति हो, अपना वह जैसे यज्ञ करते हैं, इसी प्रकार उनका विचार भी यज्ञमयी होना चाहिए। ऐसा मैं सदैव ब्रह्मा इत्यादि उनको यह उच्चारण करने जा रहा हूं कि इनका आयु दीर्घ हो। **वेद का पठन–पाठन जितना होगा वातावरण पवित्र बनेगा।** इसके साथ मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरूदेव

धन्य हो!

आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना सुन्दर एक विचार दिया। परन्तु इनका विचार वह विचार था जो किसी काल में हम त्रेता के काल में देते रहते थे और वाक् स्पष्टता में परणित करते थे। **सत्य के उच्चारण करने में मानव को कदापि भी दूरी नहीं रहना चाहिए इसीलिए मानव समाज विचारशील बनना चाहिए।** मैं भी यज्ञमान इत्यादि सर्वत्र अहः मेरा भी यह विचार है कि वे सदैव अपने जीवन में पनपते रहें, सुन्दर बनते रहें इसके पश्चात वाक् अब समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : १७ अक्टूबर १९७१
समय : दोपहर २ बजे।
स्थानः आर्य समाज मन्दिर,
कृष्ण नगर, दिल्ली।

१३. यज्ञ और राष्ट्र पर विचार २४ फरवरी १९७२

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हम उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण करते चले जा रहे थे जिस पवित्र वेद–वाणी में उस परमपिता–परमात्मा की आभा निहित रहती है। उस देव की जो आभा है वह इतनी विचित्र है कि **जब हम अपने को अपने प्रभु के समर्पित कर देते हैं तो वह माता बनकर के हमें ज्ञान और महत्ता की लोरियां प्रदान करा देती है, अपने हृदय से मिलान करा देती है।** हम उस परमपिता–परमात्मा की आभा और उसकी विचित्रता का परम्पराओं से ही प्रायः वर्णन किया करते हैं।

यज्ञमय ज्योति को अपनाकर प्रकाशमय बन

हम यह विचारते हैं कि आज हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाने का प्रयास करें। विचारना यह है कि यज्ञमय ज्योति क्या है ? वह जो यज्ञ एक प्रकार की अनुपम ज्योति है वह कैसी अनुपम ज्योति है ? क्या वह ज्योति जिसे छू लेती है वही मानव प्रकाशमय हो जाता है ? तो बेटा ! आज हम अपने जीवन को प्रकाश में लाने का प्रयास करते रहें। क्योंकि उस देव का जो प्रकाश है वह सदैव महत्ता में रमण करता रहता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हम यह विचार विनिमय करने वाले बनें कि हम स्वयं एक ज्योति को अपनाने का प्रयास करें और वह ज्योति है यज्ञ में।

वैदिक–साहित्य में विभिन्न यागों का विस्तृत वर्णन है

हमारे यहां बेटा ! परम्परागतों से ही यज्ञों के नाना प्रकार के भेद हैं और भिन्न–भिन्न प्रकार के यज्ञ हैं। जैसे मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचार देते हुए कहा जैसे ब्रह्म–याग, विष्णु–याग, शिव–याग, वृष्टि–याग, पुत्रेष्टि–याग, सामूहिक–याग, अजयमेध–याग है, गौ–मेध यज्ञ है। इसी प्रकार बेटा ! जैसे कन्या–याग है। नाना प्रकार के यज्ञों का वर्णन हमारे यहां बेटा! ऋषि–मुनियों ने परम्परागतों से माना है क्योंकि वैदिक–साहित्य में वैदिक, विचारों में परम्परागतों से इन यज्ञों का विस्तार से प्रायः वर्णन होता रहता है।

आत्मा के उत्थान को यज्ञ कहा गया है

आज हमें विचारना है कि यज्ञ कहते किसे हैं ? मुनिवरो! देखो, **"सुन्दरता को यज्ञ कहा जाता है।"** वह कैसी सुन्दरता? "जो समाजिक जीवन को उत्तम बनाने वाली हो।" मुनिवरो ! राष्ट्र, समाज और मानवता का जहां उत्थान होता हो। **उत्थान नाम को यज्ञ कहा गया है।**

ब्रह्मा तथा यजमान आदि के विचार, संकल्प पवित्र होने चाहिए

जैसे मुनिवरो ! कन्या–याग का प्रायः वर्णन आता है। हमारे यहां यज्ञ मानव का परम्परागतों से ही वर्णन आता रहा है। यज्ञशाला में सबसे प्रमुख जो स्थान है वह ब्रह्मा का है, द्वितीय स्थान यजमान का है। परन्तु जब यजमान अपने पुरोहित इत्यादियों को ब्रह्मा चुनता है तो उस समय उसके मन में ऊंचा विचार, ऊंचा संकल्प होना चाहिए। परन्तु उसके हृदय में दुरिता (दुर्भावना) किसी के प्रति नहीं होनी चाहिए। ऐसा विचार हमारे यहां परम्परागतों से आया है क्योंकि उन विचारों का जो प्रभाव है वह जो आहुति देने वाला, स्वाहा कहने वाला यजमान है उसके साथ में आन्तरिक जो आभा (भावना) है वह सूक्ष्म बनकर के बेटा ! वायु मण्डल में उसका प्रसारण हो जाता है। तो हमें यह विचारना है, हमें उस वेदी पर जाना है जिस वेदी पर जाने के पश्चात उसकी प्रसारण शक्ति को विशाल बनाने का प्रयास करें।

मानव में अहिंसा के साथ दृढ़ता,साहस एंव कर्मठता होनी चाहिए

कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना बड़ा सुन्दर विचार दिया। आज मैं उन विचारों में तो नहीं जाना चाहता हूं परन्तु इन्होंने एक वाक्य बहुत ही प्रिय कहा कि ''मानव के द्वारा दृढ़ता होनी चाहिए, साहस होना चाहिए। अहिंसक विचार होने चाहिए। **''अहिंसा परमोधर्म''** का अभिप्राय यह है कि मानव में दृढ़ता होनी चाहिए, कार्य करने की शक्ति होनी चाहिए। जब कार्य करने की शक्ति के साथ दृढ़ता होती है तो कार्य में सफलता प्राप्त हो ही जाती है। इनका एक वाक् मुझे बहुत ही प्रिय लगा ''संसार में हिंसा मानव को भ्रष्ट कर देती है और अहिंसा मानव को सुदृढ़ बना देती है।'' संसार में यज्ञ इत्यादि सुन्दर कर्मों का करना, उनमें आस्था और दृढ़ता लाना यह मानव का एक मौलिक कर्तव्य होता है। इसमें एक महत्ता होती है। उस महत्ता के साथ में एक मानवीयता का उज्जवल स्वरूप इस मानव के समीप होता है।

याज्ञिकों की उच्चारता पर यज्ञ सफल होता है

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं अधिक चर्चा तो प्रकट नहीं करूंगा क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को पुनः कुछ वचन कहने हैं। आज मैं इनको पुनः समय प्रदान करने वाला हूं। केवल विचार यह कि याग ऊंचा होना चाहिए। यज्ञशाला में जितना सदाचारी ब्राह्मण ब्रह्मा होगा, उदगाता होगा, जितना सुचरित्र यज्ञमान का होगा, होता इसी प्रकार के होंगे, उतना ही मुनिवरो! यह यज्ञ सफलता को प्राप्त होता रहा है।

अपने यज्ञों की तुलना ब्रह्म के यज्ञ से होनी चाहिए

मुझे एक यज्ञ की आभा प्रायः स्मरण आती रहती है। एक समय महाराजा ज्ञानश्रुति के यहां एक यज्ञ हुआ। महाराजा ज्ञानश्रुति महाराजा मनु वंश में से थे। महाराजा ज्ञानश्रुति के यहां ब्रह्मयज्ञ तो होता ही रहता था। परन्तु जब कर्मकांड का यज्ञ प्रारम्भ होने लगा तो इस यज्ञ की तुलना ब्रह्म से मिलान की गई। क्योंकि जैसे ब्रह्म में से केवल सुगन्धि ही सुगन्धि उत्पन्न होती है, दुर्गन्धि नहीं होती इसी प्रकार जिस यज्ञ को यजमान सहपत्नी ऊंचे विचारों से रचा रहा है वह ब्रह्मा और उदगाता के सुन्दर उदगान से जो वायु मण्डल प्रभावित हो रहा है उसका सम्बन्ध आदित्य ब्रह्म से कहलाया गया है। ब्रह्म से उसका मिलान होता है। ब्रह्म से ही उसका निकास होता है। ब्रह्म में ही वह लय हो जाता है। तो इसीलिए हम यह विचारने वाले बनें कि हमारा जीवन कितना सुदृढ़ और मानवता से सुगठित होना चाहिए।

यज्ञ का सम्बन्ध द्यु–लोक से है और द्यु–लोक की समिधा गोघृत है

परन्तु देखो , यज्ञ कहते ही उसे हैं जहां अहिंसा होती है। क्योंकि ''अहिंसा परमोधर्म'' के एक विचार को लेकर के याज्ञिक यज्ञ करता है। उसके हृदय में जब द्वितीय भाव रहता है, दूषित विचार रहते हैं तो जानो कि वह मानव अपनी मानवता में कदापि अपनी सफलता को प्राप्त नहीं हो रहा है ! तो इसीलिए मेरे प्यारे ऋषिवर ! इसके ऊपर मानव को बारम्बार विचार–विनिमय करना चाहिए। आज हम कोई अधिक चर्चा तो प्रकट करने नही आए हैं केवल संक्षिप्त परिचय देना हमारा एक कर्तव्य है। आज मैं अपने विचारों को यहीं विराम देने जा रहा हूं। विचार क्या कि यज्ञ का जो सम्बन्ध है वह द्यु–लोक से माना गया है घु–लोक की जो समिधा है, गो–घृत है। मैंने ऐसी चर्चाएं किसी काल में प्रकट की हैं। कल मैं पुनः उच्चारण करूंगा कि यज्ञशाला में वह जो द्यु–मंडल है, द्यु–लोक है उसमें जो समिधा का यज्ञ होता है उसकी समिधाएं क्या हैं ? आज तो केवल इतना विचार देना है कि हम अपने विचारों को अहिंसा में लाने का प्रयास करें। क्योंकि कटुता जो है यह मानव के शुक्र (वीर्य) को हनन कर देती है। कटुता में हिंसा होती है तो वह हिंसा भी मुनिवरो! राष्ट्र के राष्ट्र नष्ट कर देती है। भयंकर उसके परिणाम होते हैं। तो इसीलिए हमें विचारना यह है कि हम अपनी मानवीय सम्पदा को अपनाने का प्रयास करें। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपना विचार कुछ संक्षिप्त रूप में प्रकट करेंगे।

पूज्य महर्षि महानन्द जी के उद्गार

मेरे पूज्यपाद–गुरुदेव ! ऋषि मंडल ! भद्र समाज ! मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपना एक महान अमूल्य समय प्रदान किया। जिस अमूल्य समय में वह एक यज्ञ का विचार देते चले जा रहे थे। विचार क्या है ? कि ''प्रत्येक मानव को संसार में यज्ञ करना चाहिए और याज्ञिक बनना चाहिए।'' क्योंकि यह संसार, यह राष्ट्र, यह समाज कदापि भी बिना यज्ञ के ऊंचा नहीं बनेगा। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही जब भी किसी प्रकार का चुनाव निर्माण होता है। तो सबसे प्रथम उसमें यज्ञ की रचना रचायी जाती है। ऊंचे ब्राह्मणों के द्वारा उस यज्ञशाला में

प्रायः चुनाव होता था। मुझे वह काल पूज्यपाद गुरुदेव की अनुपम कृपा से भली–भांति स्मरण है, जब यहां राष्ट्रों (राजाओं) का चुनाव होता था। भगवान राम इत्यादि का चुनाव हुआ। उस काल में याज्ञिक और यज्ञ की परम्परा हमारे वैदिक–साहित्य में ही विराजमान है। हमारे यहाँ त्रेता–काल में भी इसी प्रकार के यज्ञों का निर्माण हुआ। यज्ञ का उदगार मानव के हृदय से उत्पन्न हुआ करता है। इसका हृदय से सम्बन्ध है। इसीलिए जो मानव अपनी स्वच्छता को ले करके यज्ञ कर्म को करता है वह स्वच्छता ही वायु मंडल में और दूसरों के हृदय को उसकी शुद्धता की जो तरंगे हैं उसके हृदय को महान और विदीर्ण (विकसित) करती चली जाती हैं।

प्रभु को आत्म समर्पण करके निर्भय बन

कल मैं अपना विचार दे रहा था कि यह जो समाज है, यह जो राष्ट्र है, यह जो भूमि है, इसमें परम्परागतों से विचार होता रहा है और जहाँ वैदिक–विचार, जहाँ वैदिक–अनुसंधान, जहां मानवीय–विचार वहीं एक महत्ता और ओजस्वी विचार भी मानव के लिए विदीर्णता विकास को प्राप्त करा देते हैं। मैने इससे पूर्व शब्दों में अपना विचार देते हुए कहा था कि दूसरों को समर्पित करने की हमें में शक्ति होनी चाहिए। जब हम दूसरों को अपने को समर्पित नहीं करते तो हमारा जीवन कैसे उत्तम बनेगा? जब भगवान को उस प्रभु को अपने को समर्पित कर देता है अपनी प्रवृत्तिया को समर्पित कर देता है तो उस काल में उसकी प्रवृत्तियाँ, उसकी विशालता उसमें ओत–प्रोत हो जाती है। वह उस विशालता को ले करके ही वह भक्त प्रभु को समर्पित कर देता है। जब अपने को समर्पित कर देता है तो उसमें अहम् भाव नहीं रहता। वह तो प्रभु का बन चुका है इसीलिए जो प्रभु का बन गया है संसार में उसे भय की मात्रा क्यों हो? क्योंकि वह उस ऐसे स्वामी के, ऐसे राष्ट्र–पिता के राष्ट्र में चला गया है जिसे संसार का भय नहीं होता। हम इस संसार से भयभीत उस काल में होते हैं जब परमात्मा को अपने से दूर कर देते हैं। उसी काल में हम नाना प्रकार के अपराध करना प्रारम्भ कर देते हैं। तो मैं इन विचारों को आज पुनः से देना नहीं चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कुछ और ही कहा है। मैं जब पूर्व काल के कर्मकांड को दृष्टिपात करता था, उसमें और आज में कर्मकांड में नाना प्रकार की भिन्नता मुझे दृष्टिपात आती हैं। परन्तु ''न करने से कुछ करना बहुत सुन्दर है'' मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी ऐसा ही उच्चारण करते रहते हैं। आदि ब्रह्मा ने भी ऐसा ही कहा ''कुछ कर्म न करने से कुछ करना बहुत सुन्दर है।'' तो इसलिए जब मैं कर्म–कांड के ऊपर विचार करता हूँ उस समय विचारना चाहिए कि हम कर्म–कांड की वेदी पर विराजमान हैं। जहाँ मैं यह विचारता हूं कि संसार एक दूसरे को अपने अधीन अपने ही निचले भाग में दृष्टिपात करना चाहता है। यह कैसी विडम्बना (उपहास, मजाक तथा दुःख का विषय) है? यह कैसा मानव का एक अशुद्ध विचार बन चुका है ? आज के यजमानों के सम्बन्ध में, आज के याज्ञिकों के सम्बन्ध में जब यह विचारता हूँ कि उनमें श्रद्धा तो है परन्तु उनमें वे संसार के लुभाने वाले पदार्थ हैं। जब यज्ञ कर्म में परिणत हो जाते हैं तो समाज में हमें यह नहीं दृष्टिपात करना है कि समाज हमें क्या कहेगा? परन्तु यह विचारों कि जिन देवताओं की हम पूजा करने लगे हैं देवतागण हमें क्या कहेंगे ? उनका विचार, उनकी, सुगन्धि उनके विचारों की सुगन्धि को देखो। उसी से संसार ऊंचा बनता है।

भगवान से हमारे मानसिक विचार छिपे नहीं हैं

मुझे स्मरण है एक समय राजा जनक की सभा में ब्रह्म–यज्ञ हो रहा था। ब्रह्म–यज्ञ के साथ में जब यज्ञ होते थे उस समय यहां मेरी पुत्रियां, ऋषि कन्याएं जब नग्न आती तो उस समय राजा उनको भिन्नता की वार्ता प्रकट करता तो वह अपने विचारों से ही यह कहा करतीं ''वह जो देवता है अरे! इन वस्त्रों को दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं। वे हमारे जो विचार हैं हमारा जो हृदय है हमारे जो हृदय की विचारधारा है उनको स्वीकार करते हैं। यह विचार जब उन्होंने दिये तो ऋषिजन चकित हो जाते थे। परम्परा का वह याग था जहाँ **कटि–वस्त्र** धारण करके जब होताजन विराजमान होते तो यज्ञ ऐसा प्रतीत होता जैसे नवीन सृष्टि प्रारम्भ हो रही हो। नवीन सृष्टि की एक रचना है।

यज्ञ किया हुआ घृत नष्ट नहीं होता

परन्तु क्या करें ? आज का जगत जब इनको पाखण्ड उच्चारण करने लगता है। तो मुझे प्रतीत होता है कि न करने से तो कुछ करना भी प्रिय लगता है तो इसलिए मैं यह वाक् प्रकट कर रहा हूँ। आज के समाज में यह कहा जाता है कि घृत को अग्नि में समर्पित कर दिया जाता है यह घृत अग्नि में जाकर नष्ट नहीं हो जाता।

परन्तु यह वातावरण वायुमण्डल को पवित्र बनाता है। मानव के हृदय को विदीर्ण (विकसित) कर देता है। विचारशील बना देता है। ऐसी वायु में तरंगें ओत–प्रोत रहती हैं। सुगन्धि संसार में अखण्ड रहनी चाहिए यह अखण्ड ज्योति है।

बरनावे का प्राचीन इतिहास

मैं कल इस लाक्षागृह के सम्बन्ध में और यहाँ के अवशेषों के सम्बन्ध में कुछ विचार दे रहा था। यह जो लाक्षागृह वर्तमान में है इससे लगभग आधुनिक काल के चार कोसों की दूरी में नदी अपना प्रवाह लिए हुए रहती थी। उस काल में इसी नदी के तट पर नाना याग होते। इसी स्थल पर, तट पर महाराजा द्रोणाचार्य की एक स्थली थी जिन में अस्त्रों–शस्त्रों की विद्या की शिक्षा होती थी। जहाँ सैनिक नाना प्रकार की शिक्षाओं को अध्ययन करते थे। धर्नुविद्या का पठन–पाठन होता। वहाँ यज्ञशाला होती थी। यज्ञशाला में श्वेतकेतु नाम के एक ब्राह्मण थे। ब्रह्मचारी थे। वे ब्रह्मचारियों से यज्ञ कराते रहते थे। प्रातः काल में उनका कर्म रहता था। सूर्य उदय होते ही यज्ञशाला में विराजमान हो जाना और वहाँ यज्ञ होता। उसमें ऐसी सुगन्धि उत्पन्न होती थी जिससे वहाँ का वातावरण इस प्रकार का सुगन्धित रहता था। वहाँ जो भी प्राणी आता वह सुगन्धित हो जाता था।

धनुर्विद्या के साथ ब्रह्मचर्य का पालन होना चाहिए

मुझे स्मरण है कि एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज्ञा दी, जाओ द्रोणाचार्य की तुम स्थली को, उस शिक्षालय भवन को दृष्टिपात करके आओ। उस समय मैं आज्ञा पाते ही उस यज्ञशाला के लिए चल दिया। वहाँ जब मैं पहुँचा तो वहाँ एक यज्ञ हो रहा था, **यजुर्वेद पारायण**। ''यजुर्वेदम् ब्रह्मे।'' दसवें अध्याय का पठन पाठन हो रहा था। उसमें राष्ट्रवाद का प्रायः वर्णन है। धनुर्विद्या के भी कुछ विशेष विचार है। इस प्रकार की विचारधारा जब मैंने वहाँ श्रवण की, तो उस समय मुझे भी समय दिया गया कि आप भी ब्रह्मचारियों को कुछ अपना उपदेश दें। मैने एक ही वाक्य कहा था ब्रह्मचारियों को ''ब्रह्मचर्य प्रवे'' हें ब्रह्मचारियो! तुम्हें ब्रह्मचारी रहना है। तुम्हें ब्रह्मचारी बनकर के धनुर्विद्या को अपनाना है इसको निगलना है, इनको चरना है। चरने का अभिप्राय यह कि जो धनुर्विद्या के साथ में ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो वह ब्रह्मचारी संसार में कितना सौभाग्यशाली है। तो आज मैं सौभाग्शालियों की चर्चाएं प्रकट करता चला जा रहा था।

सहशिक्षा से दुराचार की वृद्धि होती है

अपने विचारों को मैं इसलिए ऊर्ध्वगति को ले जाना चाहता हूँ कि हमें विचाराना है हमें उन विद्यालयों के ऊपर विचारना है कि जहाँ ब्रह्मचारी एक स्थान में हैं। ब्रह्मचारिणी अन्य स्थान में रहती थीं। और आज का जो समाज है आज जो इतनी कटुता समाज में प्रतीत होती है इतना राष्ट्रवाद का पतन, देखो, एक अकृति को अक्रमण्यता को (पतन को) प्राप्त हो रहा है। धूर्तता को और पामर (नीच) दृष्टि संसार की बनती चली जा रही है उसका मूल कारण एक यह है कि ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारियों की स्थली भिन्न–भिन्न न रहने के कारण। क्योंकि उसमें दुराचार की मात्रा की उत्पत्ति होती है। क्योंकि ब्रह्मचर्य नष्ट होने पर ईश्वर का ज्ञान नहीं हो सकता।

तीन प्रकार की विद्यापओं के साथ ब्रह्मचर्य की शिक्षा हो

आज ब्रह्मचारियों को ब्रह्मविद्या और धुनर्विद्या देने के पश्चात संसार में तीन प्रकार की विद्याएं और हैं। ब्रह्मविद्या देखो जो 'ब्रह्मप्रवे अकृति' इस प्रकार जहाँ ब्रह्मविद्या वह धनुर्विद्या। देखो क्षत्रिय और वैश्य की वाणिज्य विद्याएं नाना प्रकार की विद्याएं हैं। इनको प्रदान करना इनको देना। देखो गृह–आश्रम में किस–किस प्रकार हमें विचारना चाहिए ? किस प्रकार का हमारा विचार हो? देखो, जब यहाँ विचारों के साथ–साथ शिक्षालयों में शिक्षा प्रदान की जाती है, तो उस काल में यह राष्ट्र और समाज सदैव ऊँचा बना करता है। मुझे स्मरण है, जब महाराजा द्रोणाचार्य की स्थली पर प्रायः विचार–विनिमय होता रहता था तो वह विचार कितना सुन्दर था कितना महत्ता वाला विचार था। द्वापर का काल मुझे पुनः स्मरण आने लगता है।

विदेशियों के आक्रमणों से हम रूढ़िवादी बन गए हैं

परन्तु आज का जो समाज है, वैदिक–साहित्य है जिसको समाज केवल पाखण्ड के रूपों में ही वर्णन करने लगा। क्योंकि विचार तो होता नहीं, अनुसन्धान नहीं किया जाता। वह विचार नहीं वे तरंगे नहीं। यदि वह विचार और वे तरंगे हों तो यह मानव समाज बारम्बार ऊँचा बन सकता है। तो मैं यह विचार इसलिए देने जा रहा हूँ क्योंकि समाज में हमारे वैदिक–साहित्य, हमारी वैदिक–विचारधाराओं ने यह अपने में स्वीकार कर लिया है कि

हम पर दूसरों के आक्रमण होते रहे। परन्तु दूसरों के आक्रमणों से हम रूढ़िवादी बनते रहे। अरे! इस रूढि को नष्ट करना है। उस विचार को लाना है जो विचार सात्विक है, महत्ता वाला है, जिस विचार में एक उच्चता है, उस विचार को लाने का मानव को सदैव प्रयास करना चाहिए। यह विचार कैसे आएगा ? जब ब्रह्मचारिणी ऊँची बनेंगी। ब्रह्मचारी ऊँचे होंगे। ब्रह्मचारिणियों की विद्या भिन्न–भिन्न प्रकार की होंगी।

ब्रह्मचारिणियों को आयुर्वेद की पूरी शिक्षा होनी चाहिए

गृह–आश्रम में रहन–सहन किस प्रकार का हो? जिससे बालक की उत्पत्ति होती है। किस प्रकार गर्भ में निर्माण होता है। किस माह में कौन सी वस्तु का निर्माण होता है? यह आयुर्वेद की विद्या ब्रह्मचारिणियों को प्रदान करनी चाहिए। आज तो उदर पूर्ति करने के लिए वैद्य राज बन गए। परन्तु परम्परा का प्राचीन काल था जब मेरी पुत्रियां और माताएं ही वैद्यराज रहती थीं। आयुर्वेद की विद्या में इनके द्वारा होनी ही चाहिए। क्योंकि आयर्वेद की विद्या मानव का निर्माण है, मानव का दर्शन है इसीलिए मानव का दर्शन और निर्माण करने वाली मेरी पवित्र माताएं होती हैं, पुत्रियां होती हैं। तो इसीलिए वह होना चाहिए। इसीलिए आज मैं उस समय की कुछ सूक्ष्म वार्ता प्रकट करता चला जाऊँ। इस प्रकार यह समय चलता रहा, परन्तु समय की अवहेलना होती रही।

अहिंसा की स्थापना के लिए दुराचारी को दण्ड आवश्यक

यहाँ महात्मा बुद्ध ने आकर के अपना चक्र चलाया परन्तु उस चक्र का प्रभाव यह हुआ कि यहाँ विदुषीपन समाप्त होने लगा। उसमें रूढ़ियाँ बन गईं और केवल एक अहिंसा को अपना लिया। परन्तु समाज ने अहिंसा को जाना नहीं। यदि समाज अहिंसा को जान लेता तो उद्धार हो जाता। अहिंसा का वास्तविक स्वरूप क्या है? केवल यह अपना लिया कि यदि एक मानव उदण्डता करे तो दूसरा शान्त रहे परन्तु ऐसा नहीं। यहाँ वेद का ऋषि और कुछ कह रहा है। वेद का ऋषि यह यह रहा है ''ब्रह्मव्यापक प्रवे अस्ति सुप्रजः नमः।'' ''यहाँ नमः का उपदेश दिया है और कहा है कि जो उदण्डता करता है उसको शिक्षा दो और यदि शिक्षा को भी वह स्वीकार न करे तो शीररिक बल से उसे दण्ड देना चाहिए !'' क्योंकि एक मानव इस समाज में नाना प्रकार के अपराध करता है, नाना पुत्रियों के श्रृंगारों को भ्रष्ट करता है क्या उसके साथ में अहिंसा को अपनाओगे ? जिस अहिंसा से इस समाज का विनाश होता है, उसे कदापि नहीं अपनाओ। हिंसक को या तो मृत्यु दण्ड दो अन्यथा उसको इस प्रकार विचारों में जकड़ दो कि वह उस नग्नता को त्याग दे। इसका नाम ''अहिंसा परमोधर्मः'' कहलाया गया है। एक मानव यहाँ नाना मेरी पुत्रियों को भ्रष्ट कर देता है और वह अपनी विचारधारा को ऊँचा नहीं बनाता। एक कन्या है यदि वह समाज को भ्रष्ट बना देती है तो उस कन्या को दण्ड देना चाहिए। उसको मृत्यु दण्ड भी देना हमारे यहाँ वैदिक–साहित्य में प्रायः प्राप्त होता रहा है। ऐसा कहा है कि जब एक कन्या भ्रष्ट हो गई, आगे आने वाला जो समाज है उसमें भी वही दुराचार की भावना आती रहेगी। इसीलिए हे ब्राह्मण समाज! हे ऊँचे विद्वानो! आज तुम्हें अपना नाद बजाना चाहिए। अपनी उस शंख ध्वनि को अपना करके कन्या को सुन्दर उपदेश देना चाहिए। उपदेशों से वह स्वीकार न कर सके तो उसको मृत्यु दण्ड देने में कोई अपराध नहीं होता। क्योंकि हमारा वैदिक–साहित्य कहता है इससे राष्ट्र और समाज दोनों उन्नत होते हैं। इसीलिए इनको उन्नत बनाना चाहिए। उन्नत बनाना एक हमारा कर्तव्य है।

चरित्र से राष्ट्रवाद विकसित होता है

आज मैं राष्ट्रवाद के ऊपर अपना विचार दे दूं तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। आज के राष्ट्रवाद में चरित्र के ऊपर कोई विचार देना स्वीकार नहीं करता। चरित्र के लिए निर्माण शालाएं तो बना सकते हैं, परन्तु उनमें कर्म कुछ और ही होते हैं तो इनसे समाज अधोगति को जाता है। इसीलिए मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ कि शिक्षालय ऊंचे होने चाहिए, पवित्र होने चाहिए। उसके पश्चात इस समाज में महत्ता का दिग्दर्शन होना चाहिए। जिससे समाज में कुरीत न रह करके सुन्दरता आ जाए। महत्ता का दिग्दर्शन हो जाए। मुझे स्मरण है। बहुत समय हुआ जब यवनों का राष्ट्र रहा, मोहम्मद के मानने वालो ने चरित्र को महत्व न देकर के उसके विचारों को भी स्वीकार नहीं किया। नाना प्रकार के अपराध किये। अपराध क्या किये? दूसरा जो धर्म अपनाने वाला व्यक्ति था उसकी कन्याओं को मृत्यु का दण्ड दे करके अपना प्रभुत्व लाने का प्रयास किया। परन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? आज मैं यह अपना निर्णय दे रहा हूं कि यह जो यवन समाज है आज से लगभग मैंने बहुत काल पहले कहा चालीस वर्ष के पश्चात यह सम्प्रदाय समाप्त होने वाला है। मूल कारण यह है कि विज्ञान की धारा के आगे इसका कोई

मूल नहीं है। मैंने कई काल से वास्तव में बीस साल की घोषणाएं की है ''बीस साल की घोषणा मेरी अटल है।'' परन्तु चालीस वर्ष तक इस सम्प्रदाय की केवल पोथियों में इसका नामोच्चरण होगा। क्योंकि यह जो समाज एकत्रित हो गया जो दूसरों के चरित्र को भ्रष्ट करते हैं अपने जीवन को सुन्दर नहीं बनाते इसका परिणाम यह होगा कि विज्ञान के आगे इसका कोई मूल नहीं रहेगा।

आज का वैज्ञानिक समाज जब चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है तो मूर्ख ये उच्चारण करते हैं कि यह मानव चन्द्र पर पहुंचा ही नहीं है। यह कितना अशुद्ध वाक्य हैं। यह कितना पागलपन का वाक्य है। क्योंकि यवन पोथियों में वह विद्या है ही नहीं। वह विचार है ही नहीं तो वह विचार कहां से लाएंगे? परन्तु देखो, वह विचार जब वायुमण्डल में वायु की तरंगों को छूने वाले बनेंगे तो इनका स्वयं विज्ञान और इस परमाणुवाद के आगे स्वयं इनका परिवर्तन होता रहेगा। ऐसा मुझे प्रायः आगे का जगत दृष्टिपात आ रहा है।

आज वह समय आ रहा है जब यह अपने ऊपर किसी काल में विचारते हैं आज जो इनका ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) विज्ञान में चला जाता है परमाणुवाद के ऊपर विचारने लगता है तो वहां वह पोथी नहीं रहती। जिन पोथियों के आगे यह दूर का तत्व बन गया है। इसलिए उस पोथी का तत्व समाप्त हो जाता है।

वेद विद्या से ही समाज में महत्ता ही स्थापना

मैंने कल इनके शब्दों का प्रतिपादन किया। क्योंकि हमारे यहां राष्ट्र और समाज में भी हमारे ब्राह्मण समाज में भी नाना प्रकार की कुरीतियां आईं। उन कुरीतियों के परिणाम के रूप में शिवालय बने । यवनों ने नाना प्रकार के कृत्य किये। अब तो इनके यहां एक ईश्वर का भी वास्तविक प्रसार नहीं है। एक ईश्वर को यदि स्वीकार करें तो भी इनके द्वारा दूसरों की कन्याओं को दुराचार करने का इनमें साहस न हो। यदि इनका जो साहस होता है तो केवल ईश्वर को एक ईश्वर न मानने से होता है। इसीलिए मैं यह वाक् प्रकट कर रहा हूँ। क्योंकि समाज में क्या–क्या होना चाहिए? आज मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ कि समाज में महत्ता होनी चाहिए। विचार होना चाहिएं और वैदिक–साहित्य होना चाहिए। वेद की पवित्र विद्या होना चाहिए। जिस वेद की विद्या को अपनाने वाला प्राणी इस समाज में गौरव के सहित यह उच्चारण करता है कि मैं ईश्वरवादी हूँ। माता की पूजा करता हूँ। क्योंकि पिता की पूजा करते हुए माता की पूजा नहीं करता, माता की पूजा को जो नहीं जानता, वह समाज कुछ काल में अज्ञानता के कारण नष्ट हो जाता है।

राष्ट्र का कर्त्तव्य

आज मैं उच्चारण कर रहा था कि यहां क्या नहीं होता? मेरे पूज्यपाद–गुरूदेव का यह मौलिक सूक्ष्मरूपी एक शरीर है नाना प्रकार की योजनाएं बनती रहती हैं। मृत्यु दण्ड देने की योजनाएं बनती रहती हैं। परन्तु जिसको यह खुदा का घर उच्चारण करते हैं उन गृहों में जहां दूसरों के नष्ट करने की योजना बनें राष्ट्र को ऐसे गृहों पर अपना आधिपत्य कर लेना चाहिए। जहां दूसरों को नष्ट करने की, जहां राष्ट्र के विद्रोह की वार्ता प्रकट हो ऐसे राष्ट्र द्रोहियों को अपने अधिपत्य में धारण कर लेना चाहिए। मैं इस वाक् को इसलिए उच्चारण करने जा रहा हूं कि कैसी निष्ठा और मानवता होनी चाहिए? मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि दूसरों को नष्ट करने की जहां योजना और विचार बनाए जाते हों और उसको उसके पश्चात भी प्रभु का गृह उच्चारण करते हों तो प्रभु का वह कैसा गृह है? क्योंकि वह गृह प्रभु का कदापि नहीं होगा। वह दूसरों की पुत्रियों पर, दूसरों की पत्नियों पर विनाश लाने वाला गृह हो क्या वह प्रभु का गृह है? या वह पामरों का गृह है। वह उन अपराधियों का गृह है। इसलिए राष्ट्र को चाहिए, राज कर्मचारियों को चाहिए कि ऐसे गृहों में अपना शिक्षालय बनाना चाहिए। ऐसे गृहों को अपने में अपनाना चाहिए। क्योंकि इससे राष्ट्र और समाज को हानि हुआ करती है। इससे राष्ट्र और समाज का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है।

आज जब मैं इस समाज को दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। कैसा विचित्र आश्चर्य है? हमारे यहां परम्परागतों से यह विचारना वर्तमान को जो राष्ट्र है, वह राष्ट्र राज्य विधान है से बहुत ही दूर है राष्ट्र विधान को नहीं जानता, समाज में राम और रावण तो बनना चाहिए पर समाज में विभीषण भी तो होना चाहिए। परन्तु विचारना यह है कि यह विभीषण है अथवा नहीं है। यह भी तो विचारना है यदि इस वाक्य को नहीं विचारेगें तो राष्ट्र में रक्त भरी क्रांति आने का पुनः से प्रयास होने जा रहा है। इसलिए मैं इन वाक्यों को उच्चारण करने जा रहा हूँ कि जहां इस प्रकार की धाराएं हों वहां विचारधारा ऊंची हो तो इस राष्ट्र को कोई

निगल नहीं पाएगा। विचार केवल हमारा यह है कि हमें यह विचारना है। हमारे द्वारा राष्ट्र का जो विचार है वह ऊंचा होना चाहिये। अपनी सीमाओं पर चरित्रवान क्षत्रिय होने चाहिए। जो राष्ट्र को ऊंचा बनाने वाले हों। आज वह प्रभु के गृह के लिए बारम्बार उच्चारण करते हैं। परन्तु जिन गृहों में एक दूसरे के नष्ट करने की योजना बनाई जाए और प्रभु के नामोच्चारण करने मात्र से ही उनको प्रभु का घर नहीं मानना चाहिए। परन्तु राष्ट्र को चाहिए उस गृह को अपना लेना चाहिए। गृहों को उन धूर्तों के, उन पामरों कें भुजाओं में कदापि नहीं प्रदान करना चाहिए। इसलिए आज मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूं। अहः! यहां दूसरों के नष्ट करने की विचारधारा नहीं बनानी चाहिए। दूसरों का उत्थान का विचार बनाना चाहिए। उस वाक्य को विचारों वह तो स्वार्थवाद है। वह तो एक ऐसा है मानो हमें इसके विपरीत कार्य करना है तो ऐसा विचार जो होता है यह कोई महापुरूषों का विचार नहीं होता।

धर्म वाली शिक्षा के द्वारा राष्ट्र को ऊंचा बनाओ

महापुरूषों का तो एक ही सुगठित विचार है, वह विचार यह है कि ''अच्छाइयों को लाने का प्रयास करो। जितनी कुरीतियाँ है उनको नष्ट कर दो।'' ऐसा विचार प्रत्येक महापुरूष का होता है। ऐसा विचार मोहम्मद का भी था। महात्मा ईंसा का भी था। ऐसा विचार महावीर स्वामी का भी था। ऐसा ही विचार हमारे यहां महात्मा नानक का भी था। ऐसा ही विचार हमारे यहां महात्मा बुद्ध का भी था। भिन्न–भिन्न प्रकार के धर्मज्ञ महापुरूष थे। उन सब का एक ही वक्तव्य था कि ''कुरीतियों को नष्ट करो और सुन्दरता को लाने का प्रयास करो।'' परन्तु सुन्दरता को त्याग करके उसकी रूढ़ी बन गई और रूढ़ि क्यों बनी? क्योंकि अपना आधिपत्य ही इससे होगा। अपने अस्त्रों–शस्त्रों के बल और प्रभाव से दूसरों को अपने सम्प्रदाय में लाने का प्रयास किया गया। परन्तु उसका परिणाम यह कि वह जब अपने जीवन को विचारते हैं तो वह तो दूर चले जाते हैं। आज मैं इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण करने जा रहा हूँ कि हमें यह विचारना है, यह अनुसन्धान करना है। ''हमें अपने राष्ट्र और समाज की उन्नति करनी है। हमें धर्म और शिक्षा की उन्नति करनी है।''

प्रत्येक शिक्षालय में उपनिषदों और वेदों की शिक्षा हो

आज का राष्ट्रवाद यह कहता है कि जहां उपनिषदों की पवित्र विद्या है, जिन ऋषि–मुनियों ने अनुसंधान किया, उसकी जब विद्या देते हैं तो ये कहते हैं कि यह तो एक रूढ़ि है, सम्प्रदाय है अरे ! विचारों तो कि सम्प्रदाय किसे कहते हैं? क्या उस विचार को सम्प्रदाय कहोगे जिन विचारों से महत्ता की तरंगे हैं और जो महान बनाने वाला विचार होता है उसको रूढ़ि उच्चारण करोगे? यह तुम्हारे योग्य नहीं। परन्तु देखो, यहां प्रत्येक शिक्षालयों में उपनिषदों का पवित्र ज्ञान होना चाहिए। वैदिक–साहित्य का ज्ञान होना चाहिए। ऋषि–मुनियों का विचार होना चाहिए। जिस विचार से राष्ट्र और समाज और चरित्र ऊंचा बना करता है। आज मैं इन वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ कि प्रत्येक वाक्य को विचारना अनुसन्धान करना है। जिस अनुसन्धान वेदी पर विराजमान हो करके राष्ट्र, समाज उत्थान में लाने का प्रयास किया जाता है। वही विचार एक महान कहलाया गया है। वह महत्ता वाला जो विचार है वही राष्ट्र को ऊंचा बनाता है! समाज को ऊंचा बनाता है। ''जिस समाज में महापुरूषों की प्रतिभा होती है, विचारधारा होती है, वैदिक–साहित्य होता है, प्रकाश होता है वह समाज सर्वोपरि होता है'' मैं आज का विचार यह देने आया हूँ कि ''संसार में रूढि नहीं होनी चाहिए। रूढ़ि राष्ट्र का विनाश करा देती है राष्ट्रों के विभाजन करा देती है।'' यह जो राष्ट्रों के विभाजन बन गए हैं यह केवल एक रूढ़िमात्र से ही बने हैं। इसीलिए रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। राजा को रूढ़ि को नष्ट भ्रष्ट करा देना चाहिए।

आज मैं यह उच्चारण कर रहा था। महाराजा द्रोणाचार्य के शिक्षालय की विवेचना कर रहा था। ब्रह्मचारी यज्ञ करते थे। यज्ञ करके वह अपने–अपने स्थलों पर, आसनों पर विराजमान हो करके अपनी शिक्षा का अध्ययन करते थे। कैसी शिक्षा? देखो, वे प्रातःकाल में नाना प्रकार के योग के आसनों का अभ्यास करते थे। अनन्तर धनुर्विद्या का अध्ययन करना, उनको क्रियात्मक में लाने का प्रयास करना, उसके पश्चात वे आचार्य के चरणों में उस विद्या को केवल शब्दों में उच्चारण करते थे। शब्दों में प्रतिभा लाते थे और उसके पश्चात क्रिया में लाने का प्रयास करते थे। हमारे यहां परम्परागतों से ही था विद्या क्रिया में होनी चाहिए केवल शब्दों में अक्षरों में विद्या जो है यह मानव को ऊंचा नहीं बननें देती। जब क्रिया होती है क्रिया के साथ में जब ब्रह्मचारी अध्ययन करता है तो उस समय शिक्षालय ऊंचे बना करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मचारिणियों को, माताओं को ऊंचा बनाना है कैसा कि

राम, कणाद और महर्षि गौतम जैसे ब्रह्मचारी उत्पन्न करना है। ''ब्रह्म व्यापक प्रवे'' अहः। संसार में प्रायः ऐसा जगत होता रहता है। मैंने बहुत पूर्वकाल में कहा, कल भी मैंने कहा जहां द्रोणाचार्य का शिक्षालय हो, यज्ञशाला हो, जहां ऊंचे–ऊंचे विचार होते हो। अरे ! वहां श्मशान भूमि भी बन सकती हैं, परन्तु जहां शमशान भूमि है वहां पुनः से यज्ञ इत्यादियों के ऊंचे कर्म भी होते हैं, होते ही रहते हैं। इसी प्रकार मैं यह वाक् प्रकट करने चला हूँ कि समाज में अहः! उच्चता को लाने का प्रयास किया जाए। कुरीतियों को नष्ट किया जाए। यह ऊंचे विद्वानों का कर्तव्य है। महापुरूषों का यह कर्त्तव्य है।

स्वार्थवाद के कारण यह संसार नष्ट होने जा रहा है

आगे आने वाला जो समय है वह इतना भयंकर आ रहा है इस समाज के और जगत के लिए कि उसके परिणाम को मैं उच्चारण करने में असमर्थ रहता हूँ। क्योंकि एक दूसरा मानव एक दूसरे को नष्ट करने की विचारधारा बना रहा है। और इस संसार में जीवित वही रहेगा जो अपने विचारों को महत्ता के आंगन में लाने का प्रयास करेगा। विचारना और महत्ता को लाना ही मानव का कर्तव्य है। अब मैं अपने पूज्यपाद–गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा। आज हम अपनी महत्ता मानवीयता को लाने का प्रयास करें। शिक्षालयों में क्या, गृहों में क्या, यज्ञस्थली पर क्या, सर्वत्र महत्ता की स्थापना करें। कल मुझे पूज्यपाद–गुरूदेव समय देंगे तो कल और शेष चर्चाएं प्रकट कर सकूंगा। आज का विचार तो केवल यही है। क्योंकि कल मैं राष्ट्रीय सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर सकता हूँ यदि कल मुझे समय मिलेगा। तो आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है। हम अपने जीवन को एक महत्ता की वेदी पर लाएं, अशुद्धियों को त्यागें। यही हमारा कर्त्तव्य है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद–गुरुदेव

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना एक सुन्दर विचार दिया। इनका मौलिक कर्त्तव्य एक ही था, ''अच्छाइयों को लाने का प्रयास किया जाए और नाना प्रकार की समाज में जो कुरीतियां होती हैं उनको त्यागने का प्रयास किया जाए।'' ऐसा उन्होंने कहा है। वाक्य तो बहुत ही प्रिय है, बहुत ही सुन्दर है परन्तु उसमें कटुता की भी बौछार है। इन के वाक् में अनन्य कटुता का प्रतिपादन होता रहता है तो मैं इन वाक्यों को अधिक कोई अपना विचार नहीं देना चाहता हूँ। हमारा विचार है **'समाज में यज्ञ होने चाहिए।''** कल समय मिलेगा जैसा समय होगा उसके अनुसार समय प्रदान किया जाएगा। आज का वाक् क्या, **''हमें अपने जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास करना चाहिए।''** राष्ट्रवाद, मानववाद को महानन्द जी ने बड़े सुन्दर रूपों से वर्णन किया। कल इनके विचारों पर शेष टिप्पणियां भी की जा सकेंगी। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : 24 फरवरी, 1972
समय : दोपहर 3 बजे
स्थान : लाखा मंडप, बरनावा।

१४. वारणावत का इतिहास २३–फरवरी–१६७२

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में सर्वत्र इस ब्रह्माण्ड को एक प्रकार की यज्ञवेदी माना है। क्योंकि यह संसार जो आज हमें दृष्टिपात आ रहा है यह एक प्रकार की उस प्रभु की यज्ञवेदी है। जिससे प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक ऋषि–मण्डल इस वेदी पर यज्ञमय जीवन को बनाने के लिए ही उत्पन्न होता है। इसलिए वेद का आचार्य कह रहा है कि मानव को अपने विचारों में यज्ञमय विचारों को लाने का प्रयास करना चाहिए।

महत्ता के लिए विचारों को परमात्मा के अर्पण करो

संसार परम्परागतों से ही चलायमान रहता है। इसकी विचित्रता एक महत्ता में परिणित होती रहती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम यह विचारने लगते हैं कि हमारा जो जीवन है वह यज्ञमय है तो इस समाज में कुरीतियां नहीं रहती। इस समाज में रूढ़ि भी नहीं रहती। उस मानव का, उस समाज का, उस राष्ट्र का जीवन इस महत्ता की वेदी पर विराजमान हो करके मानव अपने जीवन को महान् धर्म से बनाने का प्रयास करता ही रहता है। बेटा! आज हम समाज में यह विचारने वाले बनें कि हमारा यह जो वैदिक प्रकाश है जो कि मानव के जीवन को ऊर्ध्वगति की ओर ले जाने वाला है। मैंने कई कालों में कहा कि मानव को यौगिक बनने की शक्ति होनी ही चाहिए। परन्तु योगी बना कैसे जाता है? यह विचारना है। जैसे मानव कृषि का करने वाला कृषक जब भूमि में बीज की स्थापना करता है तो पूर्व विचार बनता है, उसके योग्य भूमि को बनाता है। उसमें बीज की स्थापना करता है। तो इसी प्रकार हमें अपने विचारों को सुदृढ़ बनाना है और उसके अनुकूल अपने जीवन को बनाने का प्रयास करना है। **जीवन बनता उस काल में है, जबकि हम अपने जीवन में मुनिवरो! प्रत्येक तरंग को हम परमात्मा को समर्पित कर देते हैं।** जब हम परमपिता परमात्मा को समर्पित कर देते हैं तो हमारा जीवन एक महत्ता में परिणित होता चला जाता है।

वनस्पतियों की सहायता से योगी बनो

तो आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम उस महान अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने जीवन को यौगिक बनाने का प्रयास करें। क्योंकि संसार में जितनी भी नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं जितना भी मानव का आहार–व्यवहार होता है वह सर्वत्र उसके विचारों पर निर्भर रहता है। उसके द्वारा जब सुगन्धि का पान किया जाता है, नाना प्रकार की वनस्पतियों को एकत्रित किया जाता है और उन वनस्पतियों को पान करने के लिए हम सदैव तत्पर रहते हैं। उन वनस्पतियों को हम जानते हुए आयुर्वेद की दृष्टि से अपने जीवन को बनाने का प्रयास करें। जिससे हम उस यौगिक महत्त्व को जाने क्योंकि हमारे यहां सर्वत्र जो योग है जैसा मैंने कल के वाक्यों में कहा कि मन और प्राण दोनों की प्रक्रियाओं को जानने का नाम, दोनों को मिलान करने का नाम योग कहा जाता है। वह काल मुझे स्मरण आता रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरू–देव के द्वारा विराजमान होता तो उस समय पूज्यपाद गुरु देव मुझे एक महान औषधि का पान कराते थे। मुनिवरो देखो योगी वैसे ही नहीं बनता है। योगी तो उस काल में बनता है जब नाना प्रकार की वनस्पतियों का और उन औषधियों का पान किया जाता है जिन औषधियों में एक महत्ता होती है, प्रबलता होती है, विचार होता है। तो इसलिए आज हमें उस विचार में जाने का प्रयास करना चाहिए।

महत्ता का दिग्दर्शन

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं कोई विशेष विवेचना प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपने वाक्यों को प्रकट करने वाले हैं। यह भी अपना विचार देंगे। इनका कैसा मधुर विचार होता है। मैं इनके विचारों को मापना नहीं चाहता हूं। केवल विचार यह है कि हम अपने जीवन को यौगिक बनाने का प्रयास करें जिससे समाज में महत्ता का दिग्दर्शन हो जाए। जिस महत्ता के लिए संसार में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव–कन्या,

ऋषि, मुनि पिपासु रहते हैं। आज हमें उस पिपासु को जानने का प्रयास करना चाहिए। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ शेष विचार प्रकट करेंगे। अब मैं अपने वाक्यों को यहां विराम दे रहा हूं।

पूज्य महर्षि महानन्द जी के उद्‌गार

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! भद्र समाज! मैं आज अपना कोई विशेष विचार देने नहीं आया हूं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नित्यप्रति आत्मा परमात्मा की चर्चायें और यौगिक विवेचना करते रहते हैं। आज मुझे कोई ऐसा विशेष अपना विचार नहीं देना है, जिन विचारों में हम वास्तव में अकृत असफल होते चले जाएं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी–अभी कुछ यौगिक चर्चायें प्रकट कर रहे थे। उन यौगिक चर्चाओं में विचार की महत्ता का वर्णन करते चले जा रहे थे। आज मैं विचारों की महत्ता वर्णन करने के लिए नहीं आया हूं न मैं यह घोषणा करने आया हूं कि संसार को योगी बन जाना चाहिए। परन्तु जहां आज का समाज, आज का यह जो वर्तमान का जगत् है, इस वर्तमान के जगत् में जहां मानव चन्द्रमा की घोषणा और यात्राएं कर रहा है जहां मंगल में यान भ्रमण कर रहे हैं, जहां वायुमडल में नाना प्रकार के यानों का वेधों (समय का माप विशेष यन्त्रों आदि की सहायता से नक्षत्रों और तारों आदि का देखना) से रमण हो रहा है, मानव को नष्ट करने के लिए नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण हो रहा है। आज के जगत् में मैं यौगिक घोषणा करने के लिए कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। परन्तु वह समय बहुत निकट आ रहा है जिस समय में समाज यौगिक बनने के लिए आ रहा है। वह समय जो आध्यात्मिकवाद की पिपासा के लिए प्रत्येक मानव पिपासु रहता है। आज मैं जब इस राष्ट्र को त्याग करके दूसरे राष्ट्रों के मानव की भावना पर विचार–विनिमय करने लगता हूं, तो उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि आज के जगत् में आध्यात्मिकवाद की बहुत ही आवश्यकता है। यह आध्यात्मिकवाद कैसे उन्नत होगा? इसके विषय में मैं अपना कुछ विचार देने आया हूं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में मुझे प्रकट कराते हुए कहा था कि यह संसार आध्यात्मिकवाद की वेदी पर आना चाहिए। परन्तु देखो, यह केवल घोषणा मात्र रह जाती है। आज मानव को घोषणा नहीं करनी चाहिए। मानव को, आध्यात्मिकवाद को अपनी क्रिया में लाने का प्रयास करना चाहिए। जब प्रत्येक मानव इस समाज में अहा! आध्यात्मिकवाद की बेला पर रमण करने लगेगा तो राष्ट्र और मानववाद ऊंचा बन सकता है।

मानव की उन्नति के लिए माताएं भोगवाद, श्रृंगार को त्यागें

आज के समाज में, आज के इस भौतिकवाद में जहां आहार और व्यवहार दोनों ही नष्ट होते जा रहे हैं वह समय ऐसा आता चला जा रहा है, जहां मानव की रसना के ऊपर बहुत ही विचार हो रहा है। रसना के ऊपर बहुत बल है। क्योंकि पदार्थों के ऊपर और रसना का जो स्वाद भोग है उस इन्द्रिय का मानव के ऊपर बहुत आधिपत्य हो गया है। आज जब मैं यह विचार में जाता हूं, मैं अपनी प्यारी माताओं के विचार में जाता हूं, जहां उनके विचारों में एक कृति का रमण होता रहता है, जब मैं यह विचारने लगता हूं माताएं कहां जा रही हैं, माता अपने श्रृंगार में कितनी तल्लीन हैं। देखो, अपने गर्भ से यहां राम और कृष्ण को जन्म दे करके यहां महर्षि गौतम और बुद्ध महात्मा कृति इत्यादि ऋषियों को जन्म देकर के इस पृथ्वी का उद्धार हो सकता है। आज की घोषणा केवल घोषणा मात्र ही मैं स्वीकार करता रहता हूं।

मन और प्राण की एकता आध्यात्म का साधन है

विचार यह है कि आज जब आध्यात्मिकवाद अनुपम वेदी पर विराजमान होने लगता है। आध्यात्मिकवाद कहते किसे हैं? सबसे प्रथम तो यही ज्ञान नहीं है मानव को कि **आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं?** आध्यात्मिकवाद वह बेला है, वह पदार्थ है, जिसको जानने के पश्चात् संसार में इस पृथ्वी की उड़ान ही नहीं, चन्द्रमा की उड़ान नहीं, मंगल की उड़ान, सर्व भूमण्डलों की उड़ान उड़ने के लिए तत्पर रहता है। आध्यात्मिकवाद वह वस्तु है जिसमें मानव एक श्रुति के अनुसार मन और प्राण की कल्पना एकाग्र करने मात्र से ही संसार की उड़ान में उड़ने लगता है। चन्द्र–मण्डलों में क्या? सूर्य–मण्डलों में क्या? वहां उसकी प्रतिभा एक ऐसी रमण करने लगती है जैसे माता के गर्भस्थल में बालक की रूचि उत्पन्न होती रहती है। इसी प्रकार जब हम और भी आगे जाना चाहते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है। जहां मैं राष्ट्रवाद की घोषणा करूं, जहां मैं मानववाद की घोषणा करूं। वहां ऐसा प्रतीत

होता है कि आज हम आध्यात्मिकवाद की बेला में रमण करना चाहते हैं। परन्तु आज मैं यह वाक्य अधिक उच्चारण करना नहीं चाहता हूं।

मानव अध्यात्मवाद से द्वेष की अग्नि को शांत करें

यज्ञ इत्यादि कर्मों में जब समाज एकता, अखण्डता की दृष्टि परिणित की जाती है। अपने मानवीय आचरणों को, मानवीयत को कोई भी मानव अपनी त्रुटियों के ऊपर पाखण्डवाद में दृष्टिपात नहीं करता। इस समाज का विनाश होने का जब समय आता है तब प्रायः ऐसे–ऐसे कर्म होने लगते हैं। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा, हे भगवन्! यह संसार कैसी अग्नि की वेदी पर विराजमान है। परन्तु भयंकर अग्नि राष्ट्रों में, समाज में उत्पन्न होती रहती है। परन्तु वह अग्नि अभी तक शांत नहीं हुई है जब वायुमण्डल के विचारों को, इन परमाणुओं को जब मेरे अन्तःकरण को यह परमाणु छूते हैं तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह जो राष्ट्रवाद की अग्नि है यह अभी तक शांत नहीं हुई है। इस अग्नि में देखो, एक भयंकर अग्नि और उत्पन्न होने जा रही है जिससे राष्ट्र महाकृतियों में रमण करने लगेगा। मैं आज कोई भविष्य की चर्चाएं प्रकट करने नहीं जा रहा हूं। विचार केवल यह देना है कि आज हम उस विचार को लाने के लिए सदैव तत्पर हो जाएं, जिससे मानवीय समाज आध्यात्मिकवादी बन करके इस भयंकर अग्नि को शांत करने का प्रयास कर सकें।

राष्ट्रवाद की समाप्ति पर रक्तभरी क्रांति होती हैं

आज का मानव, आज का समाज, आज की जो मानवीयता है वह किस दिशा को जा रही है? कौन सा उसने अपना विचार बनाया है? केवल देखो, दूषितवाद का विचार बनाया है, इस दूषित विचार के लिए, आज के समाज में यह कितनी त्रुटि है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने और मैंने बहुत पूर्वकाल में कहा है कि जब यहां राष्ट्रवाद की परम्परा समाप्त हो जाती है, राष्ट्रवाद की वेदियां नष्ट हो जाती हैं उस काल में प्रायः रक्तभरी क्रांति का संचार हो जाता है। यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था, कि यह समाज कैसे ऊंचा बनेगा? राष्ट्र में रक्तभरी क्रांतियां क्यों उत्पन्न होती हैं? परन्तु उन्होंने अपना विचार दिया कि आज जहां हमारी यह आकाशवाणी एक ऐसे मृतमण्डल में जा रही है जहां देखो, अथर्ववेद पारायण यज्ञ हो रहा है, जहां यज्ञ में आहुति दी जा रही हों, जहां यज्ञ की सुगन्धि वायुमण्डल को प्रभावित कर रही हो, जहां यह सुगन्धि अशुद्ध परमाणुओं को नष्ट करने जा रही हो।

मानव का कर्म–फल कितना विचित्र है?

यहां मैंने बहुत पूर्वकाल में यह कहा था कि यह पाण्डव स्थल की भूमि है। **यहां मैंने भी कई काल में तपस्याएं की हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने उस पुरातनकाल में भी कई काल में यज्ञ इत्यादि कराए। परन्तु न जाने उनका कौनसा ऐसा विशाल संकल्प है, ऐसा कौन सी विशाल परम्परा का विचार है यज्ञ के सम्बन्ध में जिस यज्ञ की प्रतिभा को ले करके पुरातन काल की आभाएं विराजमान हो जाती हैं।** मुझे एक स्थल में बड़ा कष्ट होता है, जब मुझे त्रेताकाल का, सतोयुग काल का स्मरण आता है। जब महाराजा अश्वपति के यहां वृष्टि यज्ञ हुआ तो महाराजा अश्वपति वृष्टि यज्ञ कराने के लिए इस अद्भुत आत्मा को भयंकर वनों में ६ माह तक प्रयास करने के पश्चात् ला सके। आदित्य ब्रह्मचारी यज्ञशाला में विराजमान हुए। विचार क्या है, कि मानव का जो कर्मफल है, वह कितना विचित्र है। वह कितना अद्भुत है कि मानव को कहां का कहां ले जाता है। यह कोई नहीं जान पाता। आज का मानव देखो, मैं यही विचार देने आया हूं।

इस वरणावत (बरनावा) की भूमि पर पाण्डवों का पुस्तकालय, महाराजा परिक्षित का न्यायालय, तथा श्वेत–श्वानित का शिवालय था

परन्तु जब मैं यज्ञ की वेदी पर अपने सूक्ष्म स्वरूप के द्वारा उस यज्ञ–स्थली पर विचार–विनिमय करने लगता हूं। जिस स्थली पर नाना प्रकार के यवनों द्वारा अपराध हुए हों, वहां ब्राह्मण, जहां मन्दिर के पुजारियों को, उनके नाना प्रकार के विभाग करके पृथ्वी में दमन कर दिए हों, वह भूमि, कैसी ''पुण्य ब्रह्मा अश्वतम्'' जहां यज्ञों के पारायण होते हों। जब मुझे यह वाक्य परम्परा का स्मरण आता है, जब यहां शिवालय था, यहां श्वेत–श्वानित नाम का एक वैश्य था, जिन्होंने शिवालय का निर्माण किया था। आज से पूर्व जब इसका निर्माण हुआ था उससे पूर्वकाल में यहां क्या था यह मैं कुछ सूक्ष्म रूप में वर्णन करने जा रहा हूं। उससे पूर्व यहां देखो, कुछ ''अप्रताम अश्वान'' था जो महाराजा कृतियों के समय में उसके कुछ विनाश को प्राप्त होते रहे। उससे पूर्व यहां कुछ

अवशेष खण्डहरों के थे। जहां साकृत रहता था। जहां महाराजा परिक्षित के न्यायालय के भी कुछ खण्डहरात थे। उनमें कुछ आकृति भी हो गई। वह दमन किए गए। इसके पश्चात् शिवालय बना। देखो, जिसको हम "भ्राहे आस्वात कूप" कहा करते हैं। इस कूप का भी उस समय निर्माण था।

महाराजा भीम तथा उनके पुत्र घटोत्कछ की विज्ञानशाला एवं निर्माणशाला थी

जब वहां भीम और उनके पुत्र घटोत्कछ की एक ऐसी सुन्दर निर्माणशाला थी, ऐसी विज्ञानशाला थी जहां **चन्द्रमा से ऊपर जो ग्रह आज भी उपग्रह भ्रमण कर रहे हैं,** वह देखो, यहीं इसी भूमि पर उनका निर्माण हुआ था। परन्तु देखो, वे दोनों पिता और पुत्र वैज्ञानिक रूपों से महाराजा व्यास के द्वारा, महाराजा प्रीति के द्वारा यहां नाना प्रकार की विज्ञानशाला में परमाणुवाद का निर्माण करते रहते थे। उसके पश्चात् यहां न्यायालय रहा। उसके पश्चात् यह भूमि मैंने कई काल में कहा है जो नदियां हैं यह नदी जहां आज अपना प्रवाह लिए हुए हैं यह नदी लगभग देखो, महाभारत के काल से देखो आज से ३५ॅ वर्ष पूर्व तक तीन कृति कोई आधा योजन की दूरी तक यह नदी अपना प्रवाह लिए हुये रहती थी। इस वरणावत भूमि क्षेत्र की लगभग देखो जैसा मैंने पूर्वकाल में कहा कि **यहां 22 लाख मानव वास करता था।** आज वह समय भूमि का कहां चला गया? मैं नहीं जानता। उस प्रभु की कैसी अद्भुत रचना है? इस सम्बन्ध में अधिक अपना विवेचन देना नहीं चाहता हूं।

लाक्षागृह पर यवनों का प्रकोप

विचार क्या है? क्या इस भूमि पर जहां लाक्षागृह का निर्माण हुआ हो। यहां क्या नहीं हुआ? यवनों ने क्या नहीं किया? यवनों ने यहां नाना प्रकार के जो मृत शव थे उनसे यहां श्मशान भूमि बना दिया। श्मशान भूमि उस काल में बनाया। देखो, "मरबुदीदम्" सरबुदीन एक यवन था। यहां लगभग 22 ब्राह्मण कन्याओं को, ब्रह्मकन्याओं को जिन्होंने अपनी भुजाओं से नष्ट करके यहीं उनका दमन कर दिया। तो आज वह सरबुदीन जिसे कहा जाता है आज उसको पूजा के योग्य यह समाज जब स्वीकार करने लगता है, तो मुझे बड़ा आन्तरिक कष्ट होता है। परन्तु मैं यह कहा करता हूं ऐसा जो वेद के विपरीत कर्म करने वाला हो, ऐसों को तो संसार में नष्ट करने के लिए मानवीय कृति प्राप्त होनी चाहिए। मैं इसलिए यह वाक्य द्वेष से प्रकट नहीं कर रहा हूं। विचार देना मेरा कर्त्तव्य है। संसार में क्या–क्या नहीं बनता। जहां श्मशान भूमि है जहां ब्रह्म कन्याओं की हत्या की जाती हो। यहां यवन काल में लगभग सवा मन जनेऊओं का भी देखो, प्रहार हुआ हो। मैं नहीं जानता वह ऐसी द्वेष की मात्रा क्यों बढ़ीं? राष्ट्र का बल रूढ़ि (क्षत्रिय) समाज में डूब जाता है तो उसका भयंकर रूप धारण हो जाता है।

इस भूमि के लिए गुरुदेव की अगाध श्रद्धा है

इसलिए देखो आज वही समय कितना प्रबल हो गया है, कितना विशाल रूप धारण कर गया है। विज्ञान का काल आ गया। मानव अपने जीवन में विचारने लगा, अहः! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का मृत लोक के शरीर का पूर्व का कोई ऐसा संस्कार भूमि के साथ में जुड़ा हुआ है। क्या जितनी हार्दिक श्रद्धा इनमें है मैं नहीं जानता वह श्रद्धा किसलिए अगाध है? कितना हृदय ग्राही रहता है।

यवनों का अत्याचार

उस समय इस कूप में पांच वैश्य कन्याओं को विषय करके इसी कूप में विराजमान कर दिया था। आज वह कूप कैसा वृत (रूप) धारण करने वाला है। मैं आज इसलिए इन वाक्यों को उच्चारण कर रहा हूं कि क्या जिस पृथ्वी पर श्मशान भूमि रह जाए वहां यज्ञवेदी, न्यायालय और गृह भी हो सकते हैं? शिक्षालय भी हो सकते हैं? जहां दुरुपयोग किया जाता हो, जहां एक दूसरे को नष्ट करने की भावना हो, वहां देखो कोई समय भी आता है जब उस भूमि पर यज्ञ सुगन्धि भी होती है। जहां विचारों की दुर्गन्धि विराजमान हो करके केवल अशुद्ध विचार ही प्रदान किए जाते हों वहां विचारों की दुर्गन्धि और कर्म की दुर्गन्धि जहां दोनों ही रहती हों, वहां आज परिवर्तन करके देखो सुगन्धि ही सुगन्धि होने लगती है। कैसा–कैसा प्रभु का यह जगत् है? कैसी प्रभु के जगत् की प्रतिभा है, कैसा यह जगत् परिवर्तनशील है? कैसा यह जगत एक मानवीयता से सुगठित रहता है?

मूर्खों के राज्य में दुराचार पनपता है अब उस भूमि को यज्ञों द्वारा पवित्र किया जा रहा है

परन्तु मैं इसलिए यह वाक्य उच्चारण कर रहा हूं कि जो किसी राष्ट्र से दूसरा राष्ट्र बना करता है कोई दूसरे राष्ट्र से कोई धर्म आता है उसको धर्म नहीं कहते। मैंने बहुत पूर्वकाल में कहा कि मोहम्मद को मैं महात्मा नहीं कहा करता हूं। क्योंकि उसमें महात्मा के कोई गुण नहीं थे। आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूं। क्या

मूर्खों का जब समाज एकत्रित होता है तो मूर्खों की जहां शिक्षा नहीं होती दीक्षा नहीं होती, मूर्खों का समाज केवल दुराचार ही करता है। वह माताओं के श्रृंगार को नष्ट करता है। क्योंकि माताओं के श्रृंगार को भ्रष्ट इसलिए करता है, क्योंकि उसमें शिक्षा की सूक्ष्मता होती है। **जहां शिक्षा नहीं होती वहां विचार भी नहीं होता और जहां विचार नहीं होता वहां विवेक भी नहीं होता और जहां विवेक नहीं होता वहां पाप और पुण्य की मानव को जानकारी भी नहीं होती।** इसलिए आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूं कि सबसे प्रथम जो धर्मज्ञ थे उन्होंने शिक्षा के लिए कहा। परन्तु उनके अनुयायियों के मन में क्या था? केवल घृणा के आधार पर, बौद्धिक घृणा के आधार पर जो रूढ़ि बनती है रूढ़ि के साथ में राष्ट्र को अपनाया जाता है। उस राष्ट्र की मानवीय सम्पति समाप्त हो जाती है। इसीलिए आज मैं यह वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूं कि हमें आज करना क्या है? विचारना क्या है? प्रत्येक मानव को आभा के सहित विचारना है। परन्तु मैं इस प्रभु की रचना को इस मानवीय जगत् को दृष्टिपात करके हृदय बहुत मग्न होता है। मैं प्रभु का धन्यवाद देता हुआ यह कहा करता हूं। हे प्रभु! तेरी यह विचित्रता कैसी है? तेरा यह राष्ट्र कैसा है? जहां मानव मानव को नष्ट करने के लिए तत्पर रहता हो जहां दुराचार की मात्राएं हों, वहां प्रभु यज्ञ रचा देता है। जहां मानव की धर्म के आंगन में आहुति दी जाती हो जहां दुराचार करके कन्याओं के श्रृंगार को भ्रष्ट किया जाता हो, वहां प्रभु सुगन्धि रचा देता है। यह कैसी प्रभु की विचित्रता है? इस विचित्रता को जानना चाहिए। आज इसलिए मेरा अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न रहता है बहुत आनन्दित होता है जब मैं इस संसार की, इस जगत् की महत्ता पर विचारने लगता हूं तो उस शिवालय का पुनः उद्धार कैसे होता है?

दृढ़ संकल्प से रूढ़िवाद का नाश तथा राष्ट्र का निर्माण होता है

समय—समय पर जब मानव में दृढ़ता और साहस होता है, संकल्प होता है तब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के कथनानुसार राष्ट्र राष्ट्र नहीं रहता रूढ़ि रूढ़ि नहीं रहती। समाज में एक महत्ता का दिग्दर्शन हो जाता है। आज मैं यह उच्चारण कर रहा हूं कि मैंने इस समाज को, मैंने इस राष्ट्र को दृष्टिपात किया जहां देखो कन्याओं के और पुत्रिओं के श्रृंगार को भ्रष्ट किया जाता था। आज उस स्थली को दृष्टिपात करके मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न होता है। क्यों होता है? क्योंकि नाना प्रकार की आपत्ति आने के पश्चात् मानव मानव बना करता है। क्योंकि बिना आपत्ति के मानव कदापि मानव नहीं बनता। इसीलिए मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का परम्परा से नाना प्रकार की आपत्ति का संघर्षमय जीवन रहा है। यह आज कोई नवीन वाक्य नहीं कि इन्होंने संसार में इस आत्मा ने पुनः जन्म ले लिया। परन्तु देखो, यह कोई आपत्ति नहीं है। पुरातन काल में नाना प्रकार के राष्ट्रों में नाना प्रकार के यज्ञों में संघर्ष चलता रहता था। महर्षि भारद्वाज के यहां एक समय ज्ञान की वेदी पर वृष्टि यज्ञ के सम्बन्ध में विशाल संघर्ष हुआ। अन्त में देखो, विजय की प्राप्ती हुई। परन्तु देखो, यहां नाना प्रकार की रूढ़ियों में आकर के नाना प्रकार की आपत्ति आने के पश्चात् भी संसार में पुष्प आते हैं। अहा! पुष्प किस काल में आते हैं। नाना प्रकार के कांटे होते हैं। परन्तु उन कांटों में ही एक पुष्प की उत्पत्ति हो जाती है। उस पुष्प में प्रभु की विचित्रता का दिग्दर्शन होता है। इसलिए आज जो मैं अपने विचार दे रहा हूं। विचार देने का अभिप्राय यही है कि आज हमें उस वेदी पर जाने का प्रयास करना चाहिए जिस वेदी पर यहां अत्याचारों की प्रतिभा हुई हो नाना प्रकार की आपत्तियां आती हों परन्तु वहां सुगन्धि ही सुगन्धि होती है तो वहां मेरा अन्तरात्मा कितना प्रसन्न होता है।

लगभग ॐ वर्ष पूर्व यवनों ने एक ब्राह्मण को गौ—रक्त पिला कर उसका वध किया था

यहां मुझे स्मरण है आज से लगभग 200 वर्ष भी नहीं हुए लगभग 100 वर्ष हुए यहां एक ब्राह्मण आ गया। उस ब्राह्मण ने यवनों से यहां जल की याचना की उसे क्षुधा लग रही थी। उसके मुखारविन्द से किन्हीं यवनों के पुत्रों के सामने कटु शब्दों का प्रयोग हो गया। कटु शब्दों का प्रयोग होने पर शस्त्र भय दिखाकर गऊ के रक्त का उसे पान कराया। मृत्यु के मुखारविन्द में परिणित कर दिया परन्तु उसी भूमि पर अन्य प्रवाह चलते रहे तो यह कैसी प्रभु की विचित्रता है? जहां वैज्ञानिक रहते हों, जहां घटोत्कच्छ तथा भीम वैज्ञानिक, जिनकी चन्द्र और मंगल तक की उड़ान रहती हों जहां शिवालयों में सुगन्धि होती हो, उसी भूमि पर ऐसे—ऐसे रक्तों के प्रहार होते हों उसके पश्चात् पुनः से वह सुगन्धि आ जाए तो यह प्रभु की ही विचित्रता है। यह तो प्रभु का जगत् है जहां श्मशान है वहां सुगन्धि है जहां सुगन्धि है वहां कल को श्मशान भी हो सकता है। मैं इसलिए वाक्य प्रकट कर

रहा हूं कि अपना जो उद्गार है मैं अपने विचार स्पष्ट रूपों से इसलिए प्रकट करना चाह रहा हूं कि जब हम यह विचारते हैं कि आज हमें अपने जीवन की प्रतिभा को लाना है।

यहां गुरु द्रोणाचार्य का धनुर्विद्या की शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था

मैं उस भूमि पर भी दृष्टिपात करता हूं **जहां व्यास जी ने और जैमिनी जी ने वेदों के यज्ञों की प्रतिभा और घोषणा की हो।** यहां यज्ञ होते, सुगन्धियां होती, महत्ता का दिग्दर्शन होता परन्तु मैं यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूं कि समाज को यह जानकारी हो जाए। इस भूमि पर जहां यह यज्ञ होता है अरे! यहीं गऊओं के रक्त का संचार भी होता रहता था। यहां जहां यज्ञ होता है यहां विज्ञानशालाएं भी रहीं परन्तु देखो यहां क्या–क्या होता रहा? मैं विस्तार देना नहीं चाहता। यह तो समाज है, जगत् है, इसी प्रकार चलता रहता है। परिवर्तनशील यह जगत् है जो राजा है वह कल को संन्यासी बन सकता है जो संन्यास में जा सकता है। इसी प्रकार यह जगत् चलता रहता है। जगत् का प्रवाह परम्परा से चला हुआ है। यह आज कोई नवीन नहीं है।

परन्तु यहां मैं समाज से यह चाहता रहता हूं कि यहां पुरातन की सुन्दर शिक्षाएं प्रदान की थीं। वह समय मुझे भलीभांति स्मरण है जिस समय पितामह भीष्म ने अपने पाण्डु पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिए, द्रोणाचार्य के लिए स्थल बनाया था वह वारणावतपुरी एक शिक्षा क्षेत्र था। जहां धनुर्विद्या का पारायण और केन्द्र रहा था। उस काल में मुझे वह समय भलीभांति स्मरण है। इसीलिए मैं यह चाहता हूं कि समाज में ऐसी एक महान् क्रान्ति आनी चाहिए जिससे यहां पुनः से अस्त्रों–शस्त्रों का एक केन्द्र होना चाहिए। परन्तु जिससे यहां पुरातन द्रोणाचार्य जैसे बुद्धिमान, यहां पुनः से अस्त्रों–शस्त्रों की शिक्षा का एक केन्द्र बने। महाराज द्रोणाचार्य के द्वारा कौनसा राष्ट्र ऐसा था जो उनसे शिक्षा पान नहीं करता था। यह वही स्थली है, वही भूमि है जो खण्डित हो करके इस नदी के प्रवाह में कुछ समाप्त हो गई। आवास सहित समाप्त हो गए। परन्तु आज मैं पुनः उसकी जानकारी करा रहा हूं। जहां कर्ण अर्जुन जैसे बलिष्ठ यहां नाना प्रकार की अस्त्र–शस्त्र विद्या का अध्ययन करते थे और वह अध्ययनशाला इसी वारणावत क्षेत्र में ही थी। उसके पश्चात् यहां लाक्षागृह बनाया। उसमें क्या–क्या हुआ यह मुझे समय मिलेगा तो कल चर्चाएं करूंगा।

अब मुझे अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाने का भी समय आ गया है। मैं अधिक अपना विचार देना नहीं चाहता हूं। विचार केवल यह कि आज यज्ञ होना चाहिए और यज्ञों का कर्मकाण्ड भी विचित्र होना चाहिए। सुगन्धि होनी चाहिए। परन्तु सुगन्धि भी ऐसी सुगन्धि हो जो राष्ट्र और दूसरे राष्ट्रों तक जानी चाहिए। मैं यह चाहता रहता हूं यह सुगन्धि विचारों की सुगन्धि, सामग्री और धृत की सुगन्धि अग्नि को दूत बना करके देवताओं को प्रभावित करने वाली हो। इसलिए मैं शेष वार्त्ताओं में सें कुछ कल प्रकट करूंगा।

हिंसा को त्यागकर सत्य का आश्रय लेकर दृढ़ता और साहस के साथ विचारों की क्रांति होनी चाहिए

अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। यह संसार आध्यात्मिकवाद चाहता है। आध्यात्मिकवाद उस काल में बनेगा जब अपनी परम्परा को अपनाने का प्रयास करोगे। परम्परा उस काल में अपनायी जाती है जबकि मानव में दृढ़ता और साहस होगा, जब मानवीयता की विचित्रता इस संसार में रमण करती रहेगी। इस लाक्षागृह के बहुत पुरातनकाल से ही मैं इसकी विचित्रता को दृष्टिपात करता आया हूं। इस पर कुछ सूक्ष्म तपस्याएं भी की हैं। परन्तु यहां क्या–क्या नहीं हुआ। यह सर्वत्र यहां श्मशान भूमि भी रही। यहां नाना प्रकार मेरी पुत्रियों के श्रृंगार को भी भ्रष्ट किया गया। यहां पुनः सुगन्धि भी आ गई। परन्तु इसका और भी पुनरुद्वार होना चाहिए। यह मानव में एक साहस और दृढ़ता समाज में एक महान् क्रांति होनी चाहिए। इसीलिए वह क्रांति सत्य हो और हिंसा को त्याग करके होनी चाहिए। अहिंसा की क्रांति होगी तो हम संसार में सफल होंगे। हिंसक क्रांति द्वारा मानव को सफलता प्राप्त नहीं होगी। इसीलिए आज का यह वाक्य समाप्त। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद–गुरूदेव

आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना एक ओजस्वी उपदेश दिया। परन्तु वह उपदेश क्या था एक साहित्य इतिहास था और साहित्य चर्चाओं में मुझे भी कुछ कटुता तो प्रतीत हुई। परन्तु वह प्रायः सत्य है। परन्तु सत्यता के साथ में कटुता का प्रतिपादन प्रिय नहीं होता। परन्तु जैसा इन्होंने कहा दृष्टिपात किया, इनके हृदय में

विडम्बना सन्ताप है। इन्होंने जो कहा उसमें मैं बाधक नहीं बनूंगा। **विचार यह कि हम उस यौगिकता को अपनाने का प्रयास करें, सत्यता को अपनाएं, अशुद्धता को त्यागें।** यही ऋषि–मुनियों का आदेश रहता है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी अपना विचार और देंगे। कुछ विचार इनके प्रिय लगे। आज का यह विचार अब समाप्त होने जा रहा है अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : २३–फरवरी–१९७२
समय : दोपहर ३ बजे
स्थान : लाखा मंडप, बरनावा।

१५. अष्टांग योग का अनुष्ठान १७ मार्च १९७२

जीते रहो!

देखो, मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परमपरागतो से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी में उस परमपिता–परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह जो परमपिता–परमात्मा है वह ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है। जितना भी यह जगत् है वह सर्वत्र जगत् एक विज्ञानशाला के रूप में दृष्टिपात आने लगता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! जब हम यह विचार विनियम करने लगते हैं कि यह परमपिता परमात्मा की सुन्दर विज्ञानशाला है। तो इस विज्ञानशाला के सम्बन्ध में प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि उस विज्ञानशाला में विराजमान होकर के विज्ञानवेत्ता बनने के लिए तत्पर हो जाए। क्योंकि हमारे यहाँ यह जो माँ वसुन्धरा है, जिसके गर्भ में यह संसार वशीभूत हो रहा है, यह माँ क्या है ? बेटा ! माँ उसे कहते हैं जिसमें ममता होती है। ममता क्या है ? जो हमें अनुपमता प्रदान करने वाली है। वह अनुपमता एक महान् ज्योति है। जैसा हमने कल के वाक्यों में कहा इसमें पूर्व शब्दों में कहा गया कि वह जो अखण्ड ज्योति है जिस ज्योति के प्रकाश में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक ऋषिमण्डल उसी की ज्योति में ज्योतिष्मान हो रहा है।

ज्ञान–विज्ञानरूपी घृत से आध्यात्मिक ज्योति को जगाकर आत्मिक बल को पा

वह जो अखण्ड ज्योति है, उसको हमें जागरूक करना चाहिए। उस ज्योति को हमें शान्त नहीं रहने देना चाहिए। परन्तु ज्योति में घृत देना हमारा कर्त्तव्य है। उस आध्यात्मिक ज्योति का घृत क्या है ? मेरे प्यारे ऋषिवर ! उस **आध्यात्मिक ज्योति का जो घृत है वह ज्ञान है, विज्ञान है क्योंकि ज्ञान और विज्ञान से मानव का आत्मबल बलिष्ठ होता है।** जैसे लोक में ज्योति जग रही है उस ज्योति में जब तक घृत रहता है उसमें ज्योति जागरूक रहती है, ज्योति प्रदीप्त रहती है और उसको ज्योति कहते हैं। परन्तु जब वह घृत नहीं रहता तो कहते हैं ''ज्योति शान्त हो गई।'' इसी प्रकार बेटा, यदि हमारे मानव जीवन में आध्यात्मिकवाद नहीं है, दैवी शक्ति नहीं है, तो मुनिवरो ! जब यह नहीं रहेगी, तो हमारा आत्मबल नहीं रहेगा। तो उसको प्रायः प्राणी कहते हैं कि इसके द्वारा आत्मबल नहीं है। इसका आत्मबल शान्त हो गया है, क्योंकि इसमें दोष आ गए हैं। इतनी विडम्बना (छलना) आ गई है कि वह ज्योति शान्त हो गई है। तो हमें उस ज्योति को जागरूक करना है।

आत्मिक–बल की प्राप्ति के लिए निष्ठा के साथ अनुष्ठान करो

इस लोक की ज्योति सूर्य की ज्योति, प्रातःकाल से सांयकाल तक रहती है परन्तु किसी भी काल में शान्त नहीं होती। इसी प्रकार हमें उस ज्योति को जागरूक करना चाहिए। मेरे प्यारे ऋषिवर, हमारे ऋषि–मुनि पूर्व काल में अनुष्ठान करते रहते थे हमारे यहाँ आध्यात्मिक बल को बलिष्ठ करने के लिए प्रायः अनुष्ठान होते हैं। अनुष्ठानों का अभिप्राय यह है कि हमारा जो मानवीय जीवन है, हमारी जो मानवीय धारा है वह इतनी निष्ठावान होनी चाहिए, उसमें दृढ़ता होनी चाहिए इतना उसमें प्रकाश होना चहिए जिससे वह संसार में एक आध्यात्मिकवेत्ता बन करके ज्ञान और विज्ञानमयी ज्योति को जानता हुआ इस संसार–सागर से पार होने का

प्रयास करता रहे। मैंने कल के वाक्यों में कहा था कि माता को तो हमें अपने को समर्पित कर ही देना है। जो संसार में माँ के लिए अपने को समर्पित नहीं कर सकता वह संसार में कोई मानव नहीं, न वह माता का पुत्र ही होता है।

ममतामयी माता के समान परमपिता परमात्मा है, अपने को उसी को समर्पित कर

मेरे प्यारे ऋषिवर ! विचारना यह है कि वह माँ कौन है? जिसको हमें अपने को समर्पित कर देना है। जब मुनिवरों! देखो, माता का प्रिय बालक होता है तो माता के आधीन माता के संरक्षण में रहने वाला होता है। उस समय जब बालक क्षुधा से पीड़ित होता है तो माता को अपने को समर्पित कर देता है। माता उसे अपने हृदय में धारण करके उसकी उदर की पूर्ति कर देती है। वह उदर की पूर्ति करने वाली ममतामयी माँ है, उससे वह बालक प्रसन्न रहता है, माता भी अत्यन्त प्रसन्न हो जाती है। इसी प्रकार जो हमारी माँ है जो चेतन्य है ज्योतिष्मान है उसे हमें जैसे वाल्यकाल में बालक माता के समीप रहता है, अपने को युवाकाल में समर्पित कर देना चाहिए। वह जो परमपिता परमात्मा आनन्दमय रहने वाला है। उसको वेदों ने ममतामय कहा है, माता के रूपों में परिणित किया है। तो मुनिवरो ! उसे अपने को समर्पित कर देना चाहिए। जो मानव इस संसार में प्रभु के समर्पित होना चाहता है वह मानव संसार में सौभाग्यशाली होता है और उस माँ की जो चेतना है जो संसार को चेतनित बनाने वाली है, जिसके गर्भ से इस संसार का जन्म होता है उस माता की वहाँ उपासना करनी चाहिए।

मानव नवरात्र में अपने शरीर (अयोध्या) के नवद्वारों (नव इन्द्रियों) पर विचार करें

जिस माता के द्वार पर मानव शरीर का निर्माण होना है। इसको हमारे यहाँ नौ घृति (मानव शरीर) कहा गया है। मेरे प्यारे! ऋषिवर हमारे यहाँ नौ रात्रियों का बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। वैदिक साहित्य में ही नहीं परन्तु ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में भी इसकी बड़ी प्रशंसा आई है। और वह प्रशंसा क्या है? नौ द्वारों में जो अज्ञानता के कारण अन्धकार छा गया है मानव को अनुष्ठान करते हुए एक–एक रात्रि में बेटा ! एक–एक इन्द्रिय के ऊपर विचारना, द्वारों के ऊपर विचारना कर्त्तव्य है और किस–किस प्रकार की आभाएं है? उनको विचार विनिमय करना उन नौ द्वारों के विज्ञान को जानना, मुनिवरों! देखो, उसका नाम नौ रात्र कहलाया गया है।

जागृत आत्मा ही प्रभु के राष्ट्र में जाता है

रात्रि का अभिप्राय है कि यह जो अन्धकार है, अन्धकार से जो प्रकाश में लाने वाला हो उसी को बेटा ! जागरण कहा गया है। जागरण का अभिप्राय यह है जो मानव जागरूक रहता है उसके यहाँ रात्रि कोई वस्तु नहीं होती। क्योकि रात्रि उनके लिए होती है जो जागरूक नहीं रहते। जो आत्मा से जागरूक हो जाते हैं, वह प्रभु के राष्ट्र में चले जाते हैं।

जो मानव नवरात्र में जागृत (सचेत) नहीं रहते उनको ही अन्धकारमय माता के गर्भ में जाना पड़ता है

मुनिवरों ! देखो, वह उन नौ रात्रियों में नहीं जाते। वह जो नौ माह है जो माता के गर्भस्थल में जाना होता है वह नौ रात्रि के रूपों में परिणित होते हैं। क्योंकि गर्भ में उसे जाना नहीं होता। वह गर्भ कैसा अन्धकार है? जहाँ बेटा ! देखो, रुद्र रमण कर रहा है। जहाँ मल और मूत्र की मलीनता है, वहाँ धाराएँ नाना रूपों में रमण कर रही है। उसमें एक आत्मा वास करता है, शरीर का निर्माण कराता है। अरे ! कैसा अन्धकार है। अभिप्राय यह कि जो मानव नौ द्वारों से कैसा जागरूक रहता है µ जागरूक का अभिप्राय यह कि किसी भी द्वार से हमें अशुद्धता की रूप रेखा नहीं बनानी है वह नौ माह के उस अन्धकार में नहीं जाता जहाँ मानव का महाकष्टमय जीवन है।

मातास्वरूप परमपिता के प्रकाशमय गर्भ में जाने के पश्चात् सांसारिक माता के अन्धकारमय गर्भ से बचा जा सकता है

मेरे प्यारे ऋषिवर ! आचार्यों ने कहा–उस द्वार से माता के गर्भ में जाना न हो, वह जो बड़ा भयंकर अन्धकार है। कैसा अन्धकार है वहाँ न तो अपना विचार विनिमय कर सकता है, न अनुसन्धान कर सकता है, न विज्ञान में जा सकता है। परन्तु वहाँ अन्धकार ही अन्घकार रहता है आओ, मेरे प्यारे, हम उस माँ के गर्भ में जाने का प्रयास करें। जिसके गर्भ में जाने से रात्रि कोई वस्तु नहीं होती। रात्रि क्या है ? रात्रि नाम अन्धकार का है। इसीलिए इस अन्धकार को नष्ट करने के लिए ऋषि–मुनियों ने अपना अनुष्ठान किया। गृह आश्रमवेत्ताओं से कहा, हे गृह आश्रम में रहने वाले पति–पत्नी ! तुम वास्तव में अपने जीवन में अनुष्ठान करो। कैसा अनुष्ठान करो? दैवीमय करो! दैवी यज्ञ का अभिप्राय यह है "दैविक ज्योति को जागरूक करो।" दैविक ज्योति का

अभिप्राय यह है कि जो दैविक ज्ञान देवताओं का ज्ञान है, विज्ञान है, उसे अपने में भरण करने के लिए उत्सुक हो जाओ। वही तो तुम्हारी एक आनन्दमयी ज्योति है। जिसको जानने के लिए हमारे यहाँ ऋषि–मुनियों ने बहुत ही प्रयत्न किया तथा प्रयत्नशील होते रहे हैं। इस आत्मिक अग्नि को, इस दैविकता को जान करके आज तुम द्युलोक में जाने की उत्सुकता करो, जाने वाले बनो।

प्रकाशमय द्युलोक की अग्नि पर आरूढ़ होकर शब्द भी द्युलोक में रमण करता है

मुनिवरों ! द्युलोक क्या है? जहाँ अग्नि की ज्योति जागरूक हो रही है। हमारे यहाँ ऋषि–मुनियों ने ऐसा कहा है कि यह जो अखंड–ज्योति जागरूक हो रही है अग्निमयी ज्योति है इसकी वह सप्ता जिव्हे कहलाती है। और एक–एक जिव्हा में से एक–एक सहस्र जिव्हाओं का जन्म होता है और एक–एक सहस्त्र जिव्हाओं में से लगभग 99–99 धाराओं का जन्म होता है। और वह जो 99वीं धारा है उसमें से एक–एक सहस्र धाराओं का जन्म होता है। मुनिवरों ! इसीलिए तो इस अगिन के ऊपर इस ज्योति के ऊपर जब शब्द विराजमान होता है तो इसकी भयंकर गति बन जाती है। वह द्युलोक में रमण करने वाला बनता है।

मानव द्यु–लोक की ज्योति को जाने और आत्म–ज्योति को जानकर विशाल ज्योतिष्मान बन जाता है

ऋषि कहते हैं कि शब्दों का वाहन क्या है ? शब्दों का जो वाहन है वह यह अग्नि है, ज्योति है जिसे विद्युत कहा गया है। मुनिवरो ! देखों, एक क्षण समय में एक शब्द उच्चारण किया जाता है। उसका जो वाहन है वह अग्नि है, ज्योति है।वह एक क्षण समय में एक बार पृथ्वी की परिक्रमा करा देती है इतना भंयकर इस ज्योति का प्रभाव है संसार में। परन्तु इस ज्योति को जानना चाहिए। जो नहीं जानता वह धर्मज्ञ अपनी आत्म–ज्योति को जाने। आत्म–ज्योति को जान लेता है विशाल ज्योतिष्मान बन जाना है।

मानव द्वारा किए गए यज्ञों का घृत ही सूक्ष्म रूप होकर द्युलोक में रमण करता है वह सूक्ष्म रूप घृत ही द्यु–लोक का घृत है

मेरे प्यारे ऋषिवर ! इतनी धाराऐं सब द्युमण्डल में समाहित रहती है। विचारा जाता है जो द्युमण्डल में वह विद्युत जागरूक हो रही है, नाना रूपों से ज्योति जग रही है। जिस प्रकार बेटा ! लोक में अग्नि और ज्योति में घृत का प्रसार किया जाता है तब ज्योति जागरूक रहती है इसी प्रकार आध्यत्मिकवेत्ताओं ने कहा है कि आत्मा की ज्योति जब तक जागरूक रहेगी तब तक ज्ञान और विज्ञानरूपी घृत है। परन्तुयह जो द्युलोक में अग्नि प्रदीप्त हो रही है, अरे ! इसका घृत क्या है? इसको भी तो हमें जानना है। बेटा ! द्यु–लोक में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है इसका जो घृत है यह जो सूक्ष्म रूपों सें यज्ञ किए जाते हैं अथवा ज्योति जागरूक की जाती है इस स्थूल का जो सूक्ष्म रूपान्तर हो जाता है और सूक्ष्मरूपान्तर का और भी सूक्ष्म रूपान्तर करके उसकी जो विचरणता है उस घृत का सुक्ष्म रूप बन करके द्युलोक में प्रसारित हो गया। वह जो द्युलोक में ज्योति जागरूक हो रही है अरे ! वही घृत कार्य करता है जो घृत का सूक्ष्म रूप बन करके इस लोक में से जाता है, स्थूल अग्नि से जाता है वह सूक्ष्म रूप बन करके सूक्ष्मता को प्राप्त हो जाता है।

नाना रूपों वाली प्रकृति ही को दुर्गा, माँ काली, माँ वैष्णवी आदि नामों से कहा गया है

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं आध्यात्मिकवाद में अथवा इस सूक्ष्म रहस्य में नही जाना चाहता हूँ। विचार विनिमय यह करना है कि हमें ममतामयी माँ की गोद में जाना है। कौन–सी माँ है? जिसको हमारे यहाँ 'दुर्गे' कहा गया है, जिसको हमारे यहाँ 'माँ काली' कहते हैं, जिसको माँ 'वैष्णवी' कहा जाता है। हमें उस माँ की गोद में जाना है। 'माँ दुर्गे प्रवे' मुनिवरो ! देखो, हमारे यहाँ योगिनी बन करके रहने वाली यह माँ दुर्गा कहलाई गई है। यह जो प्रकृति है जो नाना प्रकार के आवेशों वाली है इसको भी देवी कहा गया है ? यह कैसी देवी है ? यह कैसी वसुन्धरा है ? कैसी माँ है ? जो हमें देती है। मुनिवरो ! यह जो प्रकृति है इसी के द्वार से मानव के स्थूल रूप को जो भोजन है, स्थूल रूप की जो प्रवृत्तियाँ है वह इस प्रकृति से हमें प्राप्त होती रहती हैं। इसीलिए हमें इस प्रकृति को जानना चाहिए। जो प्रकृति के नाना प्रकार के रूपों में परिणित हो रही है। मुनिवरो ! जैसे माँ है, मेरी पवित्र माताएं हैं वे कितने रूपों में परिणित हो रही हैं। कहीं ब्रह्मचारिणी रूप में हैं। कहीं देवी रूपों में हैं, कहीं माँ के रूप में हैं। इसी प्रकार यह जो माँ प्रकृति है, यह नाना प्रकार के रूपों में मानव को दृष्टिपात आती रहती है। कहीं पृथ्वी के रूपों में है तो कहीं खनिज के रूपों में है, कहीं खाद्य के रूपों में है। कहीं शक्ति के रूपों में परिणित हो रही हैं। आज हमें इसी माँ दुर्गा की प्रकृति को जानना है। यह कैसी प्रकृति है।

मानव का मन प्रकृति की सबसे सूक्ष्म वस्तु है। मन की प्रवृत्तियों के संयम से आत्मा के लोक में गमन कर सकता है

जब मानव प्रकृति से प्रवृत्तियों पर आ जाता है। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है, एक अशुद्ध प्रवृत्ति होती एक शुद्ध प्रवृत्ति होती है। जब प्रकृति की उपासना अथवा विज्ञान में चले जाते हैं तो शुद्ध प्रवृत्ति बनी रहती है मानव की। इसी प्रकृति का जब हम रूपान्तर में ध्यान करके अशुद्ध कल्पना करने लगते हैं तो मुनिवरो। वह जो प्रकृति का एक विचार है, जो धाराएं हैं जो तरंगें है वही प्रवृत्ति है। उन प्रविृत्तियों पर मन के द्वार से मन से संयम करना चाहिए। क्योंकि मन जो है, यह माता वसुन्धरा की सबसे सूक्ष्म देन है इस मानव को; क्योंकि सबसे सूक्ष्म संसार का यदि कोई तत्व है तो वह मन कहलाया गया है। जो इतना गतिमान है। इसीलिए उस माता को हमें समर्पित करना है जो माता प्रकृति है। इस मन को जानने वाला मानव इस प्रकृति के गर्भ को जान लेता है। एक—एक कण को जान लेता है और इसके ऊपर योगी का आत्मा जब विश्राम करता है तो उस समय वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का भ्रमण कर लेता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! विचारा यह जाता है। यह जो मन है यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्मतम तत्व माना गया है। आज हमें इस तत्व को जानना है, इस तत्व के ऊपर जाना है। इसीलिए मन कहीं का कहीं रमण करता है, वह समुद्र की तरंगों में रमण करता है, और सूर्य की आभा में रमण करने वाला है, गन्धर्व लोकों में जाने वाला है और मुनिवरों ! इन्द्र लोकों में यह गति करता है और निकृष्ट से निकृष्ट भी गति करने लगता है। प्रवृत्तियों पर जब संयम हो जाता है उन प्रवृत्तियों को अपना वाहन बना करके वह आत्मा के लोक में चला जाता है। यही मन है जो प्रकृति के रूपों में आत्मा के लोक में चला जाता है वहाँ भी वह मिलकर के प्राण और मन का संचार होकर के वह जो दैवी सम्पदा है दैवी जो विचारधारा है इनको वाहन बना लिया जाता है।

संयमशील आत्मा को ही दुर्गा, महालक्ष्मी कहा गया है

मुनिवरों ! देखों, जो बक्रासुर है, महिषासुर है, महिषासुर— मर्दनी कहा जाता है दुर्गे को, महिषासुर क्या है ? यह जो मन है, जो विद्या है इसको वह दुर्गा कहा गया है। इसी विद्या के द्वार से यह जो ब्रह्म विद्या है, ब्रह्मग्नि है, ब्रह्मवेदना है उस वेदना के आ जाने पर वह महान् वह महिषासुर मर्दनी है। महिषासुर कौन है? महिषासुर मुनिवरों! देखों, ये जो अशुद्ध प्रवृत्तियाँ है, यह जो मन है इस मन के ऊपर संयम किया जाता है। इसी ज्ञान और विवेक के द्वारा, इसी ब्रह्मविद्या के द्वारा, इसी माँ दुर्गा की शरण में जाने से यह सर्वत्र प्राप्त होने के पश्चात् यह जो महिषासुर बना हुआ है, महिषासुर को वध करके यह सिंह पर सवार हो जाते हैं। इसका वाहन सिंह बन जाता है। सिंह क्या है ? यह प्राणों के ऊपर आत्मा—चेतना जब विश्राम करने लगती है यह जो महिषासुर है यह मृतक हो करके इस प्राण में लय हो जाता है। देखो, उस समय जो आत्मा की जो ज्योति है, वह जो ज्ञान है, विज्ञान है, वह जो महालक्ष्मी जिसको दुर्गा कहते हैं उस आत्मा का नाम दुर्गेवेति प्रकाशमयी कहा गया है। यह प्राण पर सवार हो करके अपने प्यारे प्रभु सखा को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए उसको महिषासुर मर्दन कहा गया है।

प्रकृति के विज्ञान को जानकर संयमी आत्मा उच्चता को प्राप्त कर लेता है

प्यारे ऋषिवर ! देखो इसको कहीं ब्रह्मचारिणी कहते हैं कहीं इसको सुहागिनी कहते हैं, कहीं सत्रक्षी कहते हैं, कहीं वैष्णवी कहा जाता है, कहीं इसको मुनिवरो! इससे भी विचित्रित कहा गया है। इसको नाना प्रकार के रूपों में दृष्टिपात किया जाता है। तो बेटा ! जो संसार में इस प्रकृति को दृष्टिपात करना चाहता है वह नाना प्रकार के रूपों में दृष्टिपात कर सकता है। कहीं खाद्य तो कहीं खनिज है। खनिज भी कितनी प्रकार का है। खाद्य भी कितने प्रकार हैं। जिस प्रकार की उस माता की उपासना की जाती है, उस ज्ञान को जाना जाता है, उस विज्ञान में पहुंचना होता है उस समय मानव अपने जीवन में उच्चता को प्राप्त हो जाता है।

चैत्र के नवरात्र में प्रतिपदा से लेकर अष्टमी तक पृथ्वी पर प्रकृति की गति शान्त रहती है

मुझे महाराज अश्वपति के यहाँ राजपुरोहित रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। यह जो 'चैत्र अग्रतम्' चैत्र का मध्यम भाग है इसमें प्रायः अनुष्ठान किए जाते हैं। यह परम्परा से राजा महाराजाओं के यहाँ राष्ट्र गृहों में क्या, प्रजाओं के यहाँ ये यज्ञ होते रहते थे। मुझे स्मरण है इसमें राजा और प्रजा मिलकर के यज्ञ करते थे। वेदों का पठन—पाठन होता रहता था। माता की उपासना की जाती थी। उपासना का अभिप्राय यह है कि इस प्रकृति की उपासना की जाती। जिससे शुद्ध वायुमण्डल हो, शुद्ध वातावरण हो जिससे अन्न भी दूषित न हो। यह जो पृथ्वी माता है यह माता गर्भ से परिणित हो रही है। यह माता अपने गर्भ में परिपक्व होती है। इसी प्रकार चैत्र

मास में यह जो पृथ्वी है नाना प्रकार की वनस्पतियां इसके गर्भ में होती हैं। गर्भ में होने के नाते इसमें जितना भी बुद्धिजीवी प्राणी होता है वह माँ दुर्गे की याचना करता है। प्रकृति की उपासना करता है। हे माँ ! तू आ और हमें यह ममतामयी वनस्पितयां है! हमारा अन्न है इन्हे तू हमारे गृह में भरण कर दे। अस्वात (पूरी तरह से भर दे) कर दे। जैसे ब्रह्मचारी अपनी विद्या की रक्षा करता है इसी प्रकार माँ ! यह राष्ट्र की सम्पदा है। प्रजा की सम्पदा है। इसमें तू हमें इस अन्न को दे तो यह याचना वैदिक मन्त्रों द्वारा अनुष्ठान करके यज्ञ के द्वारा की जाती है। यह यज्ञ में दी हुई आहुति द्युलोक को प्राप्त होती है। इसीलिए यह जो नौ रात्र हैं, नौ दिवस हैं 'अष्टमी ब्रह्मे' इसमें उपासना की जाती है। क्योंकि प्रतिपदा से लेकर के और अष्टमी तक पृथ्वी में प्रकृति की गति इस चैत्र माह में शान्त रहती है। इसलिए इसको गति देने के लिए वायुमण्डल को शोधन करने के लिए प्रत्येक मानव यज्ञमयी ज्योति को जागरूक करता रहता है। बेटा ! ऋषिजन कहते हैं, यह ज्योति शान्त नहीं होनी चाहिए। परन्तु जो उसका अनुष्ठान किया जाता है व्रती रहकर के, संकल्प के द्वारा जब यज्ञपति, होताजन उद्गाताजन आदि यज्ञ करते हैं उस समय यह जो प्रकृतिमयी माँ है यह अपने प्यारे पुत्रों को वसुन्धरा बनकर इच्छा के अनुसार फल दिया करती है। बेटा ! **फल क्या है?** जो ऊँचा कार्य किया जाता है उस ऊँचे कार्य का ऊँचा ही परिणाम होता है। जब यहाँ प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या याज्ञिक बन जाता है, अनुष्ठान करने लगता है उनकी **प्रवृत्तियां ही जीवन का निर्माण करती हैं और प्रवृत्ति ही वायुण्डल का निर्माण कर देती हैं।** वायुमण्डल जितना शोधित होता है उतनी ही कृषक की भूमि पवित्र होती है। अहा ! माता पृथ्वी की गर्भ में जो नाना प्रकार की वनस्पतियां है वह शोधित हो जाती है पवित्रमयी बन जाती हैं। इसलिए इस माह में अनुष्ठान किया जाता है। **एक वर्ष में दो समय अनुष्ठान होता है।** एक अनुष्ठान चैत्र मास में होता है। एक क्वार मास में अनुष्ठान होता है। इन दोनों का महत्व एक ही है। क्योंकि उस समय पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना की जाती है। और इस माह में उस बीज का जो फल है, परिणाम है वह गृह मे जाता है। इसलिए प्रत्येक गृह में क्या कृषक के यहाँ क्या? राजा के यहाँ क्या? यह अखण्ड ज्योति मानव के जीवन में क्या, गृह में सदैव प्रदीप्त होनी चाहिए। जिससे मुनिवरों ! राष्ट्र और समाज ऊंचा बनता चला जाए।

अन्न ही शरीर का घृत है और संयम द्वारा यज्ञों का अनुष्ठान करके अन्न का शोधन करना चाहिए

मुनिवरो ! इसमें अन्न की स्थापना की जाती है। अन्नमयी ज्योति जागरूक होती है। अन्न शरीर का घृत है इसी प्रकार यह अग्नि उसी काल में प्रदीप्त रहती है। अन्यथा यह अग्नि बिना वनस्पतियों के अग्नियों का अपना कोई महत्व नहीं रहता इसलिए आज उस अग्नि की उपासना करते हुए, उस ज्योति को जानते हुए, उस माँ वसुन्धरा की याचना करते हुए अपने जीवन में योगिकता को प्राप्त करना चाहिए।

योग के आठ अंग ही इस दुर्गा की आठ भुजाएं हैं इनके बिना कोई योगी नहीं बन सकता

आज मैं उच्चारण कर रहा था कि यह अष्ट भुजों वाली माँ जो दुर्गा है, यह हमारे यहाँ क्या है? मुनिवरों ! देखो, हमारे यहाँ अष्ट भुजों वाली 'दुर्गप्रवे अष्टम्' कहा गया है। **योग के आठ अंग कहे गए हैं।** उन आठ अंगों को संयम से करने वाला माँ दुर्गा को अपने को समर्पित कर देता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! जो आठ अंग आठों भुजाओं को नहीं जानता जो यौगिकवाद हैं वह माँ दुर्गा के द्वार पर किसी काल में भी नहीं पंहुच पाता। तो विचार क्या कि आज हम उस माँ की गोद में जाने का प्रसास करें, जो मेरी माँ चेतना है, जो प्रभु है, जो आनन्द देने वाली है। मुनिवरो ! इसका लोक और परलोक दोनों से सम्बन्ध होता है, **इस लोक की माता दुर्गा यह प्रकृति है, पृथ्वी है और परलोक की माता अग्नि है** जो नाना रूपों में प्रदीप्त हो करके जीवन का घृत बनी हुई है। घृत बनकर के आत्मा बलिष्ट हो जाता है तो माता अपनेपन में विचित्र बनती चली जाती हैं। वैदिक सम्पदा को अपने में धारण कर लेती हैं।

माता की पूजा से अपने को ऊँचा बनाओ

मैं अधिक चर्चा प्रकृट करने नहीं आया हूँ। विचार देने आया हूँ। अपना विचार क्या है कि हम अपने–पन में ऊँचे बनते चले जाएं, विचित्र बनते चले जाएं। उनकी विचित्रता एक महत्ता का प्रतीक कहलाया गया है। आओ, मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हम अपने देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए माता ममतामयी को जानते चले जाएं। हे माँ ! तेरे गर्भ स्थल में हमारा निर्माण होता है आज हम तेरी पूजा करें तो हमारे मनों के आधार से ही तू हमें फल दे। वह फल क्या देती है? बेटा, माता अपने प्यारे पुत्रों का पालन–पोषण स्वतः ही करती रहती है। इसीलिए माता की पूजा होनी चाहिए।

माता–प्रकृति और परमपिता परमात्मा दोनों की उपासना करो

मुनिवरो ! जो रूढ़िवादी माता को त्याग करके पिता की उपासना करते हैं वह–आधे अंग की उपासना से कुछ समय में वे रूढ़िवादी समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि जहाँ माता का आदर नहीं वह गृह नहीं। जहाँ मुनिवरो! देखो, माता का अपमान होता है वह श्मशान भूमि होती है। वह गृह नहीं होता। इसीलिए माता का पूजन होना चाहिए, माता की उपासना होनी चाहिए। परन्तु वह माता कौन ? जो जननी है, जो माता अपने गर्भस्थल में बालक का निर्माण करती है। हे निर्माणवेत्ता ! निर्माण करने वाली माता! तू कैसी ममतामयी है ? आज जब हम तेरी गोद में अपने को अर्पित कर देते हैं तो हे माँ ! हम अपने को कितना सौभाग्यशाली स्वीकार करते हैं। इसीलिए आज हमें अपने प्यारे प्रभु को, माता को, अपने को समर्पित करने की उत्सुकता रहनी चाहिए। वह जो ज्योति है वह आनन्दमयी है। वह ज्योति सदैव जागरूक रहने वाली है। **यह जो लोक का घृत है यही तो मानव की प्रवृत्तियाँ हैं। यही तो वायुमण्डल को शोधन करती हैं।**

नवरात्रों में प्रत्येक स्त्री–पुरुष को (पति–पत्नी को) संयमपूर्वक प्रकृति तथा प्रभु की उपासना करनी चाहिए

इसीलिए हमें विचारना है, हमें अनुष्ठान करना है नौ द्वारों पर संयम करना हैं ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है। जब पृथ्वी की गति मन्द हो तो माता पिता को, दोनों को संयमी रहना चाहिए। अनुष्ठान करो और संयमी रहो, परन्तु अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि इस समय में दुर्वासनाएं काम, क्रोध, लोभ, मोह की वासनाएं तुम्हारे द्वार पर नहीं आनी चाहिए। हमारे यहाँ अनुष्ठान कहा जाता है। अनुष्ठान का अभिप्राय यह, जहाँ मुनिवरो ! अपने को जाना जाता है, अपने को जानने की प्रवृत्ति मानव की बनाई जाती है। उन प्रवृत्तियों को संयम में करने का नाम अनुष्ठान है। यह हमें प्रायः करना चाहिए। **यह जो हमारे यहाँ चैत्र मास का समय होता है इसमें यज्ञ किए जाते हैं, प्रतिपदा को लेकर के और अष्टमी तक यज्ञ होने चाहिए। दैवी यज्ञ होना चाहिए।** दैवी यज्ञ का कर्मकाण्ड का वर्णन मैं कल करूंगा क्योंकि आज मुझे समय आज्ञा नहीं दे रहा।

यौगिक सम्पदा को अपना कर संसार–सागर से पार उतरें

मुनिवरो ! परन्तु इस नवरात्रि में याग करना चाहिए। **यज्ञ का अभिप्राय यह है कि अग्नि को प्रदीप्त करके विचारों को सुगन्ध में लिपटा देना चाहिए।** जैसे माता का प्रिय बालक विनोद में माता के अंग में परणित हो जाता है। इसी प्रकार **प्रत्येक मन्त्र, प्रत्येक वेद–मन्त्रों की आभा उस दैवी यज्ञ के समीप रहनी चाहिए।**

यह है बेटा ! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं इस दैवी यज्ञ के सम्बन्ध में इसका वैज्ञानिक रूप, इसका भौतिक रूप दोनों विचार मैं कल प्रकट कर सकूंगा। आज का वाक् यह समाप्त होने चला। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हमें उस रात्रि में नहीं जाना चाहिए जहाँ अन्धकूप है, माता का गर्भाशय हैं। हमें यौगिक बनना चाहिए। यौगिक सम्पदा को अपनाते हुए इस संसार सागर से पार होते हुए अपनेपन में ऊँचे बनते चले जाएं। यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् यह समाप्त होने गया। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि हमें इस मन के ऊपर सवार होना चाहिए। आठ अंग योग के जानने चाहिएं। मुनिवरों ! देखो, कल मैं यज्ञ के सम्बन्ध में कुछ अंगो का वर्णन करूंगा आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : १७ मार्च, १९७२
समय : रात्रि ६ बजे।
स्थान : सैण्ट्रल पार्क, लोधी रोड, नई दिल्ली।

१६. माता दुर्गा एवं अखंड ज्योति १६ मार्च १९७२

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। आज के हमारे इन वाक्यों वैदिक आभाओं में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जा रहा था। जब हम उस प्रभु की महिमा उसकी आनन्दमयी ज्योति का चिन्तन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह जो सर्व जगत् है एक ज्योति के आधार पर स्थित रहने वाला है। क्योंकि संसार में जो चेतना है, वह चेतना उस मेरे प्यारे प्रभु की है और उसको हमारे यहाँ अखण्ड ज्योति कहा जाता है। क्योंकि ज्योति के रूपों में परणित रहने वाला वह मेरा प्यारा प्रभु है।

उस अखण्डमयी माता की अखण्ड ज्योति का प्रकाश माता के गर्भस्थल में होता है।

बेटा, जब मैं माता के द्वार पर जाने का प्रयास करता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि माता के गर्भस्थल में उस अखण्ड रूपमयी ज्योति का प्रकाश हो रहा है, जिस ज्योति के आधार पर माता के गर्भस्थल में जो जरायुज रहता है वह जरायुज उस अखण्डमयी माँ 'ज्योति' के आधार पर स्थित रहने वाला है। आज मैं उस ज्योति के रूपों का वर्णन करने आया हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी की कुछ प्रेरणा है और कुछ वैदिक पठन–पाठन का क्रम भी इसी प्रकार का है। जिससे हमें यह प्रतीत होता है कि हम उस अखण्डमयी माँ ज्योति को जानते चले जाएँ जो अखण्ड रूपों में परिणित हो रही है।

बालक के मस्तिष्क का विकास माता के ब्रह्मरन्ध्र की सहायता से होता है

बेटा, माता के गर्भस्थल की विवेचना कर रहा था। माता के उस ब्रह्मरन्ध्र में सूक्ष्म–सूक्ष्म वाहक नाड़ियाँ होती हैं। उन नाड़ियों का सम्बन्ध माता के ब्रह्मरन्ध्र से होता है। ब्रह्मरन्ध्र उसे कहा जाता है जैसे हमारे यहाँ तीन प्रकार के मस्तिष्कों का वर्णन आता रहता है। जैसे मस्तिष्क है, लघु मस्तिष्क है और हृत्केतु मस्तिष्क है। तीन प्रकार के मस्तिष्कों का प्रायः वर्णन आता रहता है। माता के इस ब्रह्मरन्ध्र में एक श्वेता नाम की नाड़ी होती है जिस श्वेता नाम की नाड़ी में से लगभग 64 प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। वह जो 64 धाराएँ हैं। उसमें से 72 प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। उन धाराओं का सम्बन्ध वायुमण्डल से है। द्यु–लोक तक माना है। उन नाड़ियों का सम्बन्ध पुनः विज्ञान की आभाओं को, परमात्मा की आभाओं को लेकर के बेटा ! वह नाड़ियों में नाना मस्तिष्कों में रमण करती हुई वे जो वाहक सुन्दर धाराएँ हैं माता के गर्भस्थल में जब हम जैसे प्यारे पुत्र होते हैं तो मुनिवरों! वह अखण्ड रूप से ज्योति जागरूक हो रही है माता के गर्भस्थल में वे जो सूक्ष्म धाराएं हैं द्यु–लोक से उस ज्योति को घृत प्राप्त होने लगता है। माता के गर्भस्थल में वह ज्योति जागरूक रहती है।

माता का कर्त्तव्य है कि अपने ब्रह्मरन्ध्र में उस अखण्ड ज्योति को जागरूक करके गर्भ में स्थित बालक के ब्रह्मरन्ध्र को ज्योतिष्मान करे

परन्तु विचार यह कि उसी ज्योति के आधार पर बालक का मस्तिष्क बनता है। लघु–मस्तिष्क बनता है। हृत् मस्तिष्क बनता है। इसके पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र का निर्माण होता है। तो मुनिवरो ! देखो, वह कहाँ से प्राप्त होता है ? वह जो ज्योति आनन्दमयी माँ है वह जो ज्योति रूप से अखण्ड रूपों से संसार में परिणित हो रही है उस अखण्ड ज्योति को जागरूक करना एक मेरी प्यारी माता का कर्त्तव्य है। जब माता उस ज्योति का साक्षात्कार कर लेती है तो उस माता का कितना उज्ज्वल सौभाग्य है। वह माता कितना विज्ञान में परिणित रहने वाली है। जिस अखण्ड रूप ज्योति को प्राप्त करने वाली मेरी माता का बालक जरायुज में उसी ज्योति में पनपता है, उसी ज्योति में वह ज्योतिष्मान होता रहता है। तो हमारे यहाँ उसको अखण्ड ज्योति कहा गया है।

उस अखण्ड ज्योति की सहायता से ही मानव के उदर की जठराग्नि कार्य कर रही है

हे मानव ! तेरे इस उदर में जो जठराग्नि अपना कार्य कर रही है जो भी तुम आहार करते हो, नाना प्रकार के पदार्थों का पान किया जाता है नाना प्रकार के पदार्थों को वही एक अखण्ड ज्योति है, जिसको जठराग्नि अनेक रूपों में परिणित कर देती है। जब वह अखण्ड रूपों में मानव के शरीर में परिणित रहती है तो उस ज्योति को पान करने वाला उस ज्योति को अपने में धारण करने वाला एक मानव विज्ञान की रूपरेखा को बनाने लगता है। उस अखण्डमयी ज्योति को अपने में स्वयं धारण करता है।

उज्ज्वल रूपों में रहने वाली अखण्ड ज्योति के शरीर से निकल जाने पर शरीर शव–मात्र रह जाता है

मेरे प्यारे ऋषिवर ! वाक्य क्या कह रहा है ? विचार क्या है ? कि वह जो मानव के शरीर में अखण्ड ज्योति जागरूक है जब तक मानव जीवित रहता है, अखण्ड ज्योति जागरूक रहती है। जब यह ज्योति अपने

विशेषाधिकार को त्याग करके लोक में प्रचलित हो जाती है, उस समय मानव का शरीर ज्योतिष्मान न रहता हुआ शव बन जाता है। उस मानव का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। तो मेरे प्यारे ! विचार क्या है ? आज हमें उस अखण्ड ज्योति को जानना चाहिए जो उज्ज्वल रूपों में परिणित हो रही है।

'नौरात्र' के दिनों में राजा, प्रजा और कृषक आदि सब मिलकर अपने–अपने गृहों को सुगन्धित करके परममाता (परमात्मा) की पूजा करते थे

भूमि कृषक को लालायित करने वाली है। आज मैं उस समय को पुनः से तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ। बेटा ! आज वह दिवस है जिस दिवस में हमारे पुरातन काल में द्वापर काल में, त्रेता काल में और भी कालों में आज वह पुनः दिवस है जिसको हमारे यहाँ नौ 'नमःप्रभात' कहा गया है। जिस दिवस में कृषक और राजा–प्रजा मिलान करते हैं। अपने प्रत्येक गृह में सुगन्धि का संचार किया जाता है। वह जो माँ है उस माँ की पूजा की जाती है जिस माँ ने हमें जन्म दिया है। जो माता हमारे इस मानव शरीर में अखण्ड रूपों से ज्योति प्रदान करने वाली है। उस माँ का पूजन मुनिवरो ! देखो, पुरातन काल में बहुत समय हुआ।

संकल्प, अनुष्ठान, योगाभ्यास तथा तपस्या द्वारा मानव अपने नौ द्वारों का संयम करते थे

मुनिवरो ! राजाओं के यहाँ जब अनुष्ठान होते थे इसको एक शब्द में अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान का अभिप्राय संकल्प है। इस संकल्प में जो पृथ्वी की गति है वह धीमी रहती है सूर्य की गति कुछ ऊर्ध्व होती है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने इसको नौरात्र कहा है। नौरात्र (इस समय में उष्णता तथा शीत दोनों की प्रधानता नहीं होती है) का अभिप्राय है कि इस मानव शरीर में नौ द्वार कहलाए गए हैं। इन नौ द्वारों को संयम में करते हुए इसमें योगीजन योगाभ्यास करते हैं। इन नौ द्वारों को संयम के द्वारा एक सूत्र में लाने का प्रयास करते हैं। **"अष्टचक्रा नवद्वारा,"** यह वह नगरी है जिसको देखो, महाराजा मनु ने इनके अनुकरण में ही अयोध्या का निर्माण किया। इस मानव शरीर से ही जगत् का निर्माण होता रहा है।

मानव इन नव द्वारों का संयम करके वसुन्धरा दुर्गा माता अर्थात् प्रकृति–माता की उपासना करते थे

तो बेटा ! हमें विचारना है कि आज हमें नौ द्वारों में उच्चता को लाना है। क्योंकि उनमें जो अखण्ड रूपों से ज्योति जागरूक हो रही है उस ज्योति को पुनः से जागरूक करना है। इसको हमारे यहाँ यज्ञ ही कहा गया है। साधारण पुरुष नौ रूपों में माँ दुर्गा की उपासना करते हुए इस जो **"दुर्गम ब्रह्मव्यापक प्रवे,"** ऋषि कहते हैं जो दुर्गुणों को नष्ट करने वाली है। दुर्गुणों को कौन नष्ट करती है। हमारे यहाँ **"दुर्गा प्रवः अस्तम्"** दुर्गा का बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। वर्णन क्या आता है कि **"दुर्गा प्रवे"** इसकी उपासना करो। उपासना का अभिप्राय यह है जिस माँ प्रकृति की उपासना करो जिस प्रकृति के गर्भ में सर्वत्र वनस्पतियाँ लालायित हो रही हैं मानव का और प्रत्येक प्राणियों का अन्न, पृथ्वी के गर्भ में परिणित हो रहा है आज इस प्रकृति की हम उपासना करने वाले बने। क्योंकि यह प्रकृति हमारी माँ है, वसुन्धरा है। इस वसुन्धरा को जानने का प्रयास करें। मेरे प्यारे ऋषिवर वसुन्धरा इसीलिए कहते हैं कि इसके गर्भ में प्रत्येक प्राणी वशीमूत हो रहा है।

दुर्गा–माता की उपासना करने का अधिकारी

तो आज मैं उच्चारण यह करता चला जाऊँ। तुम्हारे समीप हमारे ऋषि मुनियों ने इसको अनुष्ठान माना है। अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि इसमें यज्ञ होते हैं। **यज्ञ का नाम ही अनष्ठान कहा जाता है।** मुनिवरो ! अनुष्ठान का अभिप्राय यह कि व्रती रहना। व्रती क्या है ? संकल्प सहित रहना, अपने नौ द्वारों को संयम में लाना। ज्ञान इन्द्रिय–कर्म इन्द्रियों से हम किसी भी द्वार से किसी प्रकार का अपराध न करें, ऐसा संकल्प बनाने वाला ऐसा नौ व्रत धारण करने वाला ही माँ की उपासना कर सकता है।

यज्ञ के अनुष्ठान के बिना सांसारिक भोग–विलास सारहीन हैं

हे ! माँ तू कितनी भोली है, तू वास्तव में ज्योति है, तू जागरूक हो रही है संसार को चेतनित बनाने के लिए माँ ! तेरा स्वरूप मेरे समीप आता रहता है। विचार क्या कि आज हम उस यज्ञरूप ज्योति को अपनाते चले जाएँ। आचार्यजन कहते हैं कि मानव नाना प्रकार के भोग विलास करता रहता है, भोग विलासों में लीन रहता है परन्तु बिना यज्ञ के संसार के भोग विलासों में कोई सार प्रतीत नहीं होता। तो आचार्य कहते हैं कि यह अनुष्ठान नाम एक यज्ञ जैसे **'अनुकृति यज्ञ'** है, **"नौ दुर्गा यज्ञ है,"** विष्णु यज्ञ है, ब्रह्म यज्ञ है, शिव यज्ञ है, ऋषि यज्ञ है, कन्या यज्ञ है और वृष्टि यज्ञ है, पुत्रेष्टि यज्ञ है, सोमभूमि यज्ञ है नाना प्रकार के यज्ञों का बेटा प्रायः वर्णन आता रहता है।

देवर्षि नारद मुनि महाराज के शिष्य महात्मा ध्रुव

मुझे स्मरण है, मैंने बहुत पूर्व काल में अपनी विवेचना प्रकट करते हुए कहा था। मुझे वह समय भली भाँति स्मरण आने लगता है। जब महात्मा ध्रुव इन्हीं नौ द्वारों की उपासना करता हुआ इसी माँ प्रकृति की उपासना करने वाला वैज्ञानिक अपनी आभा को लेकर के जब चलता है तो उसका विज्ञान, उसकी आभा प्रकृति के गर्भ में ओत–प्रोत होने लगती है। मुझे स्मरण आता है जब देवर्षि नारद–मुनि के यहाँ **महात्मा ध्रुव जिन्होंने षोडश वर्ष की आयु में ही ध्रुवमण्डल की यन्त्रों द्वारा यात्रा की थी।** बेटा ! मुझे वह समय आज भी स्मरण आ रहा है जिस समय को हुए लगभग करोड़ों वर्षों हो चुके हैं। करोड़ों नहीं तो कुछ सूक्ष्म होगा। परन्तु विचार हमारा यह कि आज हम इन वाक्यों को पुनः से स्मरण करने वाले बनें।

महात्मा ध्रुव ने नव–द्वारों के संयम के साथ ध्रुवमण्डल के विज्ञान के पण्डित होकर ध्रुवमण्डल की यात्राएँ की थीं

देवर्षि नारद के यहाँ अनुष्ठान होता था। वहीं महात्मा ध्रुव ने अनुष्ठान किया और माँ दुर्गे की उपासना की। दुर्गे उसे कहा जाता है जो दुर्गुणों को नष्ठ करने वाली है। जो अनुष्ठान करता है माता उसके दुर्गुणों को नष्ट कर देती है। नष्ट किस प्रकार होते हैं ? देखो, जब माँ दुर्गा की उपासना **'दुर्गम् प्रवे अकृतम्'** जो दुर्गुणों को हनन करने वाली हो दुर्गुण मानव के उस काल में हनन होते हैं जब मानव अपने को उस माता को समर्पित कर देता है। संसार में जो समर्पित नहीं कर सकता वह मानव संसार में योग्य नहीं बन सकता। बेटा ! माता अपने गर्भस्थल से बालक को जन्म देती है, पुत्र को जन्म देती है, वह माता बनती है उस काल में जब अपने को समर्पित कर देती है। इसी प्रकार एक योगी है, आचार्य के कुल में जाता है वह अपने को जब समर्पित कर देता है, अपनेपन को त्याग देता है उस समय वह आचार्य और ऋषि बन जाता है। मुझे वह समय स्मरण आता रहता है जब महात्मा ध्रुव ने अनुष्ठान करके अपने को समर्पित कर दिया माँ दुर्गा को माँ प्रकृति को। इन्हीं प्रकृति के गर्भ में से नाना प्रकार के परमाणु, अणु, महा अणु त्रसरेषु, पंचाणु नाना प्रकार के अणुओं को एकत्रित करने वाले महात्मा ध्रुव ने ध्रुवमण्डल की यात्रा करना प्रारम्भ कर दिया। मुझे स्मरण है वह कितना बड़ा विज्ञान था। देवर्षि नारद की कितनी विशाल देन थी। माता को अपने समर्पित करने के पश्चात् मानव को कितनी शक्ति प्रदान की जाती है। बेटा वह ध्रुवमण्डल कितना विशाल मंडल है जो पृथ्वी से अरबों, खरबों योजन दूरी पर है।

संयम, अनुष्ठान, यज्ञ और समर्पण के द्वारा ही प्रकृति के इस विज्ञान को जाना था

विचार यह है कि हमारे यहाँ विज्ञानवेत्ताओं ने कहा है कि हमारा यह जो पृथ्वीमंडल है यह जितना प्रबल है ऐसी ऐसी 30 लाख पृथ्वियाँ सूर्य मंडल में समाहित हो जाती हैं। जैसा सूर्यमंडल है, ऐसे–2 एक सहस्त्र सूर्य बृहस्पति में समाहित हो जाते हैं। जैसा बृहस्पति है ऐसे–2 एक सहस्त्र बृहस्पति आरुणि मंडल में समाहित हो जाते हैं। और जैसा आरुणिमंडल है ऐसे–2 एक सहस्त्र आरुणिमंडल ध्रुवमंडल में समाहित हो जाते हैं। इतना विशाल मंडल जहाँ बेटा! माता के अनुष्ठान करने मात्र से वह उस माता को अपने को समर्पित करता हुआ इस पृथ्वी के गर्भ में वसुन्धरा प्रकृति के गर्भ में जो नाना प्रकार के सूक्ष्म–सूक्ष्म परमाणु हैं उन्हें जानना प्रारम्भ किया।

अनुष्ठान से ही उस अखण्ड ज्योति का अपने हृदय की ज्योति से समन्वय

अनुष्ठान नाम एक व्रती का है, जो संकल्प धारण करने वाला हो। संकल्पवादी कौन होता है। ? जो श्रद्धालु हो। **श्रद्धालु कौन होता है ? जिसका हृदय पवित्र होता है। बेटा ! जब तक हृदय पवित्र नहीं होता, मानव में श्रद्धा नहीं होती** वह श्रद्धा वाला व्रती नहीं बन सकता। **श्रद्धा से ही संकल्प धारण किया जाता है।** हमारा विचार केवल यह है कि आज मानव को यह विचारना है कि हम उस अखंड ज्योति को जानना चाहते हैं जो मानव के हृदय में प्रदीप्त रहने वाली है। वह अखंड ज्योति है जो सूर्य लोक में रमण कर रही है। सूर्य में ही अखंड रूप में परिणित हो रही हैं वही अखंड ज्योति है जो प्रातः काल उदय होती है, सायंकाल को अस्त हो जाती है। और भी गम्भीरता में जाओ तो सूर्य कदापि भी अस्त नहीं होता। देखो यह ज्योति सदैव जागरूक रहती है। यह पृथ्वी का चक्र है चक्र के आंगन में पृथ्वी आती रहती है। दिवस और रात्रि बनते रहते हैं। परन्तु देखो वह सूर्य में ज्योति है, उसका विनाश नहीं होता, उसका अभाव नहीं होता, अव अखंड रूपों में जागरूक रहने वाली है। मुनिवरों ! मेरे प्यारे महानन्द जी ने ऐसा मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा हैं परन्तु उस उज्जवल स्वरूप को जब मैं वर्णन करने लगता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज हम उस अखंड माँ की ज्योति को जानने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। जिस ज्योति को जानते हुए यह मानव अपनेपन में विचारने लगता है, अनुभव करने लगता है

कि वह ज्योति तो मेरे हृदय में प्रदीप्त हो रही है। आज मैं उस ज्योति को लोक की ज्योति को, हृदय की ज्योति को दोनों का समन्वय करना चाहता हूँ। तो बेटा ! वह कितना विशाल विज्ञान में परणित हो जाता है।

महाराजा अश्वपति ने अखण्ड–ज्योति को जागरूक रखा

तो मुनिवरो ! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? **वैदिक विचार–वैदिक सम्पदा हमें बारम्बार उपासक बनने के लिए प्रेरणा दे रही है।** हमें यह आदेश प्राप्त हो रहाहै कि हम उस माँ की गोद में जाने का प्रयास करें। हे मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। पुरातन काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ यह ज्योति थी। **लगभग उनकी 285 वर्ष की अवस्था थी और लगभग 12 वर्ष की अवस्था में उनका 'नाम अप्रवे' उपनयन संस्कार हुआ।** उसी संस्कार में आचार्यों ने अखण्ड ज्योति को जागरूक किया। वह ज्योति लगभग जीवन पर्यन्त अखण्ड रूपों में प्रदीप्त रही। वह यज्ञमय ज्योति थी। यज्ञ का अभिप्राय है शुभ कर्म। मुनिवरो! देखो, वह जो यज्ञमयी ज्योति है जिसमें सुगन्ध उत्पन्न होती हो, दुर्गन्ध को निगलने वाली हो, आज वह जो अखण्ड ज्योति है वह प्रत्येक मानव के गृह में प्रदीप्त रहनी चाहिए। मुझे वह समय भली–भांति स्मरण है जब वहाँ ज्योति जागरूक रहती थी।

सारे संसार में रमी हुई अखण्ड–ज्योति योगी के ब्रह्मरन्ध्र में विराजमान रहती है

अहः मैं उस वाक्य को पुनरुक्ति देने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह है कि आज हमें ज्योति के ऊपर विचार करना चाहिए। वह जो हृदय में ज्योति जागरूक हो रही है, वह जो सूर्य में ज्योति है, चन्द्रमा में ज्योति है, पृथ्वी में ज्योति है, आपो में ज्योति है, वायु में ज्योति है और अन्तरिक्ष में जो ज्योति है। प्रदीप्त हो रही है, जो ज्योति द्युलोक को चेतनित बनाने वाली है बेटा ! उस ज्योति को प्रत्येक मानव को जानना चाहिए वह ज्योति है क्या ? वह ज्योति एक वह चेतना है। जिसको उस अखण्ड ज्योति का प्रकाश प्राप्त हो जाता है वह अखण्ड ज्योतिमय बन जाता है। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था वह ज्योति मानव के ब्रह्मरन्ध्र में प्रदीप्त रहने वाली है। वह ज्योति हृदय में हृदयलिंगमयी ज्योति कहलाती है। जिस ज्योति का स्वरूप सर्व ब्रह्माण्ड में पिण्डाकार प्रतीत होता रहता है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि जब मानव समाधिस्थ होने लगता है 'ब्रह्मचर्य चरामि' मानव जब ब्रह्म को चरता है तो उसी ज्योति के प्रकाश में चलता है। जैसे 'भुजंगम् ब्रह्मः' जैसे प्रवाहित होता है, सर्प होता है वह मणि के प्रकाश में चलता है, अपने उदर की पूर्ति करता है इसी प्रकार जो योगीजन ज्योति के प्रकाश को जानते हैं, जो ब्रह्मचारी होते हैं, वह उस ज्योति के प्रकाश में ब्रह्म को चरते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र के पिछले भाग में वह ज्योति प्रकाशमयी बन जाती है

वे कैसे चरते हैं ? उस ज्योति को उस समय जागरूक करते हैं, ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति बन जाती है। जैसे ज्योति की ऊर्ध्व गति होती है। जब ऊर्ध्व गति बन जाती है तो मानव का जो ब्रह्मरन्ध्र है, ब्रह्मरन्ध्र के पिछले भाग में जैसे पीपल का वृक्ष होता है और उसका जो पत्र होता है उसका जो अर्द्ध भाग होता है उसके समान अष्टकोण रूप एक स्थल होता है उसमें ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति हो करके वह ज्योति प्रकाशमयी बन जाती है। उसमें से 1–सुकेत, 2–शृंगी, 3–घ्राणकेतु, तीन नाड़ियों का जन्म होता है। एक–एक नाड़ी में से 72–72 धाराओं का जन्म होता है। वे धाराएं वायुमण्डल में प्रसारित हो जाती हैं। अब मुनिवरो ! देखो, जो योगी उस स्थल को पीपल के पत्र के अर्द्ध भाग का जो स्थल है उसमें जब ब्रह्मचर्य की गति उर्ध्व होकर के सुकेता नाम की नाड़ी ऊर्ध्व गति को जब प्राप्त होने लगती है तो वह योगी उस अखण्ड ज्योति के प्रकाश में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन कर लेता है।

उस अखण्ड ज्योति के जानने वाले की आभा सदा साथ रहती है

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं अधिक वाक्य प्रकट करने नहीं आया हूँ। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर विराजमान होता था तो इस ज्योति के सम्बन्ध में बहुत विचार विनिमय होता रहा। विचार क्या कि आज यह जो लोक में अग्नि है इस अग्नि को प्रकाश में लाने का प्रयास करते हुए अपने हृदय में इसका आचरण करने वाले बनें। आज मैं ज्योति का संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। विचार यह है कि **आज हमें इस अखण्ड ज्योति को जानने को प्रयास करना चाहिए।** जिस ज्योति के लिए हमारे ऋषि मुनि, आचार्यजनों का सदा परम्परागतों से ही जानने का प्रयास होता रहा है और उसे जानना चाहिए क्योंकि उसको जानने वाला जो मानव होता है वह कदापि संसार में अपनी आभा को नहीं त्यागता।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हमारा विचार यह क्या कह रहा है ? आज हमें इस अखण्ड ज्योति के अनुष्ठान के साथ में ज्योति की प्राप्ति का प्रयास करें। अहः ! **अनुष्ठान योगीजन करते हैं।** अनुष्ठान जब करते हैं तो अपने जीवन को महान् बनाने का प्रयास करते हैं। **अनुष्ठान का अभिप्राय है व्रती रहना। व्रती का अभिप्राय है अपने नौ द्वारों को संयमित बनाना।** नौ द्वारों में अशुद्धता का भरण न करना। महत्ता का भरण करना नौ द्वारों को जानना है और जो मानव नौ द्वारों को जानता है, वह प्रभु की आभा का दिग्दर्शन करता है। मेरे प्यारे ऋषिवर, वाक्य क्या है ? मुझे वह समय भली–भांति स्मरण आता रहता है, जब वैज्ञानिकजन इसी ज्योति के प्रकाश में नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाने का प्रयास करते थे। हमारे यहाँ आचार्यों को कहा है, अनुष्ठानवेत्ताओं को कहा है हे अनुष्ठानवेत्ताओं ! तुमतो यजमान हो, तुम्हारी गति इतनी ऊर्ध्व होनी चाहिए, इतनी व्यापक होनी चाहिए, इतनी विस्तृत होनी चाहिए कि पृथ्वी से लेकर के सूर्यलोकों में भ्रमण करने वाले बनो। ऐसा हमारे यहाँ ऋषि मुनि कहते हैं। आचार्यों ने कहा है कि आज हम उस अखण्ड ज्योति को जानने का प्रयास करते रहें।

जो अखण्ड ज्योति माता के गर्भ में क्या मानव की जठराग्नि में क्या, सूर्य में क्या, चन्द्रमा में क्या, पृथ्वी में क्या नाना प्रकार के लोक लोकान्तरो में वह एक अखण्ड ज्योति जागरूक हो रही है। **उसी ज्योति का नाम ब्रह्म कहा गया है।** उसी ज्योति के प्रकाश में प्रत्येक प्राणी अपना कार्य कर रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय तुमने जान लिया होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम अखण्ड ज्योति को जानें। देखो, अपना अनुष्ठान करते हुए उस प्रभु की हमें प्राप्ति हो। होगी उसी काल में जब कि विज्ञान का स्वरूप हमारे समीप होगा। क्योंकि विज्ञानवेत्ताओं के समीप आने वाले प्राणी के लिए यह ब्रह्म दूर नहीं होता। **वह ब्रह्म में समाहित रहता है। ब्रह्म उसमें समाहित रहता है।** उनको द्वितीय भाव नहीं होता। वे परमात्मा के गर्भ में क्रीड़ा करते हुए आनन्द और मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

आज का वाक् हमारा अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि आज हम अनुष्ठान करें, जैसा महात्मा ध्रुव ने किया था। देवर्षि नारद मुनि के यहाँ उनकी कितनी ऊँची उड़ान रही है। क्योंकि यह जो सर्व संसार है यह उस माँ का गर्भाशय है। उसी के गर्भ में हम सर्व प्राणी वशीभूत रहते हैं। उस माँ के गर्भ में हम विराजमान हैं। उसको जानना हमारा कर्त्तव्य है। यह है आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मैंने कुछ बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित किया है। यहाँ एकत्रित करने का अभिप्राय यह कि कल मुझे समय मिलेगा मैं इस ज्योति के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट करूंगा। मेरे प्यारे महानन्द जी के दो प्रश्न हैं, उन प्रश्नों का उत्तर भी हम कल दे सकेंगे। **आज का वाक् यह कि हम प्रभु की उपासना करते हुए इस संसार सागर से पार होते रहें।** क्योंकि वह जो अखण्डमयी ज्योति संसार को प्रकाशमान बना रही है, उस ज्योति को जानने का प्रयास करते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् वार्ता समाप्त।

पूज्य महानन्द जी—गुरु जी वाक् तो बहुत ही प्रिय लगा परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म....'हास्य'...

पूज्यपाद—गुरुदेव बेटा ! समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा अब वेद पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी—अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद—गुरुदेव—आनन्द मंगलम् शान्तिः।

१७. ब्रहम् ही मृत्यु है ६—जून—१९७१

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन—पाठन किया। हमारे यहां जो पाठ्यक्रम है वह परम्परागतों से ही मनोहर हृदयग्राही रहता है। मानव के अन्तःकरण को छूने वाला होता है। क्योंकि मानव का जो अन्तःकरण है अथवा हृदय है उसी में बेटा! वेद की पवित्र विद्या उसका एक महान् स्रोत माना गया है। पवित्र विद्या उस महान् हृदय में ही उसकी प्रतिभा मानी गई है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि मानव की प्रतिष्ठा केवल मृत्यु में ही विराजमान रहती है और मृत्यु की प्रतिष्ठा यम में ओत—प्रोत हो जाती है और यम की जो प्रतिष्ठा है वह ब्रह्म में ओत—प्रोत होती चली जाती है। तो ब्रह्म ही संसार में सर्वत्र मृत्यु का स्रोत कहलाया गया है।

संसार की सारी विद्याओं का, ज्ञान—विज्ञान का, लोक—लोकान्तरों का और सारे पदार्थों का आपस में गहरा सम्बन्ध है

इसी प्रकार जब हम वेद की उस पवित्र विद्या को विचारने लगते हैं तो हमें एक दूसरी विद्या एक दूसरे में प्रतिष्ठित होती दृष्टिपात होने लगती है। जब हम योग की प्रतिष्ठा में जाते हैं तो योग भी बेटा! एक—दूसरे योग में समाहित होता दृष्टिपात आने लगता है। जब हम लोक—लोकान्तरों में जाने का प्रयास करते हैं एक दूसरा लोक एक—दूसरे लोक में ही प्रविष्ट होता, हमें एक—दूसरे में ओत—प्रोत होता दृष्टिपात आने लगता है। जिस प्रकार बेटा! माता के गर्भस्थल में पुरुष ओत—प्रोत होता दृष्टिपात आता है। वह समिधा बन करके उस महान् अग्नि में प्रतिष्ठित होने लगता है। उसकी प्रतिष्ठा माता के गर्भाशय से सम्बन्धित रहती है। आज मैं अधिक चर्चा तो प्रकट करने आया ही नहीं हूं।

पदार्थों का संयोग और वियोग होता रहता है

बेटा! आज तो केवल जो हमारा वेद कह रहा है, मुझे कुछ संक्षिप्त उनका परिचय देना है। वह परिचय क्या है? आज हमें एक—दूसरे में प्रविष्ठ होना है। एक—दूसरे में समाहित हो जाना है। परन्तु वह समाहित हो जाने का नाम साधारण पुरुषों ने मृत्यु कहा है। परन्तु वास्तव में मृत्यु का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। संसार में न कोई प्राणी कहीं जाता है न "अवगमन ब्रह्म व्यापः" परन्तु देखो एक ऐसा जैसे "अर्थम् ब्रह्म व्यापक प्रवेशति" मानो "चाक्राणी दृष्टि रुद्रयागः" प्रभु का एक चक्र है। वह चक्र गति करता रहता है। उसी में समाहित होता रहता है उसी में उद्वध होता दृष्टिपात आने लगता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! जब हम यह विचारने लगते हैं कि यह महान पूर्ण जो जगत है और जगत में मृत्यु का जो उद्‌गार है उसमें बेटा! प्रत्येक मानव चिन्तित हो जाता है। मानव के हृदय में एक महान् विडम्बना सी (कष्ट सा) हो जाती है, भय उत्पन्न हो जाता है। बेटा! वह क्या है? क्योंकि संसार में जितने भी पदार्थ हैं उनका मिलान होता है और जब पदार्थों का मिलान होता है तब उनका विकार होता है। उनका जब विच्छेद होने लगता है तो मुनिवरो! देखो, विच्छेद से शोक उत्पन्न होता है। एक—दूसरे तत्वों में शोक की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। परन्तु शोक ही मानव के प्रत्येक परमाणु में गति उत्पन्न कर देता है। वही मानव के मन की जो धारा है, मन का जब प्राण से विच्छेद होता है प्राणों का, मुनिवरो! आत्मा से विच्छेद होता है, परमाणुओं का विच्छेद इन इन्द्रियों से होता है और **इन्द्रियों का विच्छेद जब इस शरीर से होता है तो इनमें एक शोकार्तभाव स्वाभाविक उत्पन्न हुआ करता है क्योंकि यह प्रकृति का स्वभाव होता है।**

विचारों या संकल्प का विच्छेद होने पर शोक होता है

प्रकृति का स्वभाव है कि परमात्मा या जीव के सन्निधान मात्र से स्वयं उसमें एक महान् क्रिया उत्पन्न हो जाती है। उसी क्रिया के आधार पर हमारे यहां बहुत से ऋषि—मुनियों ने अपना विचार दिया है। परन्तु उन विचारों का जो विच्छेद है उसी का नाम मृत्यु कहा गया है। मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है संसार में एक दूसरा लोक जब एक दूसरे लोक में प्रतिष्ठित होने लगता है तो उसमें कितनी व्यापकता आ जाती है। कितनी उसमें एक महत्ता उत्पन्न हो जाती है। बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज से महाराज ज्ञानश्रुति महाराज ने कहा "सम्भव प्रवे अचमृत्यु देवः प्रवास्ति सुप्रजाः" हे प्रभु! आपका देव

कौन है? उस समय ऋषि ने कहा ''मृत्यु प्रवः गच्छत प्रवे अप्रतम् मृत्युजं ब्रह्मलोकः'' मेरा जो देव है, मेरा जो ब्रह्म है, मानो वह मृत्यु ही माना गया है। इसीलिए मृत्यु को मैं सदैव जानने के लिए तत्पर रहता हूं। उन्होंने कहा तो मृत्यु के सम्बन्ध में आप हमें भी कुछ ज्ञान दीजिए। मृत्यु क्या है? मृत्यु का उद्‌गार (विचार) क्या है? मृत्यु कितनी ओत–प्रोत रहती है? बेटा राजा के इस प्रकार उच्चारण करने पर ऋषि ने कहा 'सम्भा विप्रजः मादंड नरोचश्चि सुप्रजाः' मानो देखो शुभ तथा महान् जो प्रजा मुझे दृष्टिपात आ रही है इस प्रजा में जो एक महान् गति हो रही है इस गति का जो स्रोत है मानो एक चेतना कहलाई गई है। वह जो चेतना है, उस चेतना का किसी काल में भी विनाश नहीं होता। चेतना को आत्मा भी कहते हैं। उस चेतना को मन भी कहा जाता है। मुनिवरो! उसी चेतना के आधार पर मानव का जीवन सुगठित होता है। उसी चेतना के कारण शरीर विकृत हो जाता है। छिन्न–भिन्न हो जाता है। पृथक–पृथक हो जाता है।

माता के गर्भ में रज–वीर्य के संयोग होने पर, मन तथा प्राण के संयोग होने पर जीव के सन्निधान मात्र से शरीर के अंगों का निर्माण होता है

मेरे प्यारे ऋषिवर! महात्मा रेवक मुनि महाराज ने जिनका सहस्रों वर्षों का अनुभव था, चिन्तन करते रहते थे। एक–दूसरे की प्रतिष्ठा का मिलान करने वाले ऋषि ने कहा, जो विज्ञान के युग में अपने स्थान में सर्वोपरि महान् माने जाते थे, आध्यात्मिक विज्ञान उनके संग रहता था। अपनी अनुभूति प्रकट करते रहते थे। तो महात्मा रेवक मुनि महाराज ने कहा कि जब शरीर से शरीर के कण अप्रत होने लगते हैं वे विकृत और पृथक् कैसे होते हैं? इसका मिलान कैसे होता है। जब यह माता के गर्भ स्थल में होता है मानो रज और वीर्य दोनों की प्रधानता होती है। दोनों का मिलान हो करके माता वसुन्धरा के गर्भ में उसकी स्थापना होती है तो सबसे प्रथम इसमें अप्रेत मानो प्राण और मन दोनों प्रविष्ट हो जाते हैं। क्योंकि मन और प्राणों की दोनों की प्रतिष्ठा होने के कारण मन और आत्मा की दोनों की आभा उसमें ओत–प्रोत हो जाती है। उसी से माता के गर्भ स्थल में हम जैसे प्यारे पुत्रों की रचना स्वाभाविक हो जाती है। क्योंकि जीव के सन्निधान मात्र से क्रिया होने लगती है माता के गर्भस्थल में। बेटा! उसी प्रकार के यन्त्र हैं। उसी प्रकार का निर्माण प्रकृति के परमाणुओं से प्रायः उसमें ब्रह्म का सन्निधान होता है। उसी सन्निधान मात्र से माता के गर्भस्थल में मानव के जीवन का निर्माण हो जाता है। मन और प्राण के प्रवेश के पश्चात् सबसे प्रथम इसमें ज्ञान और प्रयत्न के आ जाने के पश्चात् ज्ञान के कारण प्रत्येक परमाणुओं को पृथक–पृथक करना, प्रत्येक परमाणुओं का विभाजन करना विभाजन होने के पश्चात् जहां जो परमाणु है वहां उसका मिलान होना। चक्षुओं का परमाणु, श्रोत्रों का परमाणु, घ्राण का परमाणु, त्वचा का परमाणु, उपस्थ ग्रीवा का परमाणु, हृदय की धृति का परमाणु, इन सब परमाणुओं को पृथक्–पृथक् करने वाला मन ही तो कहलाया जाता है। जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ स्थल में वसुन्धरा के गर्भ में प्रत्येक तत्वों का प्रत्येक पदार्थों का भिन्न–भिन्न प्रकार का रसास्वादन होता रहता है। एक भूमि में नाना प्रकार की वनस्पतियों को जब अर्पित कर देते हैं। उनका भिन्न–भिन्न प्रकार का रसास्वादन होता है। वह केवल मन की ही तो विकृतता है, विशेष रचना है। **मन ही तो संसार का विभाजन करता है** एक दूसरे राष्ट्र का निर्माण करना यह मन ही का तो कार्य है।

गर्भ में मन तथा प्राण के साथ ही जीव आता है

इसी प्रकार बेटा! माता के गर्भ–स्थल में रज और वीर्य दोनों का विभाजन करना उनके परमाणुओं का विभाजन होकर माता के गर्भस्थल में ही उस रचना का निर्माण होने लगता है। सबसे प्रथम मन और प्राण आते हैं। आत्मा इसके साथ आता है। उसके पश्चात् समय–समय पर यह पंच–महाभूत आ जाते हैं। पंच–महाभूतों के आ जाने पर परमाणुओं को सुगंठित कर दिया जाता है। उन्हीं परमाणुओं को मिलान का नाम हमारे यहां देखो, पुरुष कहा जाता है। माता कहा जाता है। पुत्री कहा जाता है। पुत्र कहा जाता है। मानो उन परमाणुओं का मिलान हुआ है। हृदय से उसका सम्बन्ध रहा है। इसीलिए हृदय का ग्राही देखो पिता का पुत्र होता है। मुनिवरो और माता का पुत्र होता है इसी प्रकार माता की पुत्री, पिता की पुत्री इसी प्रकार माता कहलाती है। आगे चलकर के वही माता ममतामयी बन जाती है। क्योंकि उसके हृदय का जो स्रोत है वह उसको पुकारता है। ममता तू कहां गई? तू ममता ब्रह्म में मुझे त्याग करके कहां गई? मैं भी तो तेरे हृदय का ही एक अंकुर हूं। आज तू अपने हृदय से मुझे पृथक् करके मानो संसार से चली जा रही है। हे पितृ तू कहां गया मानो इस प्रकार की बेटा! वह हृदय की जो रचना का प्रकार है, वही तो ममतामयी होकर पुकारता रहता है। वही तो हृदय को कम्पायमान करता है वही तो ममता का स्रोत बन जाता है। महर्षि रेवक मुनि महाराज ने कहा कि इस प्रकार मानव संसार में

आता है, पनपता रहता है, नाना प्रकार के क्षेत्र में मानो कोई वैज्ञानिक क्षेत्र में चला जाता है कोई गृह क्षेत्र में परिणत हो जाता है। देखो विद्यालय के क्षेत्रों में जाता हुआ भिन्न–भिन्न प्रकार के क्षेत्रों को अपनाता हुआ संसार का एक नवीन जगत् बना लेता है। संसार का एक महान् जगत् बन जाता है। संकीर्ण जगत् बन जाता है, सूक्ष्म जगत् जिसे कहते हैं। यह माता है, यह पुत्री है, यह पुत्र है, इस प्रकार का यह क्षेत्र बनता ही रहता है, बनता रहता है और पृथक होता रहता है।

मानव के मस्तिष्क (अन्तःकरण) में प्रत्यक्ष वस्तुओं का स्वरूप तथा विचारों का संग्रह हो जाता है, वही स्वप्न में दिखता है और अदृश्य हो जाता है

जिस प्रकार बेटा! हम चित्रावलियों में नाना प्रकार के चित्रों का दर्शन करते हैं और मुनिवरो! चित्र हमारे समीप आते हैं, इसी प्रकार मानव के मनस्तत्व में भिन्न–भिन्न प्रकार के चित्र आते रहते हैं। परन्तु वे चित्र पृथक होते रहते हैं। जैसे एक मानव सर्वत्र राष्ट्र का भ्रमण कर लेता है। सर्व राष्ट्र मन की आभा में ओत–प्रोत हो जाता है। सर्वत्र भू–मण्डल का भ्रमण करने के पश्चात् वह जो चित्रावली में चित्र ले रहा है मन और इन्द्रियों के समागम के द्वारा बुद्धि का सन्निधान हो करके इस संसार का चित्र ले लिया जाता है। परन्तु संसार स्वप्न में राष्ट्रों का भ्रमण करने लगते हैं। नाना प्रकार के भोग–विलासों में परिणत हो जाते हैं। यह जगत् एक ऐसा नवीन और महान बन जाता है जिसका हम कुछ प्रमाण भी नहीं दे सकते। मेरे प्यारे ऋषिवर! यह कैसी विचित्रता है? आज हम इस विचित्रता के ऊपर जब बल देना प्रारम्भ करते हैं अनुसन्धान करने लगते हैं तो हमारी बुद्धि कार्य नहीं कर पाती। वाणी शब्दहीन हो जाती है। नेत्र प्रकाशहीन हो जाते हैं। घ्राण सुगन्धिहीन हो जाती है परन्तु अनुकरण में सदैव परिणत करने लगते हैं। मेरे प्यारे ऋषिवर! देखो, वही चित्रावली का हम जब दिग्दर्शन करने लगते हैं तो ''अहम् ब्रह्म व्यापम्'' जब मृत्यु का काल आता है, मृत्यु का समय आता है। जिसे हम मृत्यु कहते हैं वास्तव में वह मृत्यु नहीं है। जिस प्रकार इन परमाणुओं का, मन और प्राण का, दोनों का समागम हुआ, दोनों का मिलान हुआ, दोनों का पृथक्–पृथक् होने का समय आ जाता है। मुनिवरो! देखो, उस समय रुद्र इनके समीप होते हैं। मानो देखो रह–रहकर (साथ रह कर) जो परिवार बनाया था आज जो जगत् बनाया था, परन्तु जब उन परमाणुओं का विच्छेद होता है तो यह जगत् मानो व्याकुल होता है, पुत्री व्याकुल होती है, पुत्र व्याकुल होता है, कहीं पति व्याकुल होता है, तो कहीं यह सम्बन्धीजनों का संसार सभी व्याकुल होने लगता है। जो हमने एक नवीन जगत् बनाया था। परन्तु जो जाने वाला अन्तरात्मा है वह किसी काल में भी व्याकुल नहीं हो पाता। बेटा! यह कैसी विचित्रता है? उस मेरे देव की यह कैसी महान् विचित्रता है जो कि दृष्टिपात आ रही है। इस सम्बन्ध में हमारे ऋषिवर सब मौन हो जाते हैं और यह कहा करते हैं यह एक ऐसी विचित्रता है, इस पृथ्वी पर जितना समय था पति से, जितना समय और स्नेह था पुत्र से, जितना स्नेह का समय मानव का था पूर्ण हो जाता है परन्तु देखो राष्ट्र से समय और स्नेह हो जाता है अरे! मृत्यु के काल में वह समय स्नेह कहां चला गया? किस काल को प्राप्त हो गया है? उस स्नेह और समय की मात्रा उसमें कहां चली गई है? हमें यह विचारना है।

आत्मा के प्रयाण करने पर मन, प्राण तथा इन्द्रियां चली जाती हैं, यही मृत्यु है

महर्षि रेवक मुनि महाराज ने महाराजा ज्ञानश्रुति से कहा, ''हे ज्ञानश्रुति जी! वही तो मेरा मृत्यु देव है, वही मेरा इष्ट देव है, जिसकी मैं सदैव उपासना करता रहता हूं। क्या वही तो ''अप्रतम रुद्रः'' कहलाया है, जो समाज को रूलाता है। परन्तु अपने स्वयं रूद्रों में नहीं व्याकुल होता। यह कैसी विचित्रता? मुनिवरो! सबसे प्रथम मुनिवरो! प्राण का संग्रह प्राण की एकाग्रता हो जाती है। जो प्राण शरीर में कार्य कर रहे थे। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, देवदत्त, धनजय, कृकल इत्यादि जो दस प्राण हमारे शरीरों में कार्य कर रहे थे। अब उन परमाणुओं, उपप्राणों का संन्निधान होता था, उसकी एकाग्रता होने लगती है। जब इनकी एकाग्रता होती है तो मन भी इसके निकट आने लगता है। जब मन निकट आता है तो बुद्धि भी निकट आ जाती है। जब बुद्धि निकट आती है तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार भी इसके निकट आने लगते हैं। जब ये निकट आने लगे तो इन्द्रियों में जो गति हो रही थी, नेत्र संसार को दृष्टिपात कर रहे थे, घ्राण संसार की सुगन्धों को ले रहा था, श्रोत्र नाना प्रकार के शब्दों में रमण कर रहे थे, उन सबकी एकाग्रता होती है। ये सब उनके साथ–साथ आने लगते हैं तो इनकी एकाग्रता होने लगती है। एकाग्रता होने के पश्चात् **सबसे प्रथम इस शरीर से आत्मा जाता है।** परन्तु उसके पश्चात् देखो

मन और प्राण जाता है। मन और प्राण के साथ में ही ये नाना प्रकार की इन्द्रियों की गति चली जाती है **उसका नाम हमारे यहां मृत्यु कह देते हैं।** वास्तव में वह कहां चले गए, वह वायु में रमण करने लगे हैं।

आत्मा द्वारा शरीर त्याग

अब इन्द्रियों का भिन्न–भिन्न प्रकार का विषय कहलाया जाता है। अब जिस द्वार से आत्मा का परिवार जाता है, वैसे ही लोकों में वह रमण करने वाला बन जाता है। यदि नेत्रों के द्वारा चला गया है तो मनुष्य ऊर्ध्व लोकों में प्राप्त हो जाता है। जिसकी आत्मा मुखारबिन्द के द्वारा जाता है तो वह ''ब्रह्म व्याप्रे भवे'' आश्वानी लोकों में प्राप्त हो जाता है। जो ब्रह्मरन्ध्र से जाता है, घ्राण के द्वारा जाता है देव लोक को प्राप्त होता है। इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी हैं जिनका हृदय से सम्बन्ध है, हृदय से होती हुई पुरीतत् नाम की नाड़ी मानव के ब्रह्मरन्ध्र से उन नाड़ियों का सम्बन्ध होता है। **जब उससे (ब्रह्मरन्ध्र) यह आत्मा जाता है तो द्यु–लोक को, देवताओं के लोकों को प्राप्त होता है। वह मोक्ष वाली आत्माओं को प्राप्त होने वाला आत्मा होता है।** इसी प्रकार जो आत्मा उपस्थ के द्वारा जाता है, वह कीट पतंगों की योनि को प्राप्त होता है। जो ग्रीवा के द्वारा जाता है वह भी 'ग्रीवा अम्बेर' गन्द में जाने वाला जीव कहलाया गया है।

शब्द के द्वारा जाने वाला आत्मा द्यु–लोक और अन्तरिक्ष–लोक में आत्माओं के समाज के साथ विराजमान हो जाता है

इसी प्रकार हमारे शरीर में नौ प्रकार के द्वार हैं। इसी प्रकार परमात्मा के जगत् में भी एक प्रकार ''नौ निश्चय समे प्रातिश्च समे व्यापि समे मम् वस्ते, देवस्य मर्थ कालस्यो'' में नाना प्रकार के लोकों का वर्णन आता है। जिस द्वार से जो जाता है वह उसी लोक को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है उस महान् ''अन्तम् ब्रह्म व्यापः'' अग्नि में प्रवेश कर देने पर मानव शरीर के भी परमाणु हो जाते हैं। जल के परमाणु जल में, अग्नि के परमाणु अग्नि में, पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में, इसी प्रकार अन्य परमाणु अपने–अपने आंगन में अपने–अपने स्थान में ही गतिशील हो जाते हैं। परन्तु उनका विनाश नहीं होता। उनका सम्बन्ध द्यु–लोक से होता है।

सब लोकों, योनियों एवं गतियों का रचयिता ब्रह्म ही है। ब्रह्म निर्णय देता है, ब्रह्म ही नियुक्त करता है

मेरे प्यारे ऋषिवर! यहां मुझे स्मरण है कि आत्मा की कितनी प्रकार की गति होती है। जब इस शरीर को आत्मा त्यागकर के जाता है तो जो वह 'अमील गतम्' द्वारा होता है। तो मनुष्य लोकों को प्राप्त होता है। इससे वह सोमकेतु नाम की और इन्द्र नाम की वायु में रमण करता हुआ कुछ समय के पश्चात् **तेरह दिवस** तक इस वायु में भ्रमण करके पुनः किसी माता के गर्भ में जाने का उसे सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। इसी प्रकार मुनिवरो! देखो, नेत्रों के द्वारा जो आत्मा जाता है वह इन्द्र नाम की वायु में और उन तीनों प्रकार की वायु में रमण करता हुआ यम लोकों को प्राप्त होता हुआ यह सुकृति लोकों को प्राप्त होता हुआ यह कुछ मनुष्यत्व में कुछ ऐसे शरीरों में प्रविष्ट हो जाता है जो गृह आसन में, गृह परिवारों में जो योनियां आनन्द युक्त अपने जीवन को भोगती रहती हैं, सुन्दर और ऐश्वर्य भोगती रहती हैं। परन्तु उनका कोई अपना अस्तित्व नहीं होता, ज्ञान नहीं होता, विवेक नहीं होता, परन्तु वह अपना स्वकीय कर्म नहीं करता वह अपने भोगों में परिणत रहने वाला होता है।

इसी प्रकार हमारे नेत्रों में सूर्य नेत्र है, एक चन्द्र नेत्र कहलाया जाता है। एक भारद्वाज नेत्र है, एक विश्वामित्र नेत्र है, परन्तु दोनों नेत्रों में भिन्नता है। यदि सूर्य से ही आत्मा जाता है तो वह सूर्य लोकों को प्राप्त होता रहता है। उनकी गति सूर्य में होती है, सूर्य नेत्रों में ३६ प्रकार की नाड़ियां होती हैं और इन ३६ प्रकार की नाड़ियों में एक ''सुमने'' नाम की नाड़ी होती है जिसका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से होता है। उसकी अनेक शाखाएं होती हैं। परन्तु वह आत्मा जो सूर्य नाड़ी के द्वारा जाती है वह ''अप्रतम् सूर्य'' लोकों को प्राप्त होता है। इन्द्रियों से भी जाने के भिन्न–भिन्न प्रकार के भेदन होते हैं। इसी प्रकार मानव का जो चन्द्र नाम का नेत्र कहलाता है उसमें भी ३६ प्रकार की नाड़ियां होती हैं। इसी प्रकार जिस नाड़ी से भिन्न–भिन्न प्रकार की परिवार की नाड़ी से जब यह आत्मा जाता है तब उस आत्मा की भिन्न–भिन्न प्रकार गति होती है। गति होने के पश्चात् इन वायु में भ्रमण करती हुई कोई द्यु–लोक को प्राप्त हो जाता है, कोई बृहस्पति लोकों को प्राप्त हो जाता है। किसी का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है। इसी प्रकार भिन्न–भिन्न प्रकार की गतियां भिन्न–भिन्न प्रकार का उनका क्षेत्र माना गया है। भिन्न–भिन्न प्रकार की नाड़ी भिन्न–भिन्न प्रकार की वनस्पतियां और योनियों को प्राप्त होने वाला आत्मा होता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! इसी प्रकार जब यह घ्राण के द्वार से जाता है तो घ्राण के द्वार में जब सूर्य–स्वर गति करता

हुआ हो तब उससे प्राण जाता है तो द्यु–लोक को प्राप्त हो जाता है और जब चन्द्र–स्वर चलता हुआ होता है उस समय जो निम्न श्रेणी की जो आत्मा होती हैं उनमें जाता है। इसी प्रकार ३६ प्रकार के भेद इस मानव घ्राण के द्वारा होते हैं। इसी प्रकार हमारे यहां भिन्न–भिन्न प्रकार की देखो ८४–८४ प्रकार की शाखा प्रत्येक इन्द्रियों की होती हैं। इसीलिए ८४ लाख हमारे यहां योनियों का निर्माण होता रहता है प्रभु के इस मण्डल में। मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं इस विज्ञान में अधिक जाना नहीं चाहता। हमारे ऋषि–मुनियों ने इस सम्बन्ध में बहुत ही अनुसन्धान किया है। आज मैं इस अनुसन्धान में अधिक जाना नहीं चाहता हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है बेटा! यह भयंकर वन है आज इस भयंकर वन में जाने के लिए मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते हैं। उसी प्रेरणा के आधार पर मैं भयंकर वन में चला जाता हूं। जहां मुझे कोई मार्ग भी प्राप्त नहीं होता, अब मैं क्या–क्या उच्चारण करूं? यह तो एक ऐसा भयंकर विशाल वन है। मृत्यु क्षेत्र का मैं उच्चारण कर रहा था। **द्यु–लोक को प्राप्त होने वाला ब्रह्मरन्ध्र से जाने वाला होता है।** इस ब्रह्मरन्ध्र में ६६ प्रकार की नाड़ियों की शाखा होती हैं। उनकी नाना प्रकार की धाराएं होती हैं। कोई तो इस प्रकार की धारा जिसके द्वारा सीधा स्वर्ग को प्राप्त होता है। कुछ ऐसे द्वार हैं ऐसी नस नाड़ियां हैं जिनके द्वार से जाने से "अप्रेत अप्रीत" को गंधर्व लोक को प्राप्त होता रहता है, इन्द्र लोकों को प्राप्त होने वाला कोई प्रजापति के राष्ट्र में भ्रमण करने लगता है। **द्यु–लोक में कुछ आत्माएं एक 'प्राप्त' नाम की एक नाड़ी है, उससे इडा, पिंगला, सुषुम्ना का जब तीनों का मिलान होता है इस द्वार से आत्मा जाता है तो मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।** मेरे प्यारे ऋषिवर! जो "शमभूति अच्यतम्" नाना लोक लोकान्तरों से नाड़ियों का सम्बन्ध होता है। वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ ऊंची–ऊंची कल्पनाएं की हैं। आज मैं उन कल्पनाओं को अधिक नहीं उच्चारण करना चाहता हूं। हमारे इस मानव शरीर में नव द्वार है। मुनिवरो! इन नौ द्वारों को जान लेना चाहिए और इनकी आभाओं को जान लेना चाहिए। इनमें कितना बन्धन माना गया है। संसार में वास्तव में मृत्यु कोई पदार्थ नहीं रह जाता। अपने भोग होते हैं, अपना–अपना कर्म होता है। परन्तु जैसे द्वार से इस आत्मा का परिवार जाता है वैसा ही यह सुन्दर परिवार बनाने लगता है। वैसे ही परिवारों में जन्म हो जाता है। वैसे ही परिवारों का सामीप्य प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! यहां याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने और भी नाना ऋषियों ने बड़ी ऊंची–ऊंची कल्पनाएं की हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते थे शब्द के द्वारा ही जब मानो प्राण चला जाता है आत्मा चला जाता है, इस वाणी के द्वारा इस वाणी में भी ८४ प्रकार की धाराएं होती हैं। परन्तु एक 'अप्रेत' जो शब्द के द्वारा यह आत्मा चला जाता है परिवार चला जाता है वह द्यु–लोक को प्राप्त हो जाता है। द्यु–लोक में मानो रमण करने वाला अन्तरात्मा इस अन्तरिक्ष में आत्माओं के समाज के साथ विराजमान हो जाते हैं। आज अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि आज हम एक दूसरे में एक दूसरे की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते चले जाएं। इन आत्माओं का जो स्रोत है वह वास्तव में ब्रह्म ही तो माना गया है। ये सब गतियां ब्रह्म को प्राप्त होती रहती हैं। ब्रह्म ही इनका रचयिता कहलाता है। ब्रह्म ही इनका स्थान नियुक्त करने वाला है।

यह विराट् ब्रह्म का जगत है और प्रलय–काल में उसके गर्भ में सब समाहित जाता है

मेरे प्यारे ऋषिवर! आत्मा के सन्निधानमात्र से शरीर अपना गतिशील हो जाता है। गतियां करने लगता है। जैसे ब्रह्म के सन्निधानमात्र से क्या इस प्रकृति का स्वभाव अपना कार्य करने लगता है, इसी प्रकार यह आत्मा **व्यापार आत्मा** के सन्निधानमात्र से शरीर का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु मैं यह विचारना चाहता हूं कि वह जो माता की ममता थी वह कहां चली गई? मुनिवरो! देखो, ममता तभी तक रहती है जब तक इन परमाणुओं का मानो इन तत्वों का मिलान रहता है। जब यह तत्व अपने–अपने स्थान से चल देते हैं तो मोह ममता भी समाप्त होने लगती है। बेटा! देखो कुछ–कुछ मोह ममता तो चित्त में विराजमान हो जाती है। उसके जो सूक्ष्म अंकुर होते हैं, वे कितने विराजमान हो जाते हैं। परन्तु चित्त के जो अंकुर होते हैं वे इतने विशाल अंकुर होते हैं जैसे जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार के अंकुर विराजमान होते हैं। परन्तु वे बिना समय के उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार देखो वे अंकुर समय–समय पर उद्बुध होते रहते हैं। परन्तु वहां उसका आवरण भी हो जाता है। जब मुनिवरो! तपों से वह ममता समाप्त हो जाती है। जिस प्रकार? अन्न अग्नि में तपने से देखो उपजने वाला अंकुर समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार वे अंकुर भी समाप्त हो जाते हैं। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है? आज हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने उस महान् वैज्ञानिक जगत् में पहुंचते हुए चले जाए जहां आत्मा का विज्ञान एक विशालता में परिणत रहता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं वाक् उच्चारण करते–करते बहुत दूरी चला गया हूं। वाक्–उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि यह जो जगत् है यह कितना विशाल है मेरे प्यारे! इस ब्रह्म का परन्तु देखो, यह ब्रह्म के ही गर्भ में सब समाहित हो जाता है। **"यह ब्रह्म ही मृत्यु का मृत्यु है।"** इसीलिए ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है क्योंकि उनको जिसे मृत्यु का भय नहीं होता वह मृत्यु को विजय कर लेता है जो ब्रह्म को अपने में समाहित कर लेता है, उसकी संसार में मृत्यु नहीं होती। क्योंकि मृत्यु का जो जन्म है वह केवल अज्ञान से है और जब अज्ञान नहीं रहता तो मृत्यु शब्द भी मानव के समीप नहीं होता और **अज्ञान में मृत्यु का भय रहता है।** इसीलिए ब्रह्म को बेटा मृत्यु कहा है। इसीलिए मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें ब्रह्म को जानना चाहिए। हमे ज्ञान होना चाहिए, विवेक होना चाहिए। इसीलिए ऋषि–मुनियों ने हमारे यहां बेटा राजा–महाराजा परम्परागतों में भी, क्या हमारे साहित्यों में प्राप्त होता है। राजा अपने गृह को त्याग देते हैं। क्योंकि यह तो त्यागना है ही, इसलिए हमें ब्रह्म को जानना चाहिए। इसलिए बेटा वानप्रस्थ होता है, इसलिए संन्यास होता है। क्यों? हम उस विशाल अज्ञान को नष्ट करें जिस अज्ञान के कारण हम इस सूक्ष्म से परिवार को बना करके इसमें अपने जीवन को सीमित कर देते हैं। आज हमें इस समाज को, संसार को अपना कुटुम्ब बना लेना चाहिए। जो इस प्रकार का कुटुम्ब बना लेता है उसकी संसार में मृत्यु नहीं होती। वह तो सर्व वह तो देखो परिमाणित हो जाता है। ब्रह्म को ही दृष्टिपात करता है। ब्रह्म ही ब्रह्म उसे दृष्टिपात आने लगता है।

यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। **आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परम–पिता–परमात्मा की आराधना करते रहें। परमपिता–परमात्मा के क्षेत्र मे जाने का प्रयास करते रहें।**

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो....

गुरु जी वाक्य तो आपका बहुत ही प्रिय लग रहा था। परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म। मैं यह चाहता रहता हूं कि इन्द्रियों की जो नाना प्रकार की धाराएं हैं उनके सम्बन्ध में भी आप कुछ प्रकाश दे सकें।

हास्य.....

पूज्यपाद गुरुदेव बेटा! कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल ही प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अच्छा अब वेद पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी–अच्छा भगवान! आज्ञा।

पूज्यपाद–गुरुदेव–आनन्द मंगलम् शान्तिः।

दिनांक : ६–जून–१६७१
स्थान : 574, सैक्टर 18बीं, चण्डीगढ़।